MAPA - 05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रशासनिक विचारक

MAPA - 05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रशासनिक विचारक

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक एवं समन्वयक

प्रो. पी.सी. माथुर

परामर्शदाता (लोकप्रशासन)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. अरविन्द शर्मा**
  आचार्य, प्रबंध विकास संस्थान
  गुड़गांव
- **प्रो.(डॉ.) पी.डी. शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), राजनीति विज्ञान विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. अशोक शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. राजेन्द्र जोशी**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  महर्षि दयानन्द सरस्वती विद्यालय, अजमेर
- **डॉ. लीला राम गुर्जर**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो.(डॉ.) आर.बी. जैन**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), राजनीति विज्ञान विभाग
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **प्रो.(डॉ.) रविन्द्र शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) बी.एम. चितलंगी**
  आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
  जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. अशोक शर्मा**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादन

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली	डॉ. लीला राम गुर्जर	डॉ. अशोक शर्मा
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

संपादक

पाठ लेखक	(इकाई संख्या)	पाठ लेखक	(इकाई संख्या)
प्रो.(डॉ.) बी.एम. चितलंगी आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर**	1	**प्रो.(डॉ.) आर.पी. जोशी** आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग **महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर**	8,12,13
डॉ. देवकान्ता शर्मा व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **मा.ला.व. राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा**	2	**प्रो.(डॉ.) योगेश अटल** भूतपूर्व समाज विज्ञान परामर्शदाता दक्षिणी पूर्व एशिया,युनेस्को, बेंकॉक	9
डॉ. एस.के. उपाध्याय व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **मा.ला.व. राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा**	3	**डॉ. जे.एन. चौधरी** परामर्शदाता समाजशास्त्र **व.म.खु.वि., कोटा**	10
डॉ. जनक मीणा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली	4	**प्रो.(डॉ.) सुरेश गोयल** आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	11
प्रो.(डॉ.) डी.आर. प्रसाद आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद**	5	**प्रो. प्रदीप सक्सेना** सहायक आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	14

डॉ. अनिल पारीक **6,7**
व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. .(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**	**प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**
	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- अप्रैल 2009 ISBN - 13/978-81-8496-032-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रशासनिक विचारक

विषय सूची

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	कनफ्यूसियस	8–15
इकाई - 2	कौटिल्य	16–32
इकाई - 3	जवाहर लाल नेहरू	33–42
इकाई - 4	सरदार वल्लभ भाई पटेल	43–57
इकाई - 5	वूडरो विल्सन	58–62
इकाई - 6	चेस्टर आई. बर्नार्ड	63–75
इकाई - 7	मैरी पार्कर फौलेट	76–91
इकाई - 8	मैक्स वेबर -I	92–111
इकाई - 9	मैक्स वेबर -II	112–123
इकाई - 10	नौकरशाही : समाज शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य	124–135
इकाई - 11	वैज्ञानिक प्रबन्ध : फ्रेडरिक विन्सलो टेलर तथा फेयोल का योगदान	136–149
इकाई - 12	अब्राहम एच. मैस्लो	150–159
इकाई - 13	फ्रेडरिक हर्जबर्ग	160–170
इकाई - 14	येहेज्केल ड्रोर	171–182

इकाई - 01

कन्फ्यूसियस

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 कन्फ्यूसियस के प्रशासनिक विचारों का आधार
1.3 कन्फ्यूसियस के विचारों में विधिवाद
1.4 लोक प्रशासन के नियम
1.5 प्रतियोगी परीक्षा पर आधारित लोक सेवाए
1.6 कन्फ्यूसियस के समय प्रशासनिक तंत्र का स्वरूप
1.7 सारांश
1.8 अभ्यास प्रश्न
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपको :

- कन्फ्यूसियस के प्रशासनिक विचारों के आधार,
- कन्फ्यूसियस के लोक प्रशासन के सिद्धान्त,
- कन्फ्यूसियस के लोक सेवाओं सम्बन्धी विचार,
- कन्फ्यूसियस के चीनी केन्द्रीय,प्रान्तीय, स्थानीय तथा न्यायियक व्यवस्थाओं की जानकारी, एवं
- कन्फ्यूसियस के विचारों की आज के संदर्भ में उपयोगिता को समझने में सक्षम होना चाहिए।

1.1 प्रस्तावना

कन्फ्यूसियस (551-479 बीसी) पूर्व के राजनैतिक एवं प्रशासनिक चिन्तकों में वह विचारक है जिसका चीन के राजनैतिक एवं प्रशासनिक विकास में एक दिशा निर्देशक के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, साथ ही लोक प्रशासन के चिन्तकों में भी वह अग्रणी गिना जाता है । चीनी प्रशासनिक चिन्तन लोक प्रशासन के सैद्धान्तिक इतिहास में अपना स्थान रखता है । ग्लेडन लिखते है कि 'वह मानव समुदाय जिस पर प्रशासनिक इतिहास में प्राथमिकता देकर विचार किया जाना चाहिए, वह चीन ही है । ' चीन में प्रशासनिक दृष्टि से व्यवस्थित एक ऐसी प्रभावशाली सभ्यता उस समय से ही विद्यमान रही थी जब पश्चिम में इसका उदय ही नहीं हुआ था । चीन का प्रशासनिक इतिहास लगभग 4200 वर्ष पुराना है, यद्यपि प्रशासनिक चिन्तन की दृष्टि से चीनी चिन्तकों ने पश्चिमी देशों के प्रशासन को बहुत कम मात्रा में प्रभावित किया है, परन्तु प्रशासन के कुछ ऐसे क्षेत्र रह है जिन्हें कन्फ्यूसियस के विचारो ने विशेष रूप में प्रभावित किया है । चीनी प्रशासन पर तो कन्फ्यूसियस का पूरा प्रभाव रहा ही है । डी. चाऊ के शब्दों में कन्फ्यूसियस की पवित्र स्वामी के रूप में पूजा की जाती थी, कन्फ्यूसियस के सिद्धान्त

वह बाइबिल थी जिसके आधार पर देश का शासन संचालित किया जाता था, व्यक्तिगत रूप में कन्फ्यूसियस चीन के लोगों की आत्मा का प्रतिनिधित्व करता था । सभी प्रकार से कन्फूसियस सम्पूर्ण राष्ट्र का आध्यात्मिक पिता था।

कन्फ्यूसियस के विचारों में नैतिकता के सिद्धान्तों के अतिरिक्त सरकार की समस्याएँ एवं प्राचीन चीन की संस्कृति केन्द्रीय विशय रहे है। स्वयं कन्फ्यूसियस अध्यापन के कार्य के पश्चात पचास वर्ष की आयु में शासकीय व्यवसाय के साथ जुड़ा । स्थानीय न्यायधीश से प्रधानमंत्री के पद तक पहुंचने के बाद भी वह अपनी प्रशासकीय स्थिति एवं दायित्वों से सन्तुष्ट नहीं रहा । सार्वजनिक मामलों से निवषति के पश्चात् उसने अपना शेष समय न केवल नैतिकता अपितु राजनीति एवं शासन के बारे में लेखन में भी व्यतीत किया । अपने अनुभव के आधार पर उसने निष्ठावान एवं सही अधिकारियो के बारे में कहा था, 'मनुष्य को यद्यपि यह कहने में संकोच होगा कि जब वह अपने देश के लिए कुछ प्रशासनिक कार्यो को जब सम्पन्न करेगा तो वह अपने आपको अकुशल महसूस करेगा, यद्यपि वह अपने विषय के बारे में बहुत कुछ जानता होगा परन्तु जब उसे किसी कार्य के लिए भेजा जायेगा तो वह किसी प्रश्न का बिना सहायता उत्तर नहीं दे सकेगा, फिर वह किसके लिए अच्छा है? कन्फ्यूसियस ने राज्य व्यवस्था, प्रशासनिक संगठन, नागरिक सेवाए, न्याय प्रशासन, प्रान्तीय तथा स्थानीय प्रशासन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ।वेचार व्यक्त किये थे जिन्हें चीन में समय-समय पर व्यवहारिक रूप दिया गया । कन्फ्यूसियस के विचारों को कन्फ्यूसवाद के रूप में मान्यता मिली है जो आज भी चीन में प्रचलन में है । अमरीकी विद्वान जाइन के फेयरबेंक के शब्दों में 'चीन की वर्तमानकालीन नौकरशाही, समाजवाद कन्फ्यूसियस के विचारों से प्रभावित है । बहुत पहले अस्तित्व में आया कन्फ्यूसियसवाद आज भी चीनी परिवेश, भाषा, लोकगीत एवं शासन के व्यवहार में विद्यमान है ।

1.2 कन्फूसियस के प्रशासनिक विचारों का आधार

कन्फ्यूसियस के प्रशासनिक विचार उसके नैतिकता, मानववाद, तत्कालीन चीन की साम्राज्य व्यवस्था तथा कानून सम्बन्धी दृष्टिकोण पर आधारित रहे हैं । इन्ही आधारों के कारण कन्फ्यूसियस के विचार चीन में प्रभावी हो सके । नैतिकता एवं दर्शन के अध्यापन एवं प्रशासनिक अनुभव के आधार पर कन्फ्यूसियस ने उन मान्यताओं को स्पष्ट किया जिन पर एक आदर्श प्रशासन को आधारित रहना चाहिए । यद्यपि कन्फ्यूसियस के प्रशासन के आधार आज उतने समसामयिक नहीं है परन्तु इन तत्वों की पूरी अवहेलना भी नहीं की जा सकती । मूल रूप में आदर्श प्रशासन की स्थापना के समय इन आधारों का भी ध्यान रखना पड़ता है।

1.2.1 नैतिकता एवं मानववाद -

कन्फ्यूसियस के विचारों में नैतिकता एवं मानववाद महत्वपूर्ण है । मानववाद का तात्पर्य समाज में आपसी सम्बन्धों से है । नैतिकता का तात्पर्य सम्बन्धों में परम्परागत नैतिक एवं धार्मिक तथ्यों की उपस्थिति है । ऐसे सम्बन्ध पर आधारित व्यवस्याओं का संचालन करने वाले शासक श्रेष्ट होगे । श्रेष्ठ शासन श्रेष्ट कानूनों एवं संस्थाओं से भी ज्यादा महत्वपूर्ण होता है । एक अच्छा शासक शासितों को अहम्मन्यता जताये बिना सहज रूप से शासन करने का सामर्थ्य रखता है । उसका दायित्व है कि वह नैतिक मान्यताओं को ध्यान में रखकर कार्य करे।

1.2.2 फिलायल पायटी-

कन्फ्यूसियस आज्ञापालन के लिए फियायल पायटी के आदर्श को आधार बतलाया है जो चीन में विद्यमान रही थी । सामन्ती लार्डो और विशेषकर सम्राट के प्रति आज्ञापालन एवं निष्ठा उसी प्रकार से हो जैसे बच्चों की अपने माता-पिता के प्रति होती है । इसके आधारपर सरकारी नौकरशाही में संरक्षण पर आधारित सम्बन्ध विकसित होते है । फिलायल पायटी का तात्पर्य माता पिता के प्रति सेवा एवं आज्ञापालन होता है, जो आगे चल कर सम्प्रभु के प्रति भी होता है । राज्य एक बड़ा परिवार है जिसमें राज्य एवं प्रजा के बीच सम्बन्ध आज्ञापालन एवं समर्पण पर आधारित रहते है । कन्फ्यूसियस एन्लेक्टस के अनुसार जो अपने पिता की आज्ञा का पालन करता है उसे राज्य के शासन की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। प्रजा का उच्च लोगों के प्रति व्यवहार का आधार प्यार एवं सम्मान हो । यह देखा गया है कि जो अपने नीजि जीवन में अपने माता पिता एवं बड़े भाइयों के प्रति अच्छा व्यवहार करते है वे बहुत कम बड़ों की सत्ता का विरोध करते है । कन्फ्यूसियस के विचारों का महत्त्वपूर्ण आधार आज्ञापालन एवं समर्पण रहा है ।

1.2.3 स्वर्ग पुत्र की अवधारणा-

कन्फ्यूसियसवाद को सरकारी दर्शन के रूप में मान्यता मिली थी । कन्फ्यूसियस के शिष्यों ने सम्राट को स्वर्ग पुत्र कह कर पुकारा । तुग-युग-शु के अनुसार स्वर्ग ने आम लोगों को अच्छाइयों की कच्ची सामग्री प्रदान की है, परन्तु वे उससे अच्छाइयों को उत्पन्न नहीं कर सकते । इसके लिए स्वर्ग ने राजाओं की रचना की है । स्वर्ग द्वारा सौंपे गये इसी उत्तरदायित्व के आधार पर राजा स्वर्ग को पिता मानते है, इसी लिए राजा को स्वर्ग पुत्र कहा जाता है । राजाओं की सर्वोच्च स्थिति को इसी आधार पर समर्थन प्राप्त हुआ था । कन्फ्यूसियस ने कुलीनतंत्रशाही के विशेषाधिकारों का समर्थन किया। राजाओं की सफलता फिलायल पायटी को विकसित करने में है यदि स्वर्ग पुत्र के रूप में राजा ऐसी दशाओं का निर्माण नहीं करता है तो प्रजा का यह दायित्व बन जाता है कि अपनी निष्ठा को त्याग दे ।

1.2.3 भद्र पुरूष की अवधारणा -

कन्फ्यूसियस भद्र पुरूष के आदर्श के माध्यम से तत्कालीन चीन में सदियों पुरानी सामन्तशाही को जीवित रखना चाहता था। भद्र पुरूष का तात्पर्य कन्फूसियसवाद द्वारा परिभाषित सभी गुणों जैसे फिलायल पायटी, मानवता, सम्मान, आज्ञापालन, समर्पण तथा सत्ता एवं बड़ों के प्रति अधीनस्थता से सम्पन्न होना है । यदि सम्राट भद्र पुरूष है तो वह अपने लोगो को प्यार करेगा, अगर सामान्य लोग भद्र पुरूष है तो वे राजा की आज्ञाओं का पालन करेंगे एवं उनके प्रति समर्पण का भाव रखेंगे । इससे सामान्तशाही पर आधारित शासन व्यवस्था बनी रहेगी तथा मजबूत होगी।

1.3 कन्फूसियस के विचारों में विधिवाद

चीनी विधि की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि चाउ साम्राज्य (550-250 ई.पू) की शताब्दिया रही है जब पुरानी व्यवस्थाओं का आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के साथ अन्तर राज्य विवाद बढ़ रहे थे । एक ओर जहाँ सामन्त लोगों की स्थिति खराब हो रही थी, कुछ किसान पुराने परम्परागत बन्धनों से मुक्त होने लगे । इस स्थिति में लिखित कानूनी सहिता, जो मुख्य रूप में दण्ड पर आधारित थी,

का विकास हुआ । ईसा पूर्व चतुर्थ एवं तीसरी सदी में विद्वानों का एक समूह ने कानूनों को मानवीय व्यवहार का नियन्त्रण कर्ता बतलाया जो परम्परागत नैतिक मान्यताओं से भिन्न प्रकार के रहे थे । ऐसा प्रभाव कम समय तक रहा । विधिवाद की इस धारणा के स्थान पर कन्फूसियसवाद जो नैतिक मापदण्डों पर आधारित था, प्रति स्थापित हुआ।

कन्फ्यूसियस का दर्शन यह मानता है कि प्रारंभ में किसी भी प्रकार के कानून नहीं थे । राजा अपनी शक्ति हेवन या ईश्वर से प्राप्त करना था, उसे प्राकृतिक अवस्था का प्रतीक समझा जाता था । यह माना जाता था कि ईश्वर ने प्राकृतिक कानून को व्यक्ति के हृदय में स्थापित किया है । प्राकृतिक कानून के अन्तर्गत प्रजा तथा राजा के बीच सम्बन्ध पिता एवं पुत्र, पत्नी एवं पति, बड़े भाई एवं छोटे भाई तथा मित्रों के बीच के सम्बन्धें के समान होते थे । प्राकृतिक कानूनों के आधार पर राज्य का संचालन होता था एवं शान्ति एवं व्यवस्था बनी रहती थी । प्राकृतिक कानूनों की अनुपालना संस्कारों (ली) के आधार पर होती थी । राज्य का जीवन संस्कारों पर टिका था । संस्कारों का स्रोत प्राकृतिक कानून थे । प्राकृतिक कानूनों में परिवर्तनों के बिना समाज में परिवर्तन सम्भव नहीं था । चीन के समस्त शासक अपने शासन की प्रक्रियाओं तथा परम्परागत प्रक्रियाओं के प्रति निष्ठावान रहते थे । संस्कारों को शान्ति एवं सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए निर्मित सर्वोच्च माध्यम माना जाता था । इसके माध्यम से व्यक्ति की इच्छाओं पर नियन्त्रण किया जाता था तथा विवादों का समाधान किया जाता था । संस्कारों के आधार पर अच्छे शासन को सम्भव बनाया जाता था । संस्कारों पर आधारित प्रशासनिक व्यवस्था को अच्छा शासन कहा जा सकता था । कन्फ्यूसियस के शब्दों में उच्चे लोगों को सुरक्षा प्रदान करने तथा प्रजा को अच्छी सरकार प्रदान करने के लिए संस्कारों के नियमों से अच्छी ओर कोई व्यवस्था नहीं हो सकती । सूहेसिंग के शब्दों में संस्कार सम्राटों के पास बड़ी तोप के समान होते थे।

1.4 लोक प्रशासन के नियम

आधुनिक चीनी विद्वान लियोनार्ड हसु ने प्राचीन चीन के लिए कन्फूसियस द्वारा बतलाये गये लोक प्रशासन के नियमों की विवेचना की है । जनहितार्थ शासन की स्थापना के लिए कन्फूसियस ने व्यवहारिक सुझावों के रूप में लोक प्रशासन के नियमों का प्रतिपादन किया है जो निम्नलिखित है -

1.4.1 देश की स्थिति के बारे में ज्ञान -

शासक एवं शासन के संचालन कर्त्ताओं को देश की पूर्ण स्थिति की जानकारी होनी चाहिए। इन दशाओं के बारे में जानकारी रखते हुवे शासन के संचालनकर्त्ता प्राकृतिक एवं सामाजिक आपदाओं का पूर्व अनुमान लगाते हुवे, उनके निराकरण एवं समस्याओं के समाधान का कार्य करें।

1.4.2 शासन के संचालन कर्त्ताओं का साधनों पर नियन्त्रण -

इसका तात्पर्य कन्फूसियस ने यह बतलाया है कि समस्याओं के प्रति विचारों में व्यापक मतभेदो को चाहने का दृष्टिकोण तथा निरापेक्ष, निष्पक्षता तथा नि:स्वार्थता के आधार पर तथ्यों का सावधानी पूर्वक अध्ययन के आधार पर, नैतिक मूल्यों के अनुकूल उदारतापूर्वक, व्यवहारिक तथा तार्किक समाधान करना।

1.4.3 जन-भावना -

सरकारी कार्य संचालन में जनभावना के लक्ष्य के आवश्यक बतलाया गया है । कन्फूसियस ने पक्षपात एवं तरफदारी की आलोचना की है।

1.4.4 आर्थिक कल्याण -

सरकार को जनता के आर्थिक कल्याण को विकसित करना चाहिए।

1.4.5 प्रशासन को व्यस्त रखना -

कन्फूसियस लोक प्रशासन के सफल संचालन के लिए एक सूत्र प्रशासन को व्यस्त रखना बतलाते है । प्रशासक को अपने दिमाग में बिना भटकाव के निरन्तरता के साथ शासन के क्रियाकलापों को शासन की कला के रूप में रखना चाहिए । जनकल्याण कारी संस्था के रूप में सरकार सद्गुणों एवं संस्कारों (ली) पर आधारित होने का तात्पर्य पूर्ण राजनैतिक पुन: गठन किया जाना है । शासन की सूक्ष्म गतिविधियों पर निगरानी से लेकर सरकार एवं प्रशासन की मूल राजनीति के संचालन का पर्यवेक्षण करते हुवे उन्हें प्रत्येक क्षण की गतिविधि के लिए अपने को व्यस्त रखना चाहिए ।

1.4.6 ईमानदार, निस्वार्थी एवं योग्य अधिकारी -

प्रशासन का अन्तिम सिद्धान्त कन्फूसियस इमानदार, योग्य, निस्वार्थी सार्वजनिक अधिकारियों के चयन को लोक प्रशासन के व्यवस्थित संचालन के लिए आवश्यक मानता है।

कन्फूसियस द्वारा प्रतिपादित लोक प्रशासन के छ: नियम आज भी सुशासन के लिए आधार बताये जा सकते है । चीनी शासन के विशेषज्ञ प्रो. एडवर्ड एस. कोर्विन का इस सम्बन्ध में कथन है कि कन्फूसियस हमे शिक्षा देता है कि शासन का कार्य एक सुन्दर राह संचालन है । उसने आधुनिक प्रशासनिक राज्य का पुर्वानुमान लगाते हुए एक इससे संबंधित एक युटोपिया प्रदान किया।

1.5 प्रतियोगी परीक्षा पर आधारित लोक सेवाएँ

चीन सम्भवत: वह पहला देश रहा है जहां लोक सेवाओं में भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं की व्यवस्था प्रारम्भ की गयी थी । मैक्स वेबर के अनुसार चीन में योग्यता को भर्ती का वास्तविक आधार स्वीकार किया गया तथा एक जटिल परीक्षा प्रणाली विकसित की गयी, जिसके माध्यम से सरकारी सेवा में आने से पूर्व उम्मीदवार की योग्यता की सही जांच की जा सके । इन परीक्षाओं का उद्देश्य उम्मीदवारो में तकनीकि कौशल की संभावनाओं का पता लगाना होता था । परीक्षा व्यवस्था कन्फूसियस के विचारों से पूर्णतया प्रभावित थी ।

प्रतियोगी परीक्षाएं दो भागों में विभाजित थी । उम्मीदवार के शास्त्रीय ज्ञान की जांच की जाती थी । प्रथम परीक्षा में पांच चीनी शास्त्रीय ग्रंथों के बारे में परीक्षा ली जाती थी । इस परीक्षा का सम्बन्ध स्मरण शक्ति की जांच से था तथा द्वितीय परीक्षा उसकी प्रतिभा एवं मौलिकता की जांच से सम्बन्धित थी, जिसमें उम्मीदवार के साहित्यिक ज्ञान का परीक्षण होता था । द्वितीय परीक्षा महत्त्वपूर्ण थी । इसमें उम्मीदवार को सामान्य नैतिक सिद्धान्तों तथा समसामयिक प्रशासनिक समस्याओं पर निबन्ध लिखाया जाता था । उम्मीदवार को कन्फूसियस के विचारों का ज्ञान होना आवश्यक था । परीक्षा में भागीदारी काफी कष्टदायक थी । प्रत्येक उम्मीदवार को एक बंद तंग कोठरी में रखा जाता था, उसे

खाना दीवार में एक छेद के द्वारा दिया जाता था । परीक्षा समाप्त होने तक उसे फर्श पर सोना पड़ता था । कई दिनों तक यह कम चलता रहता था । इतने कठिन परीक्षण का उद्देश्य केवल योग्य व्यक्तियों को ही चयन करना था । पदोन्नति के लिए भी कठिन परीक्षाएं आयोजित की जाती थी । इस प्रणाली के आधार पर चीन में राज सेवा के लिए योग्य व्यक्ति ही आ पाते थे । यद्यपि सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली नहीं थी, जिसके कारण निर्धन या साधारण व्यक्ति राज सेवा में नहीं आ पाते थे । परीक्षा प्रणाली निष्पक्ष रहती थी । योग्य कार्मिकों के आधार पर ही चीन में लम्बे समय तक इतनी विशाल जनसंख्या एवं भू-भाग पर प्रभावशाली प्रशासनतंत्र चलता रहा।

1.6 कन्फूसियस के समय प्रशासनिक तंत्र का स्वरूप

यद्यपि चीन में कन्फूसियस के समय कोई लिखित संविधान नहीं था परन्तु कन्फूसियस के आदर्श राज्य के संगठन एवं लोक प्रशासन के नियमों के आधार पर ही प्रशसनतंत्र का ढाचा निर्मित था । इसका विकास कन्फूसियस के अनुभव, व्यवहार, नैतिक सिद्धान्त एवं दर्शन के आधार पर हुआ था ।

1.6.1 केन्द्रीय प्रशासन -

प्रशासन के सर्वोच्च शिखर पर सम्राट होता था जिसे शासन एवं प्रशासन की समस्त शक्तियाँ प्राप्त थी । सम्राट को परामर्श देने के लिए महापरिषद् एवं महासचिवालय थे । प्रारम्भ में महासचिवालय अधिक शक्तिशाली था तथा महापरिषद केवल सैनिक मामलों तक ही सरकार को परामर्श देती थी, परन्तु धीर-धीरे महापरिषद की शक्तियाँ बढ़ती गयी । इन संस्थाओं में पांच छः योग्य अधिकारियों को सम्राट नियुक्त करता था ।

प्रशासन का संचालन छः मण्डलों द्वारा किया जाता था । ये छः मण्डल नागरिक कार्यालय, धर्म कर्म, राजस्व, युद्ध, दण्ड तथा सार्वजनिक निर्माण थे । प्रत्येक मण्डल के दो अध्यक्ष होते थे एक चीनी तथा एक मंचु, जिनकी सत्ता समान होती थी, तथा वे एक दूसरे पर नियत्रंण रखते थे । इनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी, जिन्हें जल्दी-जल्दी बदल दिया जाता था । नागरिक मण्डल लोक सेवाओं को नियन्त्रित करता था, परन्तु उनकी परीक्षा का संचालन धर्म कर्म मण्डल द्वारा किया जाता था ।

1.6.2 प्रान्तीय प्रशासन

कन्फूसियस के समय चीन अठारह प्रान्तों में विभाजित था जिनकी स्थिति स्वायत्त मानी जाती थी । प्रान्त का प्रमुख राज्यपाल होता था । प्रान्त के प्रमुख अधिकारी लोक सेवाओं से लिये जाते थे जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय शासन द्वारा की जाती थी । उन पर केन्द्र का पूरा नियन्त्रण रहता था । प्रान्त में प्रान्तीय अधिकारी, कोषाध्यक्ष, न्यायाधीश तथा अनसंग्रहक प्रमुख अधिकारी होते थे । ये अपने अपने विभागों के प्रमुख होते थे।

1.6.3 स्थानीय शासन -

प्रान्त सर्किट्स या मण्डलों में विभाजित रहता था । सर्किट्स उपक्षेत्रों या प्रिफिक्टयुअर्स में जिसे चीनी भाषा में १फू कहा जाता था । उपक्षेत्र जिलों भी विभाजित रहता था । एक जिले में चार दीवारी वाले नगर, जिला नगर तथा ग्राम होते थे । जिले, नगरों एवं गांवो का प्रशासन महत्त्वपूर्ण था।

गाँव एवं नगर में कर वसूली, उच्च अधिकारियों का स्वागत, पुलों की मरम्मत, ग्राम पुलिस व्यवस्था, बाजार, मेले, कुओं का निर्माण इत्यादि कार्य किये जाते थे । ग्राम प्रशासन का संचालन गांव के सम्मानित वरिश्ठजनों द्वारा संचालित किया जाता था जो एक प्रकार से पैतृक कुलीनतंत्र था ।

1.6.4 न्याय प्रशासन -

कन्फूसियस के काल में प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यो में कोई विशेष अन्तर नहीं था । न्यायालयों का निर्माण प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किया जाता था । दीवानी तथा फौजदारी कानून भी एक जैसे ही थे । दीवानी मामलों के लिए राजस्व मण्डल सर्वोच्च न्यायालय होता था तथा फौजदारी मामलों के लिए दण्ड मण्डल अन्तिम न्यायालय था । गम्भीर मामलों का निर्णय सम्राट किया करता था ।

1.7 सारांश

कन्फूसियस के प्रशासनिक विचारों का मूल्यांकन -

कन्फूसियस के विचार न केवल चीन प्रशासन के लिए अपितु प्रशासनिक सिद्धान्तों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । प्रशासनिक सिद्धान्तों को कन्फूसियस का महत्त्वपूर्ण योगदान इस रूप में है कि उसने प्रशासन के आधार के रूप में नैतिक दर्शन को प्रस्तुत किया है । मेक्सवेबर ने अपने नौकरशाही के व्यापक विश्लेषण में यह स्वीकार किया है कि चीन में योग्यता पर आधारित भर्ती प्रणाली एवं प्रतियोगितावाद प्रारम्भ से ही अस्तित्व में रहा । चीन में एक जटिल प्रतियोगिता पर आधारित परीक्षा प्रणाली विकसित हुई । सरकारी पद ग्रहण करने रो पूर्व उम्मीदवार की योग्यताओं का परीक्षा के माध्यम से सूक्ष्म परीक्षण किया जाता था । पदोन्नति के लिए भी कठिन परीक्षा ली जाती थी । परीक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में कन्फूसियस के विचार महत्वपूर्ण थे । उम्मीदवार को कन्फूसियसवाद का ज्ञान होना भी अनिवार्य था । औपचारिक रूप से प्रतियोगितावाद एक क्रान्तिकारी कदम था, जिसका पूर्वाभ्यास चीन में हजारों वर्षो पूर्व किया गया । प्रशासनिक वस्तुपरकता, पैतृक स्वेच्छाचारिता से मुक्त भर्ती प्रणाली तथा व्यवसायिकता इसकी विशेषताएं थी । इस व्यवस्था के कारण ही चीनी प्रशासन घूसखोरी, पक्षपात, सामन्तशाही इत्यादि दुष्प्रभावों से एक सीमा तक बचा रहा।

किन्तु सीमत शिक्षा, कुलीनतंत्रीय प्रभाव तथा शास्त्रीयता के कारण चीनी प्रशासन अन्य प्रशासनों से भिन्न हो जाता है । व्यक्ति का अभिभावकत्व, प्रशासनिक तकनीकि योग्यता के बजाय साहित्यिक ज्ञान पर आधारित परीक्षा प्रणाली, कन्फूसियस से प्रभावित नैतिक विचारधारा इत्यादि चीनी प्रशासन को वर्तमान प्रशासन प्रणाली से अलग कर देता है । चीन में पदाधिकारियों का विशेष उत्तरदायित्व रहता था । उन्हें समाज के प्रमुख मूल्यों तथा लक्ष्यों को कार्यान्वित करने के लिए नैतिकता एवं व्यवसायिकता (प्रशासनिक कौशल) को विकसित करना होता था । नैतिकता एवं व्यवसायिकता प्रशासन को महत्त्वपूर्ण आधार थे । कन्फूसियस के दार्शनिक विचार प्रशासन के लिए नैतिक मानदण्ड प्रस्तुत करते थे, वहीं प्रतियोगिता परक परीक्षा प्रणाली प्रशासनिक व्यवसायिकता को विकसित करती थी । प्रशासनिक कौशल को कन्फूसियस विशेष महत्व देता था उसका यह मानना था कि व्यक्ति चाहे सभी क्षेत्रों में पूर्णता प्राप्त कर लेवे परन्तु जब उसे प्रशासनिक कार्य सौंपे जाते है तो वह अपने आपको

अपूर्ण महसूस करता है । स्वयं के लम्बे प्रशासनिक अनुभव के आधार पर कन्फूसियस ने प्रशासनिक कौशल को एक विशेष क्षेत्र माना था, जिसे प्राप्त करना एक जटिल कार्य बतलाया।

कन्फूसियस का चीनी प्रशासन पर लगभग 2300 वर्षो तक प्रभाव रहा । कन्फूसियस के विचारों पर आधारित चीनी प्रशासन आधुनिक प्रशासन के विज्ञान एवं कला के विकास से पूर्व एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था थी, जो आधुनिक सार्वजनिक प्रबन्ध की अनेक समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त हो सकती है । कन्फूसियस द्वारा प्रतिपादित शासक एवं प्रजा के बीच के सम्बन्धों का स्वरूप जहां प्रशासन पर एक ओर विश्वास पैदा करता था वहीं प्रशासन को एक औचित्यता प्रदान करता था । कन्फूसियस के लोक प्रशासन के नियम आज के सुशासन के आधारभूत मंत्र कहे जा सकते है ।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. कन्फूसियस के प्रशासनिक विचारों के क्या-क्या आधार है ।
2. कन्फूसियस के द्वारा प्रतिपादित लोक प्रशासन के सिद्धान्त बतलाइये ।
3. कन्फूसियस के विचारों की वर्तमान समय में उपयोगिता का परीक्षण कीजिए ।
4. कन्फूसियस के प्रशासनिक । विचारों की विवेचना कीजिए।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आर. पी. जोशी एवं अंजु पारीक, प्रशासनिक विचारक, रावत पब्लिकेसन्स जयपुर, 2005
2. प्रसाद, प्रसाद एवं सतनारायना एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर, स्टर्लिग पब्लिशर्स, दिल्ली,
3. सिंह आर. एम., मेनेजमेंट : थोट एण्ड थिंकर, सुलतान चन्द, नई दिल्ली, 1964
4. सप्रू आर. के., एडमिनिस्ट्रेटिव थ्यौरीज एण्ड मेनेजमेंट थोट आर. एच. आई, नई दिल्ली, 2008

इकाई -2

कौटिल्य

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रशासनिक व्यवस्था
    2.2.1 प्रशासनिक विभाग
    2.2.2 कार्मिक प्रशासन
    2.2.3 प्रशासन में भ्रष्टाचार
    2.2.4 स्थानीय प्रशासन
2.3 न्याय व्यवस्था
    2.3.1 न्यायालय के प्रकार
    2.3.2 दण्ड व्यवस्था
2.4 सारांश
2.5 अभ्यास प्रश्न
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप -

- प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्था को समझ सकेंगे ।
- भारतीय लोक प्रशासन में कौटिल्य के योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे ।
- कौटिल्य के विचारों की प्रासंगिकता सिद्ध कर सकेंगे ।
- कौटिल्य के अध्ययन की महत्त्व समझ सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था पर पाश्चात्य व्यवस्था का प्रभाव तो स्वत: सिद्ध है, किन्तु विद्यार्थियों के लिये यह जानकारी भी शुभ होगी कि भारत में 'कौटिल्य' जैसे महान विचारक ने उन्नत प्रशासनिक विचारों का प्रतिपादन किया है । इस युग से दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व कौटिल्य द्वारा व्यक्त प्रशासनिक विचार आज भी न केवल प्रासंगिक हैं वरन् वर्तमान जटिल व्यवस्था में पहले से अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

कौटिल्य का काल 325 ई.पू माना जाता है । शास्त्र व शस्त्र के ज्ञाता आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य ने नन्द वंश की अराजकता का विद्रोह करते हुए चन्द्रगुप्त मौर्य के सेनापतित्व के नन्द वंश का नाश करवाया तथा अतिरिक्त भारतीय मौर्य साम्राज्य की स्थापना करके छोटे-छोटे जनपदों में विभक्त भारत को अखिल राष्ट्र का स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

कौटिल्य को 'क्रोधी व दृढ़ स्वभाव का व्यक्तित्व माना जाता है । अन्यायगत अव्यवस्था से उत्पन्न क्रोध व चारित्रिक दृढ़ता के कारण ही वह मौर्य शासन के मार्गदर्शक के रुप में जनहितकारी प्रशासन के सूत्रधार बन सके । कौटिल्य के सम्बन्ध में विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस: कामंदक 'नीतिसार' तथा बौद्ध व जैन ग्रन्थों सहित चीनी यात्री फाहयान द्वारा रचित फू-कुओ-की (बुद्ध के देश की गाथा) में प्रसंगवश जानकारी प्राप्त होती है परन्तु वह अपर्याप्त है । कौटिल्य के सादगीपूर्ण एवं परिश्रमी जीवन को देख कर फाह्यान लिखते हैं - 'वह देश धन्य क्यों नहीं होगा, जिसका प्रधानमंत्री इतना साधारण जीवन व्यतीत करता है।

कौटिल्य के सम्पूर्ण विचारों की जानकारी उनके द्वारा रचित महान ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' से प्राप्त होती है ।

'अर्थशास्त्र के अतिरिक्त कौटिल्य ने निम्नांकित ग्रन्थों की रचना भी की थी :-

- लघु चाणक्य
- वष्द्ध चाणक्य
- चाणक्य नीति शास्त्र
- चाणक्य सूत्र

(कौटिल्य को चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है ।)

कौटिल्य का अर्थशास्त्र: एक परिचय

कौटिल्य ने मौर्य काल में ही 'अर्थशास्त्र' की रचना कर ली थी किन्तु हमारे समक्ष यह ग्रन्थ 1904 में आ सका। तंजोर के एक ब्राहमण ने तत्कालीन मैसूर राज्य की ओरियन्टल मैन्यू स्क्रिप्ट लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष पं. आर. शामशास्त्री को ताड़पत्रों पर लिखित अर्थशास्त्र की पाण्डुलिपि प्रस्तुत की । 1909 में आर. शामशास्त्री ने अर्थशास्त्र का मूल पाठ प्रकाशित करवाया, तथा 1915 में "The Agthashastga of Katilya"' नाम से अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया। तदोपरान्त समय-समय पर 'अर्थशास्त्र पर हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद व व्याख्याऐं प्रकाशित हुई, जिनमें मुख्यत: डी. टी. गणपति शास्त्री, आर.पी. कोग्ले उदयवीर शास्त्री, प्राणनाथ विद्यालंकार आदि की व्याख्याऐं सम्मिलित हैं ।

सामान्यत: आज के युग में अर्थशास्त्र का अर्थ Economics से लगाया जाता है किन्तु कौटिल्य का अर्थशास्त्र राज्य व्यवस्था पर लिखित अपूर्व ग्रन्थ है । स्वंय कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' नामकरण को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- "मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं, मनुष्यों से युक्त भूमिका को भी अर्थ कहते हैं । इस प्रकार भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र "अर्थशास्त्र" कहलाता है।"

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 प्रकरण एवं 6000 श्लोकों से युक्त एक वृहत ग्रन्थ है, जिसमें राजनीति, प्रशासन, दर्शन, समाज, नीति, सैन्य, भूगर्भ, रसायन अर्थ आदि विषयों का विवेचन है । कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' में लोकप्रशासन से सम्बन्धित विषयों का वर्णन प्रथम, द्वितीय, पंचम एवं षष्ठम अध्यायों में पाया जाता है ।

इस इकाई में हम केवल उन बिन्दुओं पर अध्ययन करेंगे जो लोकप्रशासन से संबद्ध है ।

2.2 प्रशासनिक व्यवस्था

सामान्यता: कौटिल्य को कूटनीतिज्ञ के रूप में जाना जाता है इसलिए यह मान लिया गया कि कौटिल्य के विचार राजनीति, परराष्ट्र सम्बन्ध, सैन्य व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था आदि तक सीमित है किन्तु 'अर्थशास्त्र' का गहन अध्ययन करने पर हम पाते है कि पृथक-पृथक अध्यायों में लोक प्रशासन से सम्बन्धित विचारों को अनुकरणीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है । प्रो. अल्तेकर का मत है - "कौटिल्य अर्थशास्त्र चिन्तक परक राजनीति की रचना ही ने के स्थान पर प्रशासन के मार्गदर्शन हेतु लिखी गई एक प्रशासनिक संहिता है।' कौटिल्य द्वारा उल्लेखनीय प्रशासनिक व्यवस्था को निम्नांकित उप शीर्षकों में सरलता से समझा जा सकता है।

2.2.1 प्रशासनिक विभाग

कौटिल्य ने प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करने हेतु 'अष्टादश तीर्थ' का उल्लेख किया है। यहाँ तीर्थ से तात्पर्य विभाग से है अर्थात कौटिल्य का मत है कि राजा के साथ ही अन्य पदाधिकारी भी प्रशासन संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान देंगे तथा प्रत्येक अधिकारी द्वारा उसे प्रदत्त विशिष्ट कार्य का सम्पादन ही किया जायेगा । 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित अठारह तीर्थ (विभाग/ पदाधिकारी) इस प्रकार हैं:-

1. राजा - शासन व्यवस्था का सर्वेसर्वा
2. मंत्री - परामर्शदाता
3. पुरोहित - धर्माधिकारी
4. सेनापति - सेना प्रमुख
5. युवराज - राजा का पुत्र सेनापति के रुप में भी नियुक्त किया जा सकता है ।
6. समाहर्ता - राजस्व एकत्रित करने वाला अधिकारी
7. सन्निधाता - कोष -संचालक
8. प्रदेष्टा - दण्डनायक
9. कार्मान्तिक - खानों / उद्योगों का प्रमुख
10. नायक - नगर का रक्षक
11. महापौर - नगर का मुखिया
12. अन्तर्वेषिक - अन्तःपुर का सुरक्षाधिकारी
13. मंत्रीपरिषद - का अध्यक्ष
14. दण्डपाल - रक्षा विभाग का अधिकारी
15. दुर्गपाल - किले का रक्षक
16. अन्त:पाल - सीमाओं का रक्षक
17. आत्विक - वन संरक्षक
18. द्वारिक - द्वारपाल/ महलों का रक्षक

उपर्युक्त तीर्थ प्रशासन संचालन में राजा को कार्यकारी सहायता प्रदान करते थे । कौटिल्य के अनुसार - 'जिस प्रकार अकेला पहिया गाड़ी नहीं चला सकता, उसी प्रकार सरकार भी एक व्यक्ति (राजा) से नहीं चलाई जा सकती । ' अत: राजा को योग्य मंत्रियों व अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिये । राज्य में सभी विभागों का यथेष्ट महत्त्व है । पुरोहित के महत्त्व का उल्लेख करते हु ए कौटिल्य कहते हैं - ' राजा को पुरोहित का उसी प्रकार अनुगामी बने रहना चाहिये, जिस प्रकार शिष्य गुरू का, पुत्र पिता तथा नौकर स्वामी का अनुगामी रहता है।

कौटिल्य का मत है कि राजा आत्मगुण सम्पन्न राजपुत्र को ही युवराज बनाया यदि ज्येष्ठ पुत्र योग्य हो तो कनिष्ठ पुत्र को भी युवराज बनाया जा सकता है और यदि राजपुत्रों में कोई भी योग्य न हो तो राजपुत्री अथवा जनता में से युवराज का चयन किया जा सकता है । कौटिल्य ने राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के अनुरूप वंश परम्परा को स्वीकार तो किया किन्तु उसे योग्यता पर हावी नहीं होने दिया । इस दृष्टि से कौटिल्य लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के समर्थक थे।

मंत्रिपरिषद के सन्दर्भ में कौटिल्य का विचार है कि राजा को तीन या चार मंत्रियों से मंत्रणा करनी चाहिये क्योंकि दो मंत्री एक पक्षीय मत रखकर राजा को भ्रमित कर सकते हैं तथा अधिक मंत्री आपसी गुट बनाकर राजा के विरूद्ध षड़यंत्र रच सकते हैं । अत: मंत्रिपरिषद का आकार छोटा होना चाहिये तथा मंत्रणा सदैव गोपनीय रखी जानी चाहिये । आपातकाल में राजा को स्वविवेक से निर्णय लेना चाहिये।

राजकोष की वृद्धि में समाहर्ता' का महत्त्वपूर्ण योगदान था, क्योंकि उचित समय पर उचित कर-एकत्रण से राज्य की आय में वृद्धि होती थी । समाहर्ता कर प्राप्त करने वाला सर्वोच्च अधिकारी था, अत: उसे औद्योगिक व व्यावसायिक स्थलों के अवलोकन का पूर्ण अधिकारी प्राप्त था।

कोष संग्रह के साथ-साथ कोष की रक्षा करना भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य था, जिसके लिए सन्निधाता पद का सृजन किया गया था । कोष रक्षा के दायित्व से संबद्ध होने के कारण सन्निधाता को कोषागार निर्माण, विक्रय भण्डार, शस्त्रागार, कारगार निर्माण आदि दायित्वों से भी संयुक्त रखा गया था।

प्रजा से पीड़ित करने वाले व्यक्तियों को कौटिल्य ने कण्टक' कहा है । कण्टक निवारण हेतु नियुक्त अधिकारी प्रदेष्टा कहलाता है । प्रदेष्टा का दायित्व है कि वह अपराधियों को दण्डित करे । दण्ड देने से पूर्व उसे अपराध के कारणों, 'अपराध के प्रभावों एवं सम्बन्धित स्थितियों पर ठीक प्रकार से विचार कर लेना चाहिये । प्रदेष्टा निरपराधी को दण्डित नहीं कर सकता । अर्थशास्त्र में उल्लेखित है कि यदि प्रदेष्टा निरपराधी को दण्डित कर देवें तो उससे दुगुना दण्ड इस अधिकारी को मिलना चाहिये।

राज्य द्वारा संचालित कारखानों के अध्यक्ष को कार्मान्तिक कहा गया है। कार्मान्तिक का दायित्व है कि वह सरकारी कारखानों में तैयार धातु जनित समस्त वस्तुओं के क्रय - विक्रय सम्बन्धी व्यापार की व्यवस्था करे । उसे धातु शास्त्र का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

उपर्युक्त विभागों के अतिरिक्त कौटिल्य ने अन्तर्वेषिक (जो अधिकारी अन्तःपुर की रक्षा हेतु उत्तरदायी होता है), नायक (नगर की रक्षा हेतु उत्तरदायी अधिकारी), मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गापाल आदि के लिये भी पदानुरूप योग्यताओं एवं दायित्वों का उल्लेख किया है । प्रशासन के कुशल संचालन हेतु कौटिल्य ने विभिन्न विभागों की व्यवस्था की है एवं प्रत्येक विभाग मे कार्य की प्रकृति के अनुरुप योग्य अध्यक्ष की नियुक्ति की अनुशंसा की है।

2.2.2 कार्मिक प्रशासन

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के कार्मिकों का उल्लेख किया है :-

1. उपयुक्त
2. युक्त
3. तत्पुरूष

इनमें तत्पुरूष सेवक वर्ग में सम्मिलित थे, युक्त प्रत्येक कार्य हेतु पृथक-पृथक अधिकारी थे तथा उच्चाधिकारी उपयुक्त कहलाते थे । उपयुक्त का प्रमुख कार्य अपने विभाग की अध्यक्षता करना एवं अधीनस्थों के कार्यो का निरीक्षण करना था। कौटिल्य ने अनेक अधिकारियों/ अध्यक्षों का उल्लेख किया है जो प्रशासन के सुचारू संचालन में महत्त्व रखते थे, जैसे -

- आकराध्यक्ष - खानों का अध्यक्ष
- कोष्ठागाराध्यक्ष - खाद्य पदार्थो के संग्रह स्थल का अध्यक्ष
- पण्यध्यक्ष - राजद्रव्य के क्रय-विक्रय हेतु नियुक्त अधिकारी
- शुल्काध्यक्ष - चुंगी, कर आदि प्राप्त करने वाला अधिकारी
- सीताध्यक्ष - कृषि कार्यो का अध्यक्ष
- सेनाध्यक्ष - भक्ष्य प्राणियों के वद्य-स्थान पर नियुक्त अधिकारी
- मुद्राध्यक्ष - व्यावहारिक लेख में जो राजकीय चिन्ह अंकित किया जाता है

  उसे मुद्रा कहा जाता है, इससे सम्बन्धित अधिकारी मुद्राध्यक्ष कहलाता है।
- पत्यध्यक्ष - थल सेना का प्रधान अधिकारी/ आदि

कौटिल्य ने कार्मिक प्रशासन मे सामान्यज्ञ क स्थान पर को अधिक महत्त्व प्रदान किया है, इसी कारण विभिन्न अध्यक्षों हेतु सामान्य योग्यताओं के स्थान पर कार्य-प्रकृति के अनुरुप विशिष्ट योग्यताओं का वर्णन किया है । कौटिल्य के अनुसार प्रत्येक अधिकारी अपने विभागीय कार्यो के प्रति स्वतंत्र रहते हुए भी अन्तिम रुप से राजा के प्रति उत्तरदायी रहता है ।

कार्मिक प्रशासन की समस्याऐं

कौटिल्य ने प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारु संचालन में कार्मिकों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए राजा को सुझाव दिया है कि वह योग्य कार्मिकों के मत को बराबर सुने । यद्यपि'अर्थशास्त्र' में कार्मिक प्रशासन की समस्याओं पर पृथक से अध्याय उपलब्ध नहीं है परन्तु यंत्र-तंत्र उल्लेखित प्रावधानों में भर्ती, वेतन, पदोन्नति, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि का विवरण प्राप्त होता है । संक्षेप में कार्मिक प्रशासन की प्रमुख समस्याओं पर आचार्य कौटिल्य के विचार निम्नानुसार हैं :-

भर्ती

'अर्थशास्त्र' में ऐसी किसी संस्था का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, जो कार्मिकों की भर्ती हेतु उत्तरदायी हो । राजा के पास भर्ती की अन्तिम शक्ति विद्यमान थी । भर्ती पूर्णत: योग्यता पर आधारित थी । एक व्यक्ति किसी पद के योग्य है या नहीं, यह जानने हेतु कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार से परीक्षा होने का वर्णन किया है -

- प्रत्यक्ष परीक्षा

राजा स्वयं की उपस्थिति में जब नियुक्त किये जाने वाले कार्मिकों की परीक्षा लेता है, तो वह प्रत्यक्ष परीक्षा कहलाती है । प्रत्यक्ष परीक्षा के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है ।

- परोक्ष परीक्षा

जब राजा स्वयं परीक्षण न करके अन्य व्यक्तियों से परीक्षण करवाये एवं उनके निर्णय के आधार पर भर्ती करें, तो वह परोक्ष परीक्षा कहलाती है । परोक्ष परीक्षा के अन्तर्गत शास्त्र नैपुण्य, प्रज्ञा, स्मरण शक्ति, चातुर्थ,वाक्पटुता, धैर्य आदि गुणों का परीक्षण सहपाठियों के माध्यम से किया जाता है।

- अनुमेय

अनुमेय परीक्षा के अन्तर्गत राजा के द्वारा कार्मिकों से ऐसे कार्य करवाये जाते थे, जिससे देश व काल का अतिक्रमण किये बिना अभ्यर्थी स्वविवेक से कार्य सम्पादित करे । अप्रत्यक्ष रुप से कार्मिक द्वारा किये गए कार्यो से उसकी व्यावहारिक योग्यता की परीक्षा की जाती थी ।

उपर्युक्त परीक्षाओं में सफल व्यक्तियों को कौटिल्य सर्वप्रथम अमात्य पद पर नियुक्त करने के पक्षधर थे, किसी विशिष्ट विभाग के सम्पूर्ण दायित्व अमात्य को प्रदान करने से पूर्व पुन: परीक्षा की जाती थी । विभिन्न विभागों की कार्य -प्रकृति भिन्न -भिन्न होने के कारण, एक विभाग की कार्य - प्रकृति के अनुरुप योग्यता रखने वाले अमात्य को ही 'अध्यक्ष' या उच्चाधिकारी पद पर नियुक्ति दी जाती थी ।

प्रशिक्षण

कार्मिकों की कार्यकुशलता हेतु यह आवश्यक है कि उन्हें अपने पदानुरूप दायित्व निर्वाह का पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त हो । कार्यकुशलता मात्र वर्तमान प्रशासन की आवश्यकता ही नहीं है वरन् प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था की सफलता भी कार्यकुशल कार्मिकों द्वारा ही संभव थी।

कौटिल्य द्वारा निश्चित प्रशिक्षण संस्थान एवं प्रशिक्षणानार्थ का उल्लेख न किया जाकर भी प्रशिक्षण के महत्त्व को स्वीकार किया गया है । अयोग्य एवं अकार्यकुशल कार्मिकों का कौटिल्य ने तीव्र विरोध किया है । कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि उच्च पद के दायित्व प्रदान करने से पूर्व अधिकारियों को उस पद से सम्बन्धित पूर्ण सैद्धान्तिक ज्ञान होना चाहिये । उन्होंने विभिन्न पदों हेतु सैद्धान्तिक विषयों का उल्लेख भी किया है, उदाहरणार्थ - आकराध्यक्ष (खानों का अध्यक्ष) को धातुशास्त्र रसायन, आदि, समाहर्ता को विभिन्न करों, सन्निधाता को कोष से सम्बन्धित ज्ञान होना चाहिये । कौटिल्य उच्च पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति के पक्षधर थे । सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ कौटिल्य ने व्यावहारिक प्रशिक्षण को भी महत्त्व दिया है । कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' के द्वितीय अधिकरण में लिखा है कि आकराध्यक्ष पूर्व अनुभवी व्यक्तियों के साथ रहकर उनसे खान सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करे तथा खान से प्राप्त वस्तुओं का व्यापार करने वाले व्यक्तियों के सहयोग से पुरानी खान का प्रशिक्षण करे । अनौपचारिक प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु कौटिल्य ने कहा कि अमात्य (सचिव) आदि को सर्वप्रथम किसी सामान्य पद पर नियुक्त किया जाए, जिससे वर्तमान पद के दायित्वों के साथ-साथ अमात्य उच्च दायित्वों का भी अवलोकन करता रहे तथा जब सामान्य पद पर सफलता पूर्वक कार्य कर ले तो उसे उच्च पद प्रदान किया जाना चाहिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कौटिल्य ने अनौपचारिक व व्यावहारिक प्रशिक्षण को अत्यन्त महत्त्व दिया है, जिससे प्रत्येक अधिकारी अपने विभाग से सम्बन्धित दायित्वों का पूर्ण दक्षता से निर्वाह कर सके ।

वेतन

कौटिल्य ने राज्य के समस्त कार्मिकों हेतु पृथक-पृथक वेतन निर्धारित करने की अनुशंसा की है । 'अर्थशास्त्र में उल्लेखित है कि समर्थ सेवक जितने धन से मिल सके, उतना ही धन देकर उनकी नियुक्ति करनी चाहियें किन्तु आमदनी की वास्तविक स्थिति को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये । इस प्रकार वेतन निर्धारित करने समय कार्मिकों की योग्यता एवं राज्य की आय दोनों को ध्यान में रखना चाहिये ।

कौटिल्य ने विभिन्न पदाधिकारियों हेतु निम्नांकित वेतन व्यवस्था प्रस्तुत की है:-

पदाधिकारी	वार्षिक वेतन
➢ आचार्य, मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, राजमाता आदि	- 48,000 पण
➢ द्वारपाल, अन्तर्वेषिक, समाहर्ता	- 24000 पण
➢ नायक, सीताध्यक्ष सीमा-निरीक्षण	- 12,000 पण
➢ प्रदेष्टा, हाथी, घोड़े के निरीक्षण	- 8,000 पण
➢ अश्वारोधी रक्षारोही, गजारोही	- 4,000 पण
➢ गज शिक्षण, चिकित्सक, अश्व शिक्षण	- 2,000 पण
➢ ज्योतिषी, कथा वाचक आदि	- 1,000 पण
➢ चित्रकार, लेखक (क्लर्क) आदि'	- 500 पण
➢ पशु व मनुष्य के परिचायक	- 60 पण

कौटिल्य का मानना था कि भरण-पोषण के लिए पर्याप्त वेतन प्राप्त होने पर पदाधिकारी आराम से रह सकते हैं और वे राजा के प्रति कोप का कारण नहीं बनेंगे । यदि कोई कर्मचारी अधिक श्रम करता है तो उसे निर्धारित वेतन से अधिक वेतन दिया जाना चाहिये, जिससे कार्मिक में उत्साह उत्पन्न हो । राजा को अपनी आय, कार्मिकों के पद, योग्यता, श्रम आदि को ध्यान में रखकर कर्मचारियों के वेतन-भत्तों का उचित निर्धारण करना चाहिये, जिससे कार्मिक सदैव राज्यहित में दायित्व निर्वाह करते रहें।

पदोन्नति

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में ईमानदार कर्मचारियों को विशेष पुरस्कार देने की अनुशंसा की है । अर्थशास्त्र में स्पष्टत: पदोन्नति के सिद्धान्तों का विवरण नहीं होने के उपरान्त भी पदोन्नति के महत्त्व को स्वीकार किया है । कौटिल्य के अनुसार कार्यरत कार्मिकों की जानकारी गुप्तचरों से प्राप्त की जानी चाहिये । प्रत्येक विभाग के कार्मिकों हेतु पृथक-पृथक गुप्तचरों की नियुक्ति की जाए, जो समय-समय पर राजा के समक्ष उनका कार्य-मूल्यांकन प्रस्तुत करते रहें और इस आधार पर कार्मिकों को पुरस्कार स्वरूप उच्च पद प्रदान किया जाए ।

कौटिल्य ने योग्यता के आधार पर पदोन्नति देने को महत्त्व दिया है, जिससे ईमानदार, कर्मनिष्ठ, कार्यकुशल कार्मिकों की सेवाओं का लाभ राष्ट्र को प्राप्त हो सके । योग्यता को महत्त्व देते

हुए भी, कौटिल्य ने 'अनुभव का उल्लंघन नहीं किया है । उनका कहना है कि जो पुरूष वृद्ध तथा अत्यन्त अनुभवी हैं उन्हें उत्तराध्यक्ष अर्थात् अन्य अध्यक्षों का निरीक्षण करने वाला प्रधान अध्यक्ष बनाया जाए। इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य वरिष्ठ व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त करने के पक्ष में थे, जिससे उनके अनुभव का लाभ प्रशासन को प्राप्त होता रहे।

अनुशासनात्मक कार्यवाही

राजकीय नियमों का उल्लंघन करके कार्य से विमुख होने वाले कार्मिकों के लिए कौटिल्य ने दण्ड की व्यवस्था की है । उनके अनुसार - राजा प्रत्येक कार्य के लिए अध्यक्षों की नियुक्ति करे, यदि उनमें से कोई अपराध कर बैठे तो राजा उनको दण्डित करे, चाहे वह उसका कोई स्वजन ही क्यों न हो।

कौटिल्य के अनुसार सरकारी पदाधिकारियों का चरित्र उज्जवल होना चाहिये और उन्हें कानून के अन्तर्गत कार्य करना चाहिये। कार्मिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही तब ही की जानी चाहिये, जब उनके विरूद्ध अपराध सिद्ध हो जाए । साथ ही अपराधी कार्मिकों को दिया जाने वाला दण्ड अपराध के अनुरूप ही होना चाहिये । यदि छोटे अपराध के लिये कठोर दण्ड दिया जाए तो प्रभावी क्षेत्र में उपद्रव हो सकता है । अत: दण्ड में औचित्य का होना आवश्यक है ।

विभिन्न कार्मिकों हेतु पृथक-पृथक दण्ड की व्यवस्था करने के अतिरिक्त, कौटिल्य ने अनुशासनात्मक कार्यवाही के अन्तर्गत दो प्रकार के दण्ड की व्यवस्था की है - प्रथम साधारण दण्ड, द्वितीय गम्भीर दण्ड । साधारण दण्ड उन अपराधों हेतु प्रदान किया जाता था, जिनकी क्षतिपूर्ति आर्थिक आधार पर संभव थी । तथा जो अपराध कार्मिक को प्रभाववश होते थे । सामान्यत: साधारण दण्ड में कार्मिकों के वेतन से कटौती की जाती थी, इसके विपरीत यदि पदाधिकारियों के अपराध से प्रशासनिक व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ता था तो गम्भीर दण्ड प्रदान किया जाता था ।

यदि राज्य कर्मचारी राज्य के धन का अपहरण कर ले तो, कौटिल्य के अनुसार उन कर्मचारियों से वह धन छीनकर उन्हें उच्च पद से पदच्युत करके निम्न कार्यो पर नियुक्ति कर दिया जाए, जिससे अपराध की पुनरावृत्ति न हो । अर्थात् भ्रष्ट कर्मचारियों को पदानवती दे दी जावे । इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने विभिन्न अध्यक्षों हेतु पृथक-पृथक दण्ड की व्यवस्था की है, इसका कारण यह है कि प्रत्येक विभाग का प्रशासन में पृथक महत्त्व है तथा विभाग में कार्यरत कार्मिकों के व्यवहार का प्रभाव प्रशासन में विभाग के महत्त्व के अनुरुप पड़ता है । अत: कौटिल्य ने न्यायाधीश द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के विरुद्ध काम करने पर पदच्युत करने, प्रदेष्टा, जेल अधिकारियों को अर्थ दण्ड देने का प्रावधान किया है ।

2.2.3 प्रशासन में भ्रष्टाचार

अधिकारियों की नियुक्ति पूर्ण परीक्षा करके किये जाने के उपरान्त भी कौटिल्य उनके भ्रष्ट होने की संभावना से इन्कार नहीं करते । उनका कहना था- 'जिस प्रकार जीभ पर रखे शहद या जहर के सम्बन्ध में कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूँ यह नहीं हो सकता। जीभ पर रखी हुई चीज की इच्छा न होने पर भी स्वाद आ ही जाता है, ठीक इसी प्रकार राजा के अर्थ सम्बन्धी कार्यो पर नियुक्त हुए कर्मचारी, उस अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न लें, कदापि नहीं हो सकता। वे थोड़ा बहुत धन का अपहरण अवश्य ही करते हैं।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने चालीस प्रकार के उन उपायों का उल्लेख किया है, जिनसे भ्रष्टाचार पनपता है । इनमें से भ्रष्टाचार के कतिपय तरीके इस प्रकार हैं :-

- प्रथम फसल से प्राप्त द्रव्य को द्वितीय फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना ।
- रिश्वत लेकर कर वसूल न करना ।
- राज्य कर से मुक्त वर्ग से गुप्त रुप से कर वसूल करना ।
- पक्षपात करना।
- बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य वस्तु से परिवर्तित कर लेना ।
- बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ा देना ।
- प्रदत्त वेतन से अधिक वेतन का उल्लेख करना ।
- कार्यरत अधीनस्थ कार्मिकों की संख्या अधिक बताकर उनके नाम का वेतन स्वयं रख लेना।
- धर्मार्थ प्रदान किये जाने वाले धन की कुछ राशि रख लेना ।
- कर्मचारियों द्वारा चोरी करना ।
- जेलर द्वारा रिश्वत लेकर कैदी को छोड़ देना । आदि ।

उपर्युक्त उपायों को अपनाकर कर्मचारी राजकोष में क्षय कर सकते हैं । राजकोष सम्पूर्ण व्यवस्था का हृदय होता है । कार्मिकों में भ्रष्टाचार पनप जाने के परिणामस्वरुप कोष का दुरूपयोग होने लगता है, प्रशासनिक कार्यकुशलता में शिथिलता आती है, परिणामस्वरुप राष्ट्र का विकास अवरूद्ध हो जाता है ।

भ्रष्टाचार का प्रतिकार

आचार्य कौटिल्य के अनुसार भ्रष्टाचार को निम्नांकित उपायों से रोका जा सकता है -

- पदाधिकारियों के भ्रष्टाचार की सूचना गुप्तचरों से प्राप्त की जा सकती है ।
- भ्रष्टाचार की जांच हेतु जांच समिति बनाई जाए ।
- भ्रष्टाचार की सूचना देने वाले को पुरस्कृत किया जाए ।
- कार्मिकों का समय - समय पर स्थानान्तरण करते रहना चाहिये ।
- भ्रष्ट उपायों से सम्पन्न हुए कर्मचारी को राजा पदच्युत करके उसकी सम्पत्ति अपने अधिकार
- में कर ले।
- भ्रष्ट कार्मिकों के मुंह पर गोबर लगाकर और राख लगाकर नगर/ गाँव में घुमाना ।

कौटिल्य ने राजा को सुझाव दिया है कि भ्रष्ट कार्मिक के विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाही पूर्ण साक्ष्य के आधार पर ही करनी चाहिये, ताकि ईमानदार कार्मिक निसंकोच दायित्व निष्पादन कर सके ।

2.2.4 स्थानीय प्रशासन

कौटिल्य ने प्रशासनिक शक्ति को केन्द्र के स्थानीय स्तर तक विभाजित किया था । गर की शासन व्यवस्था बनाए रखने हेतु 'नागरिक' नामक अधिकारी नियुक्त किया जाता था, जो नागरिक प्रशासन के दायित्वों को वहन करते हुए नगर की स्वच्छता, नगर में संदेहास्पद व्यक्तियों व प्राकृतिक आपदाओं की पूर्व सूचना देने हेतु उत्तरदायी था ।

कौटिल्य ने राज्य में ग्रामीण स्तर तक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने हेतु निम्नानुसार व्यवस्था प्रस्तुत की-

जनपद स्थानीय (800 गाँवों पर)

द्रोणमुख (400 गाँवों पर)
खार्वटिक (200 गाँवों पर)
संग्रहण (10 गाँवों पर)

ग्रामीण स्तर पर प्रमुख अधिकारी 'गोप' कहलाता था, जो राजस्व एकत्रित करने के साथ-साथ समन्वयक की भूमिका भी निभाता था।

मौर्यकालीन नगरीय प्रशासन पर विचार व्यक्त करते हुए मेगस्थनीज ने लिखा है कि नगर का शासन छ: निकायों में विभक्त था, जिनमें से प्रत्येक निकाय में पाँच सदस्य होते थे । प्रथम निकाय के सदस्य औद्योगिक क्षेत्र, द्वितीय निकाय के सदस्य विदेशियों के मनोरंजन स्वास्थ्य सम्पत्ति आदि की देखरेख हेतु, तृतीय निकाय जन्म व मृत्यु की जांच से सम्बन्धित व चतुर्थ निकाय व्यापार व वाण्ज्यि के निरीक्षण हेतु उत्तरदायी था । इस निकाय के सदस्य नाप व मापतौल के मापदण्डों का निरीक्षण करते थे तथ इस बात का ध्यान रखते थे कि उत्पादित पदार्थ अनुकूल ऋतुओं में सार्वजनिक क्षेत्र में विक्रय किये जाए । पंचम निकाय निर्मित पदार्थो का निरीक्षण करता था । नये पदार्थों में पुराने पदार्थ बेचने वाले व्यक्ति पर जुर्माना किया जाता था । शष्ठम निकाय के द्वारा बेची गई सामग्री के मूल्य का दसवाँ भाग 'कर' (Tax) के रुप मैं एकत्रित करने हेतु उत्तरदायी था ।

मेगस्थनीज द्वारा प्रस्तुत नगरीय शासन का वर्णन 'अर्थशास्त्र' में वर्णित नागरिक के दायित्वों के समीप है । नागरिक के अधीन स्थानीक व गोप अधिकारी कार्यरत थे, जो स्थानीय स्तर की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था, कानून व्यवस्था तथा राजकीय कार्यो हेतु उत्तरदायी थे ।

यद्यपि स्थानीय प्रशासन के सम्बन्ध में कौटिल्य क स्वसस्थित एवं क्रमबद्ध नहीं हैं, तथापि 'अर्थशास्त्र लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के महत्व को इंगित करता है, जिसकी पुष्टि मेगस्थनीज की इण्डिया' भी करती है ।

2.3 न्याय व्यवस्था

प्राचीन वैदिक काल में न्याय प्रशासन जातियों द्वारा संचालित होता था । न्यायिक प्रक्रिया अत्यंत साधारण थी किन्तु राज्य के दायित्वों में वृद्धि के साथ-साथ राजा न्याय का आधार बन गया। न्याय की अन्तिम शक्ति राजा में निहित थी । न्याय-सभा में उपस्थित होने का अधिकार जनसाधारण को प्राप्त था ।

कौटिल्य ने न्याय को महत्त्व प्रदान करते हुए कहा है कि मानव द्वारा स्वधर्म पालन से लोक-परलोक सुधरता है । प्रजा स्वधर्म पालन में तत्पर रहे, इसी लिए कानून, न्याय और दण्ड का प्रबन्धन किया जाता है । वस्तुत: न्याय व्यवस्था के अभाव में नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो सकती एवं स्वतंत्रता के अभाव में प्रजा को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती अर्थात् न्याय के अभाव में प्रजा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से वंचित रहती है । अत: न्याय व्यवस्था पर प्रजा के उद्देश्यों की पूर्ति अवलम्बित है।

कौटिल्य ने समुचित न्याय व्यवस्था को राज्य के हृदय के रुप में स्वीकार करते हुए दृढ़ विचार व्यक्त किया है कि जो राज्य प्रजा को न्याय प्रदान नहीं कर सकता, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है अत: राजा का दायित्व है कि वह प्रजा के जीवन व सम्पत्ति की रक्षा करके तथा अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करके' न्याय की स्थापना करे ।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

कौटिल्य राजा को सम्पूर्ण न्यायिक संगठन का सर्वोच्च पदाधिकारी मानते हैं। राजा के द्वारा विभिन्न स्तरों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती थी। कौटिल्य ने एकल न्यायाधीश वाले न्यायालय को उचित नहीं माना, क्योंकि एक ही न्यायाधीश होने पर वह स्वेच्छाधारी हो सकता है।

उच्चतर न्यायालयों में तीन धर्मस्थ न्यायाधीश और तीन अमात्य होने चाहिये, जो जनपद संधि, संग्रहण, द्रोणमुख एवं स्थानीय स्थलों पर विवादों को सुने एवं व्यवहार सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करे।

इस प्रकार कौटिल्य ने न्यायालयों में दो या दो से अधिक न्यायाधीश नियुक्त करने के पक्ष में विचार व्यक्त किये हैं, जिससे निष्पक्ष न्याय व्यवस्था स्थापित हो सके।

2.3.1 न्यायालय के प्रकार

कौटिल्य ने न्यायपालिका की विकेन्द्रित व्यवस्था स्थापित करने को महत्त्व दिया। उनके अनुसार सम्पूर्ण राज्य में चार स्थलों पर न्यायपालिका की स्थापना की जानी चाहिये। स्थानानुसार चार प्रकार के न्यायालय हैं:-

- जनपद सन्धि न्यायालय

  दो नगरों / गाँवों की सीमा पर जिस न्यायालय की स्थापना की जाती है, उसे जनपद सन्धि न्यायालय कहा जाता है।
- संग्रहण न्यायालय -

  दस गाँवों के केन्द्र में स्थापित न्यायालय संग्रहण न्यायालय कहलाते हैं।
- द्रोणमुख न्यायालय-

  चार सौ गाँवों के केन्द्र में स्थापित न्यायालय द्रोणमुख न्यायालय कहलाते हैं।
- स्थानीय न्यायालय

  आठ सौ गाँवों के मध्य जिस न्यायालय की स्थापना की जाती है, उसे स्थानीय न्यायालय कहा जाता है।

चारों न्यायालयों में प्रत्येक में तीन न्यायाधीश होते हैं। संग्रहण न्यायालय की स्थापना से स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने ग्रामीणों के निवास स्थान के निकट ही न्याय की व्यवस्था की है। इन चारों न्यायालयों को श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सभी एक-दूसरे से पूर्णतः पृथक एवं स्वतंत्र हैं। एक न्यायालय दूसरे न्यायालय से उच्च या निम्न कोटि का नहीं है।

न्यायालय में नियुक्त न्यायाधीश समान योग्यता एवं श्रेणी के होते हैं। न्यायाधीशों के निर्णयों के विरुद्ध केवल राजा के पास ही अपील की जा सकती थी।

न्यायालयों का उक्त प्रकार स्थान विशेष पर स्थापना के संदर्भ में वर्णित है कौटिल्य क अनुसार मुकदमों एवं कानूनों के आधार पर दो प्रकार के न्यायालय होते हैं।

1. **धर्मस्थीय न्यायालय**

धर्मस्थीय से तात्पर्य नागरिकों के पारस्परिक व्यवहार में उत्पन्न होने वाले विवादों का निर्णय करना है। वस्तुतः नागरिकों के पारस्परिक झगड़ों के मूल कारणों को ज्ञात करके उनकी विवेचना करना

और निष्पक्ष होकर दोषी को दण्ड देना व निर्दोष को मुक्त कर देना, कौटिल्य की न्याय व्यवस्था का प्रथम व्यवहार पक्ष है ।

धर्मस्थीय न्यायालय के अन्तर्गत निम्नांकित विवादों का समावेश होता है :-

- विवाह, पति-पत्नि द्वेश, स्त्रीधन, पुनर्विवाह का अधिकार आदि ।
- उत्तराधिकारी के सामान्य नियम । '
- गृह निर्माण, मकान बेचना, सीमा विवाद, गाँवों की व्यवस्था आदि ।
- मे व्याज के नियम
- उधार ली गई वस्तु को लौटाना. फुटकर वस्तुओं को बेचने के नियम ।
- दास व श्रमिक सम्बन्धी नियम ।
- डाका डालना, हत्या सम्बन्धी विवाद ।
- निन्दा, धमकाना आदि ।
- जुआ सम्बन्धी विवाद ।

उपर्युक्त विषयों से सम्बन्धित विवादों की सुनवाई धर्मस्थीय न्यायालय में होती है । धर्मस्थीय न्यायालय वर्तमान के 'दीवानी न्यायालय' के समान है किन्तु वर्तमान में डकैती, हत्या, जुआ आदि विवाद फौजदारी न्यायालय के क्षेत्राधिकारी के अन्तर्गत आते हैं, जबकि कौटिल्य ने इन विवादों को दीवानी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रखकर विचार किया है ।

2. **कण्टकशोधन न्यायालय:-**

कण्टकशोधन न्यायालय का उद्देश्य राजा एवं राज्य के शत्रुओं को दूर करना है, यह न्यायालय राज्य के विरूद्ध किये जाने वाले सभी अपराधों पर कार्यवाही करता है । कौटिल्य के अनुसार कण्टकशोधन न्यायालय के प्रमुख क्षेत्राधिकार निम्नांकित हैं-

- उपभोक्ता - संरक्षण
- प्राकृतिक आपदाओं से प्रजा की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है, इस पर न्यायालय विचार - विमर्ष करता है ।
- गुप्त शड़यंत्रकारियों से प्रजा की रक्षा
- संदिग्ध पुरुषों की पहचान व कार्यवाही
- चोरी
- राज्य के कार्मिकों के द्वारा किये गए अपराध
- राजद्रोह

कौटिल्य ने उक्त समस्त अपराधों को कण्टक की श्रेणी में रखा है एवं यह व्यवस्था की है कि ऐसे अपराधियों का पता लगाने के लिए राजा के द्वारा गुप्तचरों की व्यवस्था की जानी चाहियें एवं न्यायालय के द्वारा उन्हें दण्डित किया जाना चाहिये ।

कण्टकशोधन न्यायालय के रुप में कौटिल्य ने जो व्यवस्था की है उससे प्रतीत होता है कि समाज में नितान्त परोक्षरूप से घटित होने वाले शोषणों का भी सूक्ष्म अध्ययन किया गया था ।

न्याय व्यवस्था के गुण

कौटिल्य द्वारा वर्णित न्याय व्यवस्था के निम्नांकित गुण हैं -

- कौटिल्य के अनुसार न्याय का मूल उद्देश्य है - प्रजा के जीवन व सम्पत्ति की रक्षा करना। यह उद्देश्य व्यावहारिक के निकट है ।
- न्याय व्यवस्था में कानून के प्रकाण्ड विद्वान एवं चरित्रवान ही न्यायाधीश के पद को ग्रहण कर सकते है।
- दीवानी व फौजदारी कानूनों का विवेचन किया गया है ।
- न्यायपालिका की कार्यपद्धति पर सूक्ष्म विवेचन व्यक्त है ।
- न्याय व्यवस्था में निर्भयता व निष्पक्षता को महत्त्व दिया है ।
- साक्षियों पर कौटिल्य ने विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है ।
- कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत न्याय व्यवस्था वर्तमान राज्यों में स्थित न्याय व्यवस्था से काफी साम्य रखती है ।

न्याय व्यवस्था के दोश

कौटिल्य के न्याय के निम्नांकित दोष विशेष रूप से उल्लेखनीय है -

- कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' के तृतीय व चतुर्थ अधिकरण में कानून, न्याय व दण्ड तीनों की मीमांसा की है, जिस कारण उनके विचारों में श्रमबद्धता का अभाव है ।
- न्याय व्यवस्था में वकीलों का स्थान नहीं है ।
- दीवानी व फौजदारी कानूनों में स्पष्ट भेद नहीं है ।
- न्यायाधीश स्वतंत्र नहीं है । वे राजा के अधीन कार्य करते हैं ।
- कौटिल्य ने जनपद सन्धि, द्रोणमुख और स्थानीय न्यायालयों का उल्लेख तो किया है, किन्तु उनका विस्तृत विवेचन नहीं किया ।

कौटिल्य की न्याय व्यवस्था के उक्त दोषों के उपरान्त भी यह न्याय व्यवस्था तत्कालीन प्रशासन में एक आदर्श व्यवस्था कही जा सकती है । राजतंत्र के परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य के द्वारा राजा को अपील का अन्तिम न्यायालय मानना, गरिमा व यथार्थपरकता का सूचक है ।

कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में उक्त व्यवस्था को व्यावहारिक रुप प्रदान किया था तथा सम्राट अशोक ने भी अपने शासनकाल में कौटिल्य द्वारा विवेचित न्याय व्यवस्था का क्रियान्वयन किया था । उक्त न्याय व्यवस्था प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित, जनहितकारी एवं अनुशासित थी ।

2.3.2 दण्ड व्यवस्था

कौटिल्य का विचार है कि मनुष्य जिस समाज में रहता ह, उस अपराध एक स्वभाविक वृत्ति है तथा एक मनुष्य द्वारा किया गया अपराध दूसरे व्यक्ति को भी अपराध प्रकृति की ओर प्रेरित करता है । अत: राज्य में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान होना आवश्यक है।

यद्यपि 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य ने निरंकुश राजतंत्र की प्रशंसा की है, किन्तु उनके द्वारा राजा के स्थान पर विधि को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है । राजा विधि के शासन का संचालन करते हु ए स्वयं कानून का पालन करता है एवं प्रजा से कानून का पालन करवाता है । कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य यह था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें और सदाचार में प्रवृत रहें । यदि कोई व्यक्ति धर्म मार्ग से विचलित होता है, तो दण्ड के माध्यम से उसे सन्मार्ग दिखाया

जा सकता है । कौटिल्य ने धर्म और सदाचार की अवरोधक प्रवृत्तियों के दमन हेतु दण्ड की व्यवस्था की है । प्राचीन व्यवस्था में दण्ड को संसार का निर्वाहक स्वीकार करते हुए, राजा के दण्ड के प्रति सजग रहने की व्यवस्था की गई थी तथा यह स्वीकार किया गया कि दण्ड के अतिरिक्त इस प्रकार का कोई साधन नहीं है, जिससे समस्त प्राणियों को वश में रखा जा सके । जबकि आचार्य कौटिल्य ने इस व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए कहा है कि "कठोर दण्ड देने वाले से प्रजा खिन्न हो जाती है तथा दण्ड में कमी करने वाला राजा प्राणियों द्वारा तिरस्कृत होता है। अत: राजा उचित दण्ड देने वाला होना चाहिये, क्योंकि विधिपूर्वक शास्त्रसम्मत प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजा को धर्म, अर्थ और काम से युक्त करता है । '

दण्ड का स्वरुप

कौटिल्य दण्ड व्यवस्था बहुत ही वैज्ञानिक है । जिस रुप में मानव धर्म सुरक्षित रह सके तथा समाज में लोक-कल्याण के आदर्श प्रतिष्ठित रहे, वैसे ही विधान से दण्ड की व्यवस्था की गई है । कौटिल्य के अनुसार राजा दण्डाधिकारी होता है, अत: उसके द्वारा प्रयुक्त दण्ड सुधारात्मक होना चाहिये । कौटिल्य ने राजा को इन्द्र व यम के समान माना है । राजा को संहारात्मक एवं प्रतिशोधात्मक दण्ड नहीं देना चाहिये । दण्ड व्यवस्था निष्ठुरतापूर्वक न होकर दयापूर्ण होनी चाहिये । निष्ठुर दण्ड देने पर प्रजा राजा के विरुद्ध हो जाती है । अधर्मपूर्वक प्रदत्त दण्ड धन, कीर्ति एवं सुख तीनों को नष्ट कर डालता है ।

दण्ड की आवश्कयता एवं महत्त्व

प्राचीनकाल में दण्ड को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, यहाँ तक कि दण्ड को ही धर्म माना जाता था । प्राचीन शास्त्रों के अनुसार :-

"दण्ड प्रजा पर शासन करता है, दण्ड ही रक्षा करता है, जब सब सोते हैं तब दण्ड ही जागता है । बुद्धिमानों ने दण्ड को ही धर्म कहा है । "

यदि दण्ड का प्रयोग न किया जाए तो शक्तिशाली वर्ग निर्बलों को सताने लगते हैं और 'मत्स्य न्याय' उत्पन्न हो जाता है । इसलिए सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था दण्डनीति के अधीन होती है ।

संक्षेप में कौटिल्य ने दण्ड का महत्त्व इस प्रकार बताया है :-

(i) शत्रु दण्ड के अधीन रहते हैं ।
(ii) दण्ड, प्रजा को सुरक्षित रखता है ।
(iii) दण्ड से, राज्य सम्पदा युक्त हो जाता है ।
(iv) दण्ड के अभाव से, अच्छे मंत्रियों का भी अभाव हो जाता है ।
(v) दण्ड के भय से लोग अकरणीय कार्य नहीं करते ।
(vi) दण्डनीति के आश्रय से ही आत्मरक्षा होती है ।
(vii) देश की आर्थिक तथा राजनीतिक दष्ढ़ता दण्डनीति पर ही निर्भर करती है ।
(viii) दण्ड, धर्म, अर्थ व काम तीनों का वैद्यानिक संरक्षक है ।
(ix) राजदण्ड के भय से ही पाप रुकते हैं ।
(x) अपराधियों को दिये गए दण्ड से राष्ट्र की शुद्धि होती है ।

उक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था में दण्ड का पर्याप्त महत्त्व था संभवत: दण्ड व्यवस्था के कारण ही प्रशासन सुव्यवस्थित था । जैसे-जैसे राज्य के दायित्व बढ़ने लगे, प्रशासनिक सत्ता का हस्तान्तरण होने लगा और पदाधिकारियों में कार्यकुशलता बनाए रखने के उद्देश्य से दण्ड व्यवस्था विकसित होती गई । तत्कालीन प्रशासन में दण्ड को जो महत्त्व प्राप्त था, वही मध्य युग व वर्तमान काल में भी व्याप्त है ।

दण्ड के प्रकार

प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के दण्डों में शारीरिक दण्ड अधिक दिया जाता था । मनुस्मृति मौखिक दण्ड, अर्थदण्ड, अपमानित करना एवं प्राणदण्ड के प्रावधानों का उल्लेख करती है । मनुस्मृति में कारागार का उल्लेख प्राप्त नहीं होता किन्तु मौर्यकालीन प्रशासन में कैद की सजा का प्रावधान मिलता है ।

कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' में तीन प्रकार के दण्डों का वर्णन मिलता है :-

(a) शारीरिक दण्ड

छ: डण्डे मारना,
सात कोड़े मारना,
हाथ-पैर बांधकर लटका देना,
नाक में नमक का पानी डालना
बत्तीस थप्पड़ मारना,
हाथ के नाखून में सूई चुभोना
घी पिलाकर पूरे दिन धूप में बैठाना
सर्दी की रात्रि में जलयुक्त चारपाई पर सुलाना
अंगुली की एक पोर जला देना, तथा

(b) आर्थिक दण्ड

कौटिल्य ने आर्थिक दण्ड को मुख्यत: तीन श्रेणियों में विभक्त किया है -

(i) प्रथम साहस - इस दण्ड की सीमा अड़चालीस से छियानवे पण (तत्कालीन मुद्रा) तक निर्धारित थी ।

(ii) मध्यम साहस - यह दण्ड दो सौ से पाँच सौ पण तक दिया जाता था ।

(iii) उत्तम साहस - यह दण्ड पाँच सौ से एक हजार पण तक होता था ।

इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े अपराधों हेतु भिन्न-भिन्न राशि के अर्थदण्डों का निर्धारण, कौटिल्य के द्वारा किया गया है। आर्थिक दण्ड उन अपराधों हेतु दिया जाता था जिनकी क्षतिपूर्ति धन से संभव थी या जो छोटे अपराध होते थे ।

(c) कारागार

मनुस्मृति में कैद की सजा का प्रावधान नहीं मिलता किन्तु अर्थशास्त्र का अध्ययन करने से हमें 'कारागार' की सजा का उल्लेख प्राप्त होता है । अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने लिखा है - "यदि कोई ब्राह्मण राजसिंहासन के विरुद्ध कार्य करे तो उसे आजीवन काल कोठरी में डाल देना चाहिये ।"

कारागृह के सम्बन्ध में कौटिल्य का मत है कि न्यायाधीश से दण्ड प्राप्त व्यक्तियों को कारागृह में रखना चाहिये । कारागृह में स्त्री-पुरूष के लिए पृथक-पृथक स्थान होना चाहिये । उसके बहिमार्ग एवं चारों तरफ की उचित प्रकार से रक्षा होनी चाहिये ।

कौटिल्य ने शुभ अवसरों पर कैदियों को मुक्त करने के सम्बन्ध में लिखा है कि किसी नये देश पर विजय प्राप्त करने पर, युवराज का राज्याभिषेक होने पर, राजपुत्र के जन्मोत्सव पर कैदियों को छोड़ देना चाहिये ।

इस प्रकार कौटिल्य ने सजा के प्रावधान के साथ-साथ कैदियों की सजा पूर्व मुक्त करने की भी व्यवस्था की थी ।

कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त दण्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर प्रकृति की थी किन्तु तत्कालीन व्यवस्था में इस प्रकार की दण्ड व्यवस्था को समर्थन प्राप्त था । उचित दण्ड के कारण राज्य अपराधियों की संख्या कम होती थी । मौर्य काल में प्रजा ने द्वारों पर ताले लगाना बन्द कर दिया था एवं एकान्त स्थानों पर सुरक्षित यात्रा संभव थी । विदेशी राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' में लिखा है कि तत्कालीन भारत में चोरी के अपराध बहुत कम होते थे । प्राणदण्ड के अवसर भी कम आते थे । इस आधार पर कहा जा सकता है कि कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था व्यवहारिक होने के साथ-साथ इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है ।

2.4 सारांश

विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में कौटिल्य के विचार की समीक्षा करने के उपरान्त यह स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति एवं प्रशासन का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के हृदय परत पर कौटिल्य का नाम चिरस्मरणीय रहेगा । भारतीय इतिहास के लिए यह गौरवपूर्ण तथ्य है कि सैकड़ों वर्ष पूर्व एक ऐसी महान विभूति ने जन्म लिया, जिसके द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुमान करते हुए भारतीय अपनी व्यवस्था का चहुंमुखी विकास करके विश्व परल पर मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकता है।

भारतीय राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा शिक्षाविदों का कर्त्तव्य बनता है कि वह दूषित शासनतंत्र को स्वस्थ बनाने हेतु कौटिल्य की विचारधारा का वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए क्रियान्वित करने का प्रयास करें, जिससे भारत में पुन: एक स्वर्णिम शासन व्यवस्था का सूत्रपात हो सके । कौटिल्य की विचारधारा किसी एक काल, व्यवस्था या व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर सार्वकालिक व सर्वांगीण है । कौटिल्य के विचारों में आदर्श व यथार्थ का अद्भुत समन्वय दृष्टिगत होता है । प्रत्येक व्यवस्था के साथ प्रगति की संभावना संयुक्त होती है, अत: वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के संदर्भ में भी यह उपयुक्त होगा कि हम प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था वो आदर्श तत्व ग्रहण करें, जिनसे आतंकवाद भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, लालफीताशाही जैसी घातक समस्याओं से मुक्त होकर, एक परिमार्जित व्यवस्था की स्थापना कर सके । वर्तमान व्यवस्था के परिमार्जन हेतु विघ्नों के प्रति संशय रहित होकर, अर्थशास्त्र में उल्लेखित व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था आदि का पुन: शोध करके क्रियान्वयन की संभावनों पर सोचना चाहिये ।

2.5 अभ्यास प्रश्न

1. कौटिल्य द्वारा वर्णित अधिकारी वर्ग की विवेचना कीजिये।

2. कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित कार्मिक प्रशासन की समस्याओं की तुलना वर्तमान व्यवस्था से कीजिये ।
3. कौटिल्य की न्याय व्यवस्था का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये ।
4. कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था पर अपनी सहमति या असहमति की तार्किक व्याख्या कीजिये ।
5. कौटिल्य के प्रशासनिक विचार आज के युग में कितने प्रासंगिक हैं? विवेचना कीजिये ।

2.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. कांगले,आर.पी.दि कौटिल्य अर्थशास्त्र, नई दिल्ली: मोतीलाल बनरसीदास, 1988
2. गैरोला, वायस्पति, कौटिल्य अर्थशास्त्रम्, वाराणसी: चौखम्बा विद्या भवन, 1975
3. रंगराजन एल. एन., कौटिल्य दि अर्थशास्त्र, नई दिल्ली: पेंग्विन बुक्स, 1992
4. शास्त्री, उदयवीर, कौटिल्य अर्थशास्त्र, नई दिल्ली: मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, 1988
5. शास्त्री, टी. गणपति, दि अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, मुम्बई: भारतीय विद्या भवन, 1988
6. शास्त्री, शाम आर., दि अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, बैंगलोर: 1962
7. स्मिथ, यू.ए., दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड क्लेरेण्डेन प्रेस, 1957

इकाई -3

जवाहर लाल नेहरू

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 जीवन परिचय
3.3 वैचारिक स्वरूप
3.4 प्रशासनिक विचार
3.4.1 राज्य की भूमिका
3.4.2 शासन की लोकतांत्रिक पद्वति
3.4.3 समाजवाद द्वारा सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति
3.4.4 आर्थिक नियोजन एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था
3.4.5 राष्ट्रवाद में प्रशासन की भूमिका
3.4.6 अंतर्राष्ट्रवाद एवं विदेश नीति
3.4.7 विश्व एकता
3.4.8 मानवतावाद
3.4.9 सत्ता का विकेन्द्रीकरण
3.4.10 नैतिक मूल्यों पर बल
3.4.11 भारत का आधुनिकीकरण
3.4.12 प्रशासनिक सुधार एवं प्रशासनिक संस्थाएँ
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्न
3.6 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप:

- जवाहर लाल नेहरू का जीवन परिचय एवं वैचारिक पृष्ठभूमि को समझ सकेगें ।
- राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में उनके प्रशासनिक विचारों की व्याख्या करना ।
- भारतीय लोक प्रशासन में नेहरू के योगदान को स्पष्ट कर सकेगे ।

3.1 प्रस्तावना

संसार को प्रशासनिक चिन्तन उपलब्ध कराने में भारतवर्ष सदैव अग्रणी रहा है । यह प्रशासनिक चिन्तन विश्व मे प्राचीनतम है । प्राचीन वेदों से लेकर आधुनिक प्रशासनिक चिन्तन में अपार राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक कोष संग्रहित है । इसमें निरंतरता एवं गत्यात्मकता सर्वकाल

से विद्यमान है। आधुनिक काल में पाश्चात्य जगत के साथ-साथ भारतीय चिन्तन के सामाजिक विकास में योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस प्रकिया मे मंथन एवं चिन्तन से प्रशासनिक जागरण के लिए कुछ ऐसे उच्च स्तरीय प्रशासकों का जन्म हुआ जो पूर्ण रूप भारतीय विचारधारा के समर्थक थे। इन्हीं में से अग्रणी जवाहर लाल नेहरू ने भारतवर्ष को राष्ट्रवाद की वैज्ञानिकता एवं अंतर्राष्ट्रीयवाद की आधुनिकता की ओर जाने वाला मार्ग प्रशस्त किया।

3.2 जीवन परिचय

जवाहरलाल नेहरू का जन्म पवित्र त्रिवेणी के संगम इलाहाबाद में 14 नवम्बर, 1889 को हुआ था। नेहरू को बच्चे बहुत पंसद थे। बच्चे उन्हें "चाचा नेहरू" कहकर बुलाते थे। इसलिये आज भी नेहरू के जन्म दिवस को "बाल दिवस" के रूप में मनाया जाता है। उनके पिता मोतीलाल नेहरू थे। पेशे से वकील मोतीलाल नेहरू काफी सम्पन्न व्यक्ति थे। जवाहर लाल नेहरू आंरभिक शिक्षण घर पर ही हुआ। अंग्रेज शिक्षकों द्वारा शिक्षित होने के कारण वे पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकर्षित हुए। 15 वर्ष की आयु में पिता ने स्कूली शिक्षा के लिए इग्लैण्ड भेज दिया जहाँ "हैरो'' के पब्लिक स्कूल में उन्होंने प्रवेश लिया। यहाँ पर उन्होंने दो वर्ष विद्यार्जन किया। उसके पश्चात उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए कैंब्रिज के ट्रिनिट कॉलेज में प्रवेश लिया। यहाँ से 1910 में रसायनशास्त्र, भूगर्भशास्त्र एवं वनस्पतिशास्त्र विषयों में ऑनर्स में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। तदोपरान्त उन्होंने बैरिस्टर (वकालत) की शिक्षा प्राप्त करने के लिए लंदन के "इनर टैम्पिल' में दाखिला लिया। 1912 में बैरिस्टर बनने के बाद वे भारत लौट आए और पिता के सहयोगी के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकालत प्रारम्भ की। इसी दौरान सार्वजनिक गतिविधियों की ओर आकर्षित होने के कारण उन्हें अपना पेशा नीरस एवं निर्जीव लगने लगा। 1912 में ही कांग्रेस के बॉकीपुरा अधिवेशन मे उन्होंने प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में उनकी मुलाकात महात्मा गाँधी से हुई। यह मुलाकात उनके राजनैतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लेकर आई। इसी वर्ष उनका विवाह कमला कौल से हुआ। मदन मोह्न मालवीय द्वारा स्थापित किसान सभा के वे 1918 में उपाध्यक्ष बने। 1919 के जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध मे वे सपरिवार गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में कूद गए। परिणाम स्वरूप, उन्हे बन्दी बनाकर 6 माह के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। नेहरू अपने जीवन में अनेक बार जेल गए जिसका उपयोग उन्होंने लेखनकार्य में किया। उन्होंने अपनी आत्मकथा (An Autobiography), ग्लिपसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री (Glimpses of World history) एवं डिस्कवरी ऑफ इण्डिया (Discovery of India) की रचना इस अवधि में की। 1929 में नेहरू जी पहली बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके पश्चात 1936,1937 एवं 1946 में भी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। अगस्त 1942 में "भारत छोडो आन्दोलन" मे भाग लेने के कारण उन्हें तीन वर्ष का कारावास मिला। 1945 में वे रिहा हुए और उसी वर्ष ब्रिटेन के आम चुनावों में लेबर पार्टी सत्ता में आई। 1947 में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की और जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। 27 मई 1964 को उनका निधन हुआ। वे स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अपनी मृत्यु तक देश के प्रधानमंत्री रहे।

3.3 जवाहर लाल प्रमुख रचनाएँ

विश्व इतिहास की झलक, 1934 (Glimpses of World History,1934)

आत्मकथा, 1936 (An Autobiography,1941)

भारत की एकता, 1941(The unity of India, 1941)

भारत की खोज, 1947(The Discovery of India,1947)

सोवियत रूस, 1928 (Soviet Russ, 1928)

पिता का पुत्री के नाम पत्र,1929 (letter from a father to his Doughter, 1929)

भारत एवं विश्व, 1936 (India and World,1936)

भाषा के प्रश्न, 1937(The Question of hanguages,1937)

भारत में 18 माह, 1938 (Eighteen Months in India, 1938)

चीन स्पेन एवं युद्ध, 1940 (China Spain and the War,1940)

स्वतन्त्रता की ओर, 1941 (Towards freedom1941)

पुराने पत्रों का गुच्छा, (A Bunch of old Letters,1958)

बहिन के नाम पत्र, 1963, (Letters to his Sisters, 1963)

अमेरिका का भ्रमण, 1950 (Visit to America, 1950)

3.4 वैचारिक स्वरूप

जिस प्रकार गाँधीजी के विचारों को "गाँधीवाद" के नाम से जाना जाता है उसी प्रकार नेहरू जी के विचारों को "नेहरूवाद" के रूप में प्रसिद्धि मिली । नेहरूवाद से तात्पर्य उन विचारों से था जिनके द्वारा "विधि के शासन" के माध्यम से राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास एवं न्याय उपलब्ध कराया जा सकें । ये विचार पूर्व में उल्लेखित उनकी तीनों रचनाओं का मिलाजुला स्वरूप है । भारतवर्ष के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में दिए गए उनके भाषण उनके वैचारिक सिद्धांतों की परिभाषा उपलब्ध करवाते है । उनके अनुसार लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना से व्यक्ति को राजत्रातक, सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं विकास उपलब्ध कराया जा सकता है । सुनियोजित प्रक्रिया द्वारा देश, समाज एवं व्यक्ति को सामाजिक-आर्थिक रूप से शक्तिशाली बनाया जा सकता है । इसमें राज्य अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । यही लोकतांत्रिक समाजवाद की आधारशीला है ।

3.4 प्रशासनिक विचार

नेहरू की विचारधाराओं की आधारशिला इतिहास के प्रति उनकी रूचि को माना जाता है । वे इतिहास को केवल एक कालक्रम न मानकर प्रशासनिक विकास को परिभाषित करने का साधन भी मानते थे । वे एक प्रगतिशील, व्यावहारिक एवं व्यापक दृष्टिकोण वाले प्रशासक के रूप में स्थापित थे । उनके द्वारा प्रतिपादित प्रशासनिक दृष्टिकोणों को हम आगामी परिच्छदों में वर्णित कर रहे है ।

3.4.1 राज्य की भूमिका

नेहरू के अनुसार समाज की अखण्डता के लिए राज्य आवश्यक है । व्यक्ति और राष्ट्र के लिए राज्य की उपस्थिति की अनिवार्यता को अनदेखा नहीं किया जा सकता । एक राजनैतिक एवं प्रशासनिक अभिकरण के रूप में राज्य शांति और व्यवस्था बनाए रखने में एवं व्यक्ति को आर्थिक साधन उपलब्ध कराने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । मानव एक सोचने समझने वाला प्राणी

होने के बावजूद सांसारिक बुराइयों का घर है । इन बुराइयों की अराजकता पर नियंत्रण करने के लिए राज्य अपरिहार्य है । प्रशासन राज्य के साधन के रूप इन ऋणात्मक प्रवृतियों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर व्यक्ति को सामाजिक-आर्थिक विकास की ओर अग्रसर करता है । इस कारण राज्य के प्रशासनिक कार्यो की प्रकृति लोक-कल्याणकारी हो चली है । आधुनिक राज्य पुलिस कार्यो तक ही सीमित न रहकर, व्यक्ति एवं समाज के कल्याण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । इस संबंध में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि राज्य की शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए । इससे आम जनता की स्वतंत्रता का हास होता है और प्रशासन में निरंकुशता की प्रवृति जन्म लेती है ।

3.4.2 शासन की लोकतांत्रिक पद्वति

नेहरू की मान्यता थी कि राज्य की लोक कल्याकारी प्रकृति शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली द्वारा ही अपने मूर्त रूप में आती है । लोकतंत्र मानव-मूल्यों को सुरक्षित रखने के साथ मानव स्वतंत्रता को भी सुनिश्चित करता है । लोकतंत्र के सिद्वान्तों एवं मूल्यों की स्थापना के लिए प्रशासन का भी लोकतांत्रिक होना आवश्यक है प्रशासन लोतंत्र में आमजन के विचारो एवं भाषणों की स्वंतत्रता, अवसर की समानता, आदि अधिकारों की सुरक्षा करता है । राज्य प्रशासन के माध्यम से सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । चूंकि लोकतंत्र में शासन की अन्तिम सत्ता जनता के पास होती है इसलिए प्रशासन जनता के प्रतिसंवेदनशील एवं समर्पित होता है । प्रभावशील प्रशासनिक नेतृत्व एवं जनसम्पक्र लोकतंत्र की दो प्रमुख आधारशिलाएं होती है । सभी प्रशासनिक कार्यो का आधार विधि का शासन होता है जिसमें सभी व्यक्तियों के लिए एक जैसा कानून एव कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान होते है । लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासनिक शक्ति एक स्थान पर केन्द्रीत न होने के कारण निरंकुशता की संभावना नही रहती ।

3.4.3 समाजवाद द्वारा सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति

1929 में काग्रेंस अध्यक्ष के रूप में नेहरू ने अपने भाषण में कहा कि "मुझे इस बात को स्पष्टता स्वीकार कर लेना चाहिए कि मै समाजवादी और गणतंत्रवादी हूँ । हमे इस बात को समझ लेना चाहिए कि समाजवाद ने विश्व के समस्त सामाजिक ढांचे को ही धीरे-धीरे प्रभावित कर लिया है और मतभेद केवल समाजवाद की पूर्ण प्राप्ति की गति और विकास के साधनों पर ही है । यदि भारत को अपनी निर्धनता और असमानता दूर करती है तो भारत को समाजवाद और लोकतंत्र का रास्ता अपनाना होगा, यद्यपि इसके लिए वह अपने तरीके निकाल सकता है और इस आदर्श को अपनी प्रतिभा के अनुकूल ढाल सकता है ।"

पं. नेहरू की मान्यता थी कि समानता के प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक-आर्थिक लाभ देने के उद्देश्य से राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य प्रक्रिया बन जाता है । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य को उत्पादन एवं वितरण की पद्धतियों पर नियंत्रण करने के साथ-साथ राष्ट्र के भौतिक संसाधनों को भी अपने नियंत्रण में लेना चाहिए । इसके अतिरिक्त पूँजीवादियों के हाथों में आर्थिक सत्ता न रहे, इसके लिए कर-संरचना में सुधार के साथ-साथ आर्थिक नियोजन पर बल देना चाहिए । इसके लिए उन्होने अपने कार्यकाल में आम बजट एवं पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ कराया । उन्होंने भारतवर्ष के औद्योगिक विकास के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को अपनाया ।

3.4.4 आर्थिक नियोजन एवं मिश्रित अर्थव्यस्था

नेहरू के अनुसार देश की जनता के जीवन-स्तर को उच्च करने और उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक नियोजन आवश्यक है । आर्थिक नियोजन आर्थिक स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है । नियोजन द्वारा देश को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाकर विश्व में आर्थिक शक्ति के रूप में स्थापित किया जा सकता है । इस संबंध में प्रशासनिक भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि नियोजन का आधार अनुभव होता है । आम जनता के लिए कौन-कौन सी योजनाएं उपयोगी होगी, यह पिछले तथ्यों के आधार पर निर्भर करती है । प्रशासन का मुख्य कार्य इन तथ्यों को एकत्रित करके अपनी राजनैतिक कार्यपालिका के समक्ष प्रस्ततु करना होता है जिससे कि उपयुक्त एवं उपयोगी योजनाओं का निर्माण हो सकें । ये योजनाएं न केवल आर्थिक समृद्वि बल्कि भावनात्मक जागृति का भी विकास करती है । इस जागृति से समाज में व्याप्त समस्याओं को उजागर कर उनके समाधान के अनुरूप योजनाओं का निर्माण किया जा सकता है । नेहरू जी ने समाजवाद की स्थापना के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रमों पर जोर दिया और उन्हें पंचवर्षीय योजनाओं में समाहित किया। ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास के लिए 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रमो का प्रारम्भ किया गया ।

नेहरू के अनुसार भारत जैसे विकासशील देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था ही आर्थिक कठिनाइयों के समाधान रूप में देखी जा सकती है । मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक एवं निजी उद्योग साथ-साथ कार्यरत होते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उनके कार्यक्षेत्र समान हो । प्रतिरक्षा, रेलवे, परमाणु ऊर्जा, आदि जैसे क्षेत्रों पर सरकार का स्वामित्व अवश्यम्भावी होना चाहिए । विशाल एवं आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीकरण आवश्यक है । साथ ही साथ कुछ चुने हु ए क्षेत्रों को पूँजीवादियों के लिए खोल देना चाहिए जिससे कि आर्थिक विकास की रफ्तार में कोई कमी न आ सकें ।

3.4.5 राष्ट्रवाद में प्रशासन की भूमिका

नेहरू का भारत की एकता में गहरा विश्वास था । वे एक सच्चे राष्ट्रप्रेमी, राष्ट्रभक्त और राष्ट्रवादी थे । भारत की सभ्यता एवं संस्कृति से उन्हें सदैव लगाव था । उनके अनुसार अतीत की उपलब्धियों, परम्पराओं और अनुभवों में राष्ट्रवाद समाहित है । एक सच्चे देशभक्त की भांति वे अतीत के गौरव, वर्तमान के सामर्थ्य और भविष्य एनी सम्भावनाओं के मध्य तालमेल के पक्षधर थे । जनता का कल्याण एवं जनता के प्रति समर्पण राष्ट्रवाद के आवश्यक पक्ष है । इसके लिए ही उन्होंने भारत को पूर्ण स्वराज का स्तर दिलाने में सर्वप्रथम निर्णायक पहल की । उनके विचारों में एक ऐसे राष्ट्र ऐसी तस्वीर थी जहाँ अन्याय, उत्पीडन एवं अभावों का निराकरण कर दिया गया हो और यह सब जिस संस्था या अभिकरण द्वारा प्राप्त करना संभव था, वह था प्रशासन । प्रशासन इन सभी कल्याणकारी उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होने के साथ-साथ विकासात्मक अभिकरण के रूप में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करता है ।

3.4.6 अन्तर्राष्ट्रवाद एवं विदेश नीति

नेहरू स्वंतत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री थे । उन्होंने देश की विदेश नीति को एक नई दिशा दी । उनके वैदेशिक संबंधो की व्याख्या में अन्तर्राष्ट्रवाद की भावना स्पष्टत: उभर कर

आती है । भारत अंतर्राष्ट्रीय रूप से तभी शक्तिशाली हो सकता है जब वह अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं जनकल्याण के प्रति समर्पित हो । इसके लिए साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद का विरोध आवश्यक है। मानवीय संघर्षों एवं तनावों की समाप्ति और मानव-कल्याण की भावना अच्छे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की आधारशिलाएं है । इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु उन्होने सभी देशों के लिए पांच-सूत्रीय आचार संहिता का विकास किया, जिसे पंचशील के नाम से जाना जाता है ।

पंचशील के पाँच सिद्धान्त निम्नलिखित है :

1. प्रत्येक देश द्वारा अन्य देशों की सम्प्रभुता एवं क्षेत्रीय अखण्डता का सम्मान करना ।
2. एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करना ।
3. एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना ।
4. आपस में समानता एवं परस्पर सद्भाव रखना ।
5. शांतिप्रिय सह-अस्तित्व एवं आर्थिक सहयोग बनाए रखना ।

पंचशील के उपर्युक्त पाँचों सिद्वान्तों से यह स्पष्ट है कि अगर इनकी स्वीकृति और कार्यान्विति अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों को समाप्त करने के साथ-साथ स्थाई शांति की स्थापना भी कर सकती है । परस्पर विरोधी राष्ट्र एक दूसरे को सहयोग कर सकते है और उनकी स्वंतत्रता एवं अखण्डता सुरक्षित हो सकती है ।

3.4.7 विश्व एकता

नेहरू विश्व एकता के सबल समर्थक थे । प्रारम्भ में उन्होने चीन, भारत वर्मा श्रीलंका, अफगानिस्तान को एक विश्व संध की संकल्पना के रूप में देखा । किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तित परिस्थितियों के कारण वे ऐसा विश्व संध चाहते थे जो लोकतंत्र एवं स्वतन्त्रता पर आधारित हो तथा सभी सदस्य राष्ट्रो को आन्तरिक सम्प्रभुता के साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में विश्व विधायिका के रूप में कार्य करने की स्थिति प्राप्त हो । नेहरू विश्व एकता को अहिंसा एवं अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव द्वारा प्राप्त करना चाहते थे ।

नेहरू ने अपनी पुस्तक विजिट दु अमेरिका में लिखा वर्तमान समय में युद्व के मूल कारणों को दूर करने की आवश्यकता थी । एक देश द्वारा दूसरे देश पर अधिपत्य स्थापित करने की प्रवृति युद्ध के अनेक कारणों मे से मूलभूत कारण थी । एशिया तथा अफ्रीका के देशों की पिछडी हुई स्थिति जब तक सुधारी नहीं जाती तब तक विश्व में शांति स्थापित नही हो सकती ।

नेहरू एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय मंच या संगठन के हितेशी थे जो भारत सहित विश्व अभाव ग्रसित देशों के आर्थिक सामाजिक विकास, स्वतंत्रता एवं सम्प्रभुता का संरक्षण करने का प्रबल समर्थक एवं साधन सिद्ध हो सके । यही कारण की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र. में नेहरू द्वारा प्रस्तावित असंलग्नता, गुट निरपेक्षता की नीति, पंचशील सिद्धान्त एवं सह-अस्तित्व के विचार ने विश्व शान्ति एवं विश्व एकता में भारत कें योगदान को स्पष्ट किया । जाकिर हु सैन ने पं नेहरू को विकासशील विश्व के निर्माताओं में एक माना है ।

3.4.8 मानवतावाद

नेहरू का दृढ़ विश्वास था कि जीवन का सर्वोतम लक्ष्य "मानवतावाद" है । मानवतावाद वह विचार धारा है जो मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर मानव कल्याण का साधन बने अर्थात "मनुष्य की सत्ता मै पूर्ण आस्था रखना डी राधाकृष्णन ने पं. नेहरू के मानवतावाद का मूल्यांकन करने हेतु लिखा है" मानवतावाद के रूप में नेहरू के चिन्तन की सुकुमारता, भावना की अद्‌वितीय कोमलता और मानव की उदार प्रवृत्तियों का अदभुत सम्मिश्रण था ।
दुर्बल और हताश व्यक्तियों के लिए उनके हृदय में अपार सहानुभूति उमड़ती थी ।

वस्तुत: जनकल्याण के लिए नेहरू सदैव प्रत्यत्नशील एवं संकल्पशील रहे । एक प्रशासक के रूप में उन्होने जनकल्याण को सदैव सर्वोच्च वरीयता पर रखकर कार्य किया नेहरू का मानना था कि "व्यक्ति केवल अपने लिए ही पैदा नही होता अपने पड़ोस व अपनी जनता के लिए भी होता है"

नेहरू एक सच्चे मानवतावादी थे । इसलिए उनकी हर विचारधारा का केन्द्रबिन्दु मानवतावादी ही रहा । चाहे राष्ट्रवाद हो या अन्तर्राष्ट्रीयतावाद । उन्होने व्यक्ति को साध्य एवं राज्य को साधन के रूप में माना । नेहरू ने सदैव देश में व्याप्त गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, शोषण, अन्याय को मिटाने एव जनकल्याण में अभिवृद्धि का प्रयास किया । के. टी. नरंसिहचार ने ठीक ही लिखा है कि "नेहरू का मानवतावादी चिन्तन उन्हे विश्व नागरिक की स्थिति में प्रस्तुत करता है । "

3.4.9 सत्ता का विकेन्द्रीकरण

नेहरू सत्ता के विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक थे । उनका मानना था कि शासविक लक्ष्यों की प्राप्ति जनकल्याण की भावना को साकार रूप देने हेतु एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है । वे मानते थे कि सत्ता के दुरूपयोग के रोकने के लिए सर्वश्रेश्ठ उपाय सत्ता का विकेन्द्रीकरण है । नेहरू ने 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को साकार रूप प्रदान किया । नेहरू की दृष्टि में व्यक्ति की स्वतंत्रता की राज्य से रक्षा करने का उचित तरीका सत्ता का विकेन्द्रीकरण है ।

यद्‌यपि नेहरू सत्ता के विकेन्द्रीकरण तथा गाँवों को स्वावलम्बी एवं विकसित बनाने की योजना के प्रबल समर्थक थ लेकिन वे आर्थिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में नही थे । उनका मानना था विकेन्द्रीकरण राजनीतिक सत्ता का हो ताकि व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा एव जनकल्याण की भावना को सत्ता के माध्यम से साकार रूप दिया जाए ।

3.4.10 नैतिक मूल्यों पर बल

नेहरू ने नैतिक मूल्यों पर बहु त बल दिया । साधन एवं साध्य के पारिस्परिक संबंधो पर जोर देते हु ए नैतिक शक्ति को अधिक महत्वपूर्ण माना । नेहरू ने अपनी कृति विजिट टू अमेरिका में लिखा है कि बुराई का सहारा लेकर किया गया कार्य एक कुचक्र है जिसमें फँस कर निकलना मुश्किल है ।

नेहरू ने 1958 में कांग्रेस के अपने सहयोगियों के नाम लिखा कि व्यक्ति के नैतिक मूल्यों का हास अच्छी बात नही है। नेहरू को एक प्रशासक एवं चिन्तक के रूप नैतिक मूल्यों को पाशविक शक्ति से अधिक प्रभावी एवं उपयोगी माना । नेहरू ने देश के प्रधानमंत्री के रूप में भी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्थिति में साधन साध्य संबंधों में नैतिक मूल्यों को वरीयता दी ।

3.4.11 भारत का आधुनिकीकरण

नेहरू भारत के आधुनिकीकरण के प्रति दृढ़ संकल्प थे । उनका लक्ष्य देश से गरीबी, अशिक्षा, पिछडापन आदि दूर करना था । वैज्ञानिक आधुनिकीकरण ही उनकी दृश्टि में इन समस्याओं का हल था । अत: उन्होनें योजना आयोग की स्थापना करके पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ किया । जिसके परिणामस्वरूप आज कृषि एवं उद्योगों का विकास हुआ है । उनके द्वारा स्थापित की गई अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं एवं संस्थानों ने भारत को विश्व के स्तर पर ला दिया है । संसार के सभी राष्ट्रों में आज भी भारत के इंजीनियरों, डॉक्टरों, वैज्ञानिकों एवं शिक्षको की माँग है । वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा नेहरू ने अज्ञानता दूर की और लोगो को आधुनिक बनाया । इसलिए नेहरूजी को आज भी "आधुनिक भारत निर्माता" (Architect Planing Committee) कहा जाता है ।

3.4.12 प्रशासनिक सुधार एवं प्रशासनिक संस्थाएं

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि नेहरू का नियोजन में अटूट विश्वास था । स्वतंत्रता से पूर्व ही उन्होंने राष्ट्रीय नियोजन समिति है (National planning Committee) का गठन किया जिसने भारत के विकास से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों एवं आयामों पर अपने उपयोगी प्रतिवेदन प्रस्तुत किए । 1950 में योजना आयोग की स्थापना के वे प्रमुख प्रतिपादक थे । नियोजन में उनकी आस्था के कारण ही वे योजना आयोग के अध्यक्ष रहे और समय-समय पर उसे नेतृत्व एवं निर्देशन प्रदान करते रहे । देश के सर्वागीण विकास में योजना आयोग द्वारा निर्मित पंचवर्षीय योजनाओं का महत्व आज भी विद्यमान है । 1952 में स्थापित राष्ट्रीय विकास परिषद भी उनके विचारों की देन थी । पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण का व्यापक दृष्टिकोण भी नेहरू जी की देन है।

1954 में पॉल एच. एपलबी की अनुशंषा पर नई दिल्ली में स्थापित भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना में भी नेहरू ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । वे 1954 से 1964 तक इसके अध्यक्ष भी रहे । उनके विचार थे कि लोक सेवक जनता के सेवक बनकर रहे । इसके लिए वे उसके बीच जाकर कार्य करें न कि सचिवालय तक ही भूमिका सीमित रखें । उन्होंने अधिकारी एवं गैर अधिकारी संबोधनों का विरोध किया क्योंकि ये प्रशासन एवं जनता में मध्य दूरी को बढाते है । उन्होनें प्रशासनिक कुशलता को बढाने के उद्देश्य से कार्य अध्ययन (Work Study) एवं ओ.एंड.एम. (O.& M.) को लागू करने के प्रयास किए । इसके अतिरिक्त संवैधानिक संस्थाओं जैसे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) आदि की लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना एवं सुरक्षा में भूमिका का पक्ष लिया ।

3.5 सारांश

नेहरू ने न केवल मानवतावादी दृष्टिकोण पर जोर दिया बल्कि शासन में नैतिक मुल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया । वे सदैव व्यक्ति के कल्याण के लिए स्वयं चितित रहते थे । साथ ही राज्य को व्यक्ति कल्याण का एक माध्यम मानते थे । नेहरू सत्ता का विकेन्द्रीकरण व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं राज्य से व्यक्ति की सुरक्षा का उचित माध्यम मानते थे । उनका मानना था कि आर्थिक विकेन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए ।

नेहरू को इस संसार से विदा हुए करीब पाँच दशक हो चुके है फिर भी भारतीय प्रशासन पर उनकी अमिट छाप आज भी दिखाई देती है। भारत के प्रधानमंत्री के रूप में लगातार 17 वर्षो तक अनवरत अपनी भूमिका का पूर्ण जिम्मेदारी से निर्वाह किया। इस अवधि में उनके द्वारा भारत के विकास हेतु उठाए गए राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रयासों की निरन्तरता आज भी बनी हुई है उन्होने भारत को न केवल प्रभावी राजनैतिक प्रशासनिक, नेतृत्व प्रदान किया बल्कि एक कुशल प्रशासक के रूप में भारतीय प्रशासन में सुधारों के साथ-साथ उसकी गत्यात्मकता को भी बनाए रखा।

3.6 शब्दावली

3.6.1 राज्य: समाज में सामान्य व्यवस्था बनाए रखने वाली राजनैतिक संस्था।

3.8.2 लोकतंत्र: जनता द्वारा चुनी हुई सरकार द्वारा शासन।

3.6.3 समाजवाद: समाज के प्रत्येक वर्ग को बराबर लाभ।

3.6.4 मिश्रित अर्थव्यवस्था: सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की बराबर विद्यमानता।

3.6.5 पंचशील: अंतर्राष्ट्रीय शांति के पाँच सिद्वांत।

3.6.6 गुट निरपेक्षता: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति गुटों से पृथक रहते हुए स्वतंत्र विदेश नीति धारण करना

3.6.7 लोकतांत्रिक समानता: राजनीति क्षेत्र में लोकतंत्र तथा आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद दोनो अवधारणो का सयुक्तीकरण

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. नेहरूवाद से क्या तात्पर्य है।
2. एक चिन्तक के रूप में पं. नेहरू का मूल्यांकन कीजिए।
3. पं. नेहरू के कार्यकाल में गठित प्रमुख प्रशासनिक संस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

3.8 ग्रन्थ

1. जवाहर लाल नेहरू, एन आटोबायोग्रेफी, जानलेन, लन्दन, 1936
2. जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी आफ इण्डिया, दी सिग्नेट प्रेस कोलम्बिया, 1945
3. जवाहर लाल नेहरू, इन्डिपेन्डेन्स एण्ड आफ्टर, पब्लिएकेशन्स डिवीजन, दिल्ली, 1949
4. रामगोपाल, टायल्स ऑफ जवाहर लाल नेहरू, बुक सेन्टर, बम्बई, 1962
5. डोरोथी नोर्मन नेहरू दी फर्स्ट सिक्सटी ईयर्स एशिया, बम्बई, 1965
6. आर. के. करंजिया, दी फिलासोफी ऑफ मि. नेहरू, जोर्ज एलन एण्ड अनविन लन्दन, 1960
7. बी. आर. नन्दा, दी नेहरू मोतीलाल एण्ड जवाहर लाल, जोर्ज एलन एण्ड अनविन लन्दन, 1962
8. ए. अवस्थी एवं आर. के. अवस्थी, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002
9. बी. आर. पुरोहित, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2004

10. जवाहर लाल नेहरू, ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, 1949
11. एस. आर. महेश्वरी, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, मैक्मिलन इंडिया लि., नई दिल्ली, 1998

इकाई - 04

सरदार वल्लभभाई पटेल

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 जीवन परिचय
4.3 सरदार पटेल का व्यक्तित्व
4.4 सरदार पटेल का प्रशासनिक योगदान
 4.4.1 नयी सेवाओं में शीघ्र नियुक्तियां
 4.4.2 खुली भर्ती
4.5 प्रशासनिक तत्त्व और सरदार पटेल
4.6 संगठन
4.7 एकता और एकीकरण
4.8 जनता और प्रशासन के बीच सम्बन्ध
4.9 प्रशासन में प्रतिबद्धता
4.10 प्रशासन में अनुशासन की महत्त्वता
4.11 सही कार्य के लिए सही व्यक्ति का चयन
4.12 आधुनिक भारत निर्माण में सरदार पटेल का योगदान
4.13 सरदार पटेल: एक राजनीतिज्ञ के रूप में
4.14 गह मंत्री के रूप में सरदार पटेल
4.15 निष्कर्ष
4.16 अभ्यास प्रश्न
4.17 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप जान पायेंगे -

– सरदार पटेल के प्रशासनिक योगदान के बारे में ।
– पटेल के प्रशासन के बारे में दृष्टिकोण ।
– पटेल का आधुनिक भारत के निर्माण में योगदान ।

4.1 प्रस्तावना

सबसे पहले तो मैं आपको सलाह दूंगा कि प्रशासन की निष्पक्षता और भ्रष्टाचार मुक्तता बनाए रखें । एक जनसेवक को राजनीति से दूर रहना बहु त जरूरी हे । उसे सांप्रदायिकता से भी अलग रहना चाहिए । अगर ऐसा न किया गया तो जन सेवा का आधार कमजोर होगा और उसकी प्रतिष्ठा घटेगी।

यह कथन सरदार पटेल ने 21 अप्रैल, 1947 को नई दिल्ली मे अखिल भारतीय प्रशासकीय सेवा प्रशिक्षण विद्यालय में भाषण मे दिया था । इसमें प्रशासनिक निष्पक्षता, पारदर्शिता, कर्त्तव्यनिष्ठता एवं लोक प्रशासकों की प्रतिबद्धता की झलक साफ नजर आती है ।

4.2 जीवन परिचय

वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को एक साधारण किसान परिवार में हुआ था । इनका जन्म गुजरात प्रांत में ननाडियाद में हुआ था । इनके पिता का नाम श्री झवेर भाई पटेल तथा माता का नाम श्रीमती लाड़बाई था । वल्लभभाई पटेल को सरदार पटेल, लौह पुरूष (Iron man of India), सिद्ध पुरूष (Patron Saint), बारदौली के सरदार, गुजरात केसरी, बाघ सिंह, सिंह शावक, भारत के सरदार, अखिल भारतीय सेवाओं के जनक आदि नामों से जाना जाता है । इनके पिता अत्यधिक साहसी, संयमी और वीर पुरूष थे और माँ श्रृद्धालू और अनात्मशंसी थी । ये 5 भाई तथा एक बहिन थे । माना जाता है कि इनका वंश भगवान राम के पुत्र लव से उत्पन्न लेवा' उपजाति से सम्बन्धित था । इस उप जाति के लोग कुर्मी क्षत्रिय के नाम से जाने जाते हैं तथा अपने नाम के आगे पटेल लगाते हैं । इनके पिता श्री इवेर भाई पटेल ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की ओर से अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई लड़ी थी।

सरदार पटेल का बाल्यकाल माता-पिता के साथ गुजरा । ये प्रारम्भ से ही वाक्चातुर्य, बुद्धिमान, शालीन एवं निर्भीक थे । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा नाद नाडिरूद में हुई और मैट्रिक शिक्षा के लिए वे बड़ौदा गये लेकिन कुछ समय पश्चात् ही स्कूल छोड़ना पड़ा और पुन: नाडियाद आ गये । पटेल ने 22 वर्ष की आयु में 1897 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की । परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण इन्हें अध्ययन बीच में ही छोड़ना पड़ा परन्तु उन्होंने 'डिस्ट्रिक्ट लीडर' का डिप्लोमा जो तीन वर्षीय था 1900 में घर पर रह कर ही पूरा किया । 1910 में वल्लभाभाई वकालत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये इंग्लैण्ड गये और सफलतापूर्वक अध्ययन कर फरवरी, 1913 में भारत लौटे । दो वर्ष के समयकाल में ही वल्लभभाई ने वकालत की दुनियां में ऊँचा नाम कमा लिया था और एक ख्याति प्राप्त वकील बन चुके थे । वल्लभाभाई पटेल ने कानूनी वकालत गुजरात के गोधरा, बोरसाद और आनन्द में ऐसे समय में की जब उनके परिवार पर वित्तीय दबाव था । वे 1917 में दरियापुर के म्युनिसिपल बोर्ड के उप-चुनाव में निर्विरोध चुने गये और यहीं से देश. सेवा का जूनून चढता गया जो अन्त तक रहा । पटेल को गुजरात प्रांतीय कांग्रेस समित के अध्यक्ष बने और 1942 तक रहे । पटेल 31 मार्च, 1931 को करांची में अखिल भारतीय कांग्रेस के 46 वें अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये । 2 सितम्बर, 1946 को जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार का गठन हुआ, जिसमें सरदार पटेल को गृह तथा सूचना और प्रसारण मंखी बनाया गया । दिसम्बर, 1948 को भारत के उप प्रधानमंत्री और गृह मंत्री बनाये गये तथा मृत्यु पर्यन्त इन पदों पर रहे । 15 दिसम्बर, 1950 को दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया ।

4.3 सरदार पटेल का व्यक्तित्व

सरदार पटेल कुशाग्र बुद्धि, अदम्य साहसी, धैर्यवान, अनुशासनशील शालीन, स्वतन्त्र विचार वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति थे या यों कहें कि वे बहु मुखी प्रतीभा के धनी थे तो इसके कोई शक की गुजाईस नहीं होगी । उनके जीवन के कुछ प्रमुख गुणों को यहां विवेचित किया जा रहा है :-

1. निर्भीकता:

पटेल अदम्य साहसी होने के साथ-साथ निर्भीक थें वे कुछ गलत होते हु ए चुप नहीं रह सकते थे और परिणाम की चिन्ता किए बिना उसका विरोध करते थे । सरदार के ही शब्दों में -'हमें यह बात दृष्टि से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि हर आदमी सिर्फ एक बार मरता है । हर जीव नाशवान है और मरने पर अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा सकता । '

2. त्यागी:

सरदार पटेल ने अपने बड़े भाई को अध्ययन के लिए विदेश भेज कर त्याग भावना का परिचय दिया और यही पहीं अपितु स्वयं 1913 में जब इंग्लैण्ड से वकालत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर लौटे और बम्बई में आकर तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर बेसिल स्कॉट से मिल तो उन्हें ली कॉलेज में प्रोफेसर के पद का आमंत्रण दिया परन्तु उन्होंने देश सेवा के लिए इसे ठुकरा दिया । पटेल के ये शब्द त्याग की ओर अग्रसर करते हैं - 'सत्ता और पद के लिए छीना-झपटी निःसन्देह बुरी प्रवृत्तियां है लेकिन इनका सामना करने के लिए अंतर-बाहर से दृढ़ इच्छाशक्ति होनी चाहिए और इसके लिए मंत्रियों को ऊपरी स्तर पर आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। (5 जनवरी, 1949)

3. धैय के धनी -

पटेल बहु त ही प्रखन बुद्धि एवं धैर्य की मूर्ति थे । जब वे एक मुवक्किल के मुकदमें की पैरवी कर रहे थे तो उन्हें पत्नी के निधन का समाचार एक तार द्वारा मिला । उन्होंने तार को हल्का सा पढ़ा और जेब में रख लिया और पूरी लगन के साथ मुकदमें की बहस में शामिल हु ए । मुकदमें की बहस कर मुकदमा जीतने के बाद तर के बारे में साथियों ने पूछा तो बताया कि उसमें पत्नी के निधन का समाचार था । इस पर सभी ने दांतों तले उंगली दबा ली और कहा "यह आदमी है या फौलाद इसके सीने में दिल है या पत्थर । " धैर्य पर पटेल के शब्द - 'आज अगर लोक अपने धैर्य पर कायम नहीं हरेंगे तो सरकार उन्हें कुचल देगी । लेकिन अगर लोग सुदृढ़ बन जाएं तो सरकार को झूकना पड़ेगा। ' (28 जून, 1928)

4. दृढ़ निश्चयी:

वे जब किसी कार्य की योजना मन में बना लेते थे तो उन्हें अमलीजामा हपनाकर ही दम लेते थे । उनके कार्य के प्रति लगन व निष्ठा देखते ही बनती थी । उन्हीं के शब्दों में - 'यह कौम मरी नहीं है, यह एक जिंदा कौम है । लगातार थोपी गई गुलामी की चट्टान ने इसे इतनी बुरी तरह दबा दिया है कि इसके चीखने की आवाज तक किसी को सुनाई नहीं पड़ रही । मैं इस चट्टान को अपने बलिष्ठ हाथो से एक ओर धकेल दूँगा और अपनी कौम को उठाऊँगा । जब यह छाती पर से हटने के बाद सिंह की तरह दहाड़ेगी तो अंग्रेज सियार की तरह पुंछ दबाकर हिन्दुस्तान से भागते नजर आएंगे।'

5. निर्णय शक्ति:

पटेल कार्य को ही पूजा समझते थे और सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर विश्वास करते थे । प्रखरबुद्धि, तेज दिमाग एंव दूरदर्शी होने के कारण उनमें निर्णय शक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी । पर्याप्त ज्ञान एवं प्रशासनिक समझ होने से वे निर्णय शीध्र एवं भविष्योन्मुखी लेते थे । निर्णय के बारे पटेल के विचार - 'हमारा हमेशा यही प्रयास रहेगा कि हम हर एक का दृष्टिकोण समझें और ऐसे निर्णय लें जो सभी को स्वीकार्य हों, और ऐसे देश का कल्याण हो ।' (5 जुलाई, 1947)

6. धर्म-निरपेक्षता:

वे सभी धर्मो का आदर करते थे । वे राष्ट्रहित को सर्वोपरी मानने वाले व्यक्ति थे । धर्म निरपेक्षता पर सरदार का दृष्टिकोण - 'देश में (सरदार) धर्म, जाति, नस्ल और लिंग के आधार पर किसी नागरिक के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। (29 अप्रैल, 1947)

7. नि:स्वार्थता:

सरदार पटेल बिना किसी फल की इच्छा किए सेवा में विश्वास करते थे । उनमें ऐसा भावना, श्रृद्धाशीलता, सम्मान, सत्यवादिता, नैतिकता, आशावादिता की भावना का संचार था । निःस्वार्थता की झलक उन्हीं के शब्दों में जैसे अच्छी फसल पाने के लिए कुछ बीज गंवाने भी पड़ते हैं, इसी तरह राष्ट्रहित में कुछ सर्वोत्तम लोगों का बलिदान करना पड़ता है। '

8. राष्ट्रवादी:

सरदार पटेल वास्तविक राष्ट्रवादी थे । वे देश भक्ति के लिए सब कुछ त्यागने को तत्पर रहते थे । वे नाम या ईनाम की परवाह किए, राष्ट्रहित में गहन लगन एवं निष्ठा से कार्य करते थे । 'अगर देश का काम पूरा हो जाता है तो व्यक्ति के नाम की परवाह क्यों?' उक्त कथन में सरदार पटेल की राष्ट्रवादी भावना प्रकट होती है ।

9. प्रशासनिक क्षमता:

सरदार पटेल में प्रशासनिक समझ एवं ज्ञान होने के कारण वे संगठन, एकता, औपचारिक-अनौपचारिक सम्बन्ध, नेतृत्व, निर्णयशक्ति इत्यादि से भली-भाँति परिचत थे और समय-समय पर उन्होंने अपनी प्रशासनिक क्षमता का परिचय भी दिया। प्रशासन को सही दिशा देने हेतु उनके विचार - कबसे पहले तो मैं आपको सलाह दूंगा कि प्रशासन की निष्पक्षता और भ्रष्टाचार मुक्त बनाए रखें । एक जनसेवक को राजनीति से दूर रहना बहुत जरूरी है । उसे सांप्रदायिकता से भी अलग रहना चाहिए । अगर ऐसा न किया गया तो जब सेवा का आधार कमजोर होगा और उसकी प्रतिष्ठा घटेगी । (21अप्रैल,1947)

10. नेतृत्त्व:

वे एक अच्छे नेता थे । उनमें नेतृत्त्व क्षमता पग-पग पर देखी जा सकती थी । नेतृत्त्व क्षमता एवं प्रशासनिक क्षमता के बल पर ही पटेल ने बड़े-बड़े आन्दोलन, निर्णय किये और भारत को अंग्रेजों की गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने में तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की लगभग 600 रियासतों का एकीकरण करने का कठिन कार्य किया । किसानों को सम्बोधित करते हुए उनके शब्द - तुम लोग अपनी मर्जी के मालिक हो । यदि तुम एकजुट होकर खड़े जो जाओ तो कोई भी जालिम ताकत तुम्हारे इरादों को कुचलने का साहस नहीं कर सकती । तुम महाशक्ति हो, तुम अजेय हो । अपना आत्मविश्वास जगाओं, अपनी शक्ति को पहचानों यह सत्मनत झुककर रहेगी ।'

सरदार पटेल ने अपनी गहन विचार शक्ति और सेवा की भावना से स्थानीय स्वशासन-प्रशासन को आगे बढ़ाया । उनके अन्दर राष्ट्र भक्ति, साहस और संगठनात्मक योग्यता कूट-कूट कर भरी हुई थी । जिसने देश की उन्नति में महान योगदान किया । उनके जीवन में तीन प्रकार के गुण राजद्रोही (Rebel), राजनीतिक (Statesman) और एक प्रशासक (Administrator) मिलते थे । डी. एस. राधाकृष्णन ने कहा था कि सरदार पटेल एक महान साहसी, राजद्रोही, एक बुद्धिमान राजनीतिज्ञ और एक अनुकरणीय प्रशासक थे । वी. वी. गिरी के अनुसार उसकी राजनीतिक चतुराई, दृढ़ राष्ट्रभक्ति और उत्कृष्ट संसार का एक महान राजनीतिक बना दिया । 'सही समय पर सही निर्णय लेना और उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु सही व्यक्ति को सहायक बनाने की प्रवीणता ने उनकी मार्ग की बाधाओं को आसान बना दिया । वी. वी. गिरी ने टिप्पणी करते हुए कहा था कि सरदार पटेल में बिमार्क जैसी संगठनात्मक योग्यता, कौटिल्य जैसी दक्ष राजनीतिज्ञता और अब्राहम लिंकन जैसी धर्मनिष्ठा राष्ट्रीय एकता के लिए विद्यमान थी । 'सरदार पटेल में महान गुण था कि वे सभी मुद्दों पर आम आदमी के नजरिये से देखते थे ।

टी. एन. चतुर्वेदी ने अपने पेपर सरदार पटेल एडमिनिस्ट्रेटिव विजन 'सम रिफलेक्शन्स में कहा है कि सरदार पटेल का प्रशासनिक दृष्टिकोण परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कार्य करने पर आधारित था और वे भविष्य के समाज और देश निर्माण को सुदृढ़ बनाना चाहते थे । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद में केवल प्रशासनिक आवश्यकताओं और धरोहर के ही संरक्षक नहीं थे अपितु प्रशासनिक प्रभावशीलता के भी संरक्षक थे ।

प्रो. आदी एच. डॉक्टर ने सरदार पटेल के स्वाधीनता संग्राम में भूमिका को निम्न पाँच बिन्दुओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है -

(i) सत्याग्रह संगठनात्मक निर्माण (Organising Satyagrahas)
(ii) कांग्रेस संगठन का निर्माण (Building the Congress Organisation)
(iii) नगरपालिका का स्वराज के लिए प्रयोग (Using Municipalities for attaining Swaraj)
(iv) प्रांतीय सभाओं का स्वराज के लिए प्रयोग (Using Provincial Assemblies for attaining Swaraj)
(v) अन्तरिम सरकार और विभाजन में भूमिका (Role in Interim Government and Partition) ।

4.4 सरदार पटेल का प्रशासनिक योगदान

एक इतिहासकार ने उनके आन्तरिक प्रशासन के दायरे का उल्लेख करते हुए लिखा - 'भारत के आन्तरिक मामलों में सरदार पटेल वास्तव में सर्वोपरि थे । आन्तरिक सत्ता के सारे सूत्रों पर पटेल का नियन्त्रण था क्योंकि वे न केवल गह विभाग की जिम्मेदारी संभालते थे, बल्कि सूचना तथा प्रसारण विभाग भी उनके पास था । इसके साथ, कांग्रेस संस्था में भी पटेल का प्रमुख स्थान था । ये दो महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व संभालने के कारण पटेल विभाजन के बाद की अनिश्चितता, अव्यवस्थता और अराजकता

की गड़बड़ी से देश को बाहर निकालकर भारत के व्यवस्थित, संगठित और सुस्थिर राज्य के सच्चे निर्माता कहे जाते हैं ।'

उक्त कथन में पटेल की प्रशासनिक एवं नेतृत्व क्षमता की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है । देश के विभाजन से प्रशासन की अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई क्योंकि साम्राज्यवाद के स्थान पर लोकतांत्रिक शासन की स्थापना हुई । अब देश में प्रशासन के माध्यम से ही कानून-व्यवस्था को बनाना और लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार बनाना राष्ट्रीय सरकार का मुख्य ध्येय था । इस हेतु पटेल ने कुछ कदम उठाये जो निम्नानुसार हैं -

4.4.1 नयी सेवाओं में शीघ्र नियुक्तियां

सरदार पटेल ने सेवा के दो स्तरों के प्रावधान का सुझाव दिया जिनमें पहला-पूर्व में इण्डियन सिविल सर्विस (ICS) के स्थान पर इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस (IAS) और दूसरा इण्डियन पुलिस के स्थान पर इण्डियन पुलिस सर्विस (IPS) था । इन सेवाओं की भर्ती, सेवा की शर्तें तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही का नियमन लोक सेवा आयोग और केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाता था । सरदार पटेल के प्रयासों से ही ये सेवाएँ आज तक हमारे देश में बनी हुई हैं । इसीलिए उन्हें अखिल भारतीय सेवाओं का जनक (Father of All India Services) कहा जाता है ।

4.4.2 खुली भर्ती

सरदार पटेल ने रिक्त पदों पर अनुभवी एवं उम्र दराज व्यक्तियों की खुली भर्ती की प्रक्रिया को अपनाया । इसमें आयु सीमा का किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं था । यह समय की आवश्यकता, अनुभव की महत्वता एवं नवीन परिस्थितियों की माँग थी ।

सरदार पटेल ने नई अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से राज्यों में पुलिस बलों और केन्द्रीय प्रक्रिया को अपनाया । इसमें आयु सीमा का किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं था । यह समय की आवश्यकता, अनुभव की महत्त्वता एवं नवीन परिस्थितियों की माँग थी ।

सरदार पटेल ने नई अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से राज्यों में पुलिस बलों और केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं के पुनर्गठन को एक दिशा दी तथा प्रशासन ने काफी अच्छे तरीके से कठिन परिस्थितियों में कार्य किया । सामुदायिक शान्ति को बनाये रखा, पुर्नवास की समस्या एवं सामान्य चुनाव को शान्तिपूर्ण तरीके से पूर्ण किया । ये सरदार पटेल ही थे जिन्हें सिविल सेवाओं के लिए सिद्धपुरूष (Patron Saint) माना जाता था ।

प्रशासन का मुख्य तत्व यर्थार्थ में सरकार का सम्पूर्ण कार्य निर्भर करता है शक्ति की समस्या पर, इसके उचित, अभ्यस्त, समय पर उपयोग और गलत उपयोग पर किया जा सकता है । वास्तव में शक्ति (Power) प्रबन्ध करने वाले की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती और न ही मनचाहा उपयोग किया जा सकता है बल्कि इसे नियम और कानून के साथ प्रयोग में लिया जाना चाहिए । प्रशासन और सरकार के मामलों में शक्ति का उपयोग संविधान और कानूनों के तहत किया जाना जरूरी है । सरदार पटेल ने राज्य की शक्ति का प्रभावी उपयोग किया और गलत दिशा में नहीं जाने दिया । सरदार पटेल सरकार एवं कांग्रेस संगठन में रहे परन्तु कभी भी शक्ति के प्रयोग पर लड़खडाये नहीं और अपने निर्णयों पर दृढ़ रहे'

प्रो. एल. पी. सिंह ने अपनी पुस्तक 'सरदार पटेल एण्ड दा इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन' 1987 म सरदार पटेल को स्वतंत्र भारत का महान राजनीतिज्ञ-प्रशासक बताया है और उन्हें अशोक महान एवं अकबर के समकालीन माना है । सरदार पटेल ने देश को एकता की डोर में बाँधने का कार्य किया और उन्होंने देश की लोकतंत्रिक संवैधानिक संरचना निर्माण में मुख्य भूमिका का निर्वहन किया । यह भारत का सौभाग्य था कि आधुनिक इतिहास की सबसे कठिन घड़ी में सरदार में कुशल राजनीतिज्ञ की क्षमता, चतुराई एवं व्यावहारिक प्रशासनिक क्षमता का समावेश था जिसके बिना भारतीय प्रशासन अपूर्ण था एवं राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार संतुलन बना पाना संभव नहीं बन पाता ।

सरदार पटेल सदैव भविष्य को ध्यान में रखते हुए सोचते थे और पहला कदम उन्होंने दो अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिए उठाये जिनमें भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) तथा भारतीय पुलिस सेवा (IPS) को पूर्व इण्डियन सिविल सर्विस (ICS) तथा इण्डियन पुलिस (IP) के स्थान पर लाया गया । मुस्लिम लीग का मानना था कि यदि भारतीय एकता को बनाये रखना है तो इसके लिए केन्द्रीय शासन को कमजोर रखना आवश्यक होगा और यदि विभाजन होता है तो इस प्रकार की सेवाएं उत्पन्न ही नहीं हो पायेंगी । सरदार पटेल ने सभी मामलों एवं हालातों का गहन अध्ययन एवं मनन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि विभाजन को सुदृढ़ करने और प्रभावशीलता एवं समानता स्थापित करने के लिए नई सेवाओं के माध्यम से विद्यमान रिक्त स्थान की पूर्ति करना नितान्त आवश्यक होगा।

सरदार पटेल में भारतीय इतिहास की गहरी समझ थी । वे निश्चयी थे कि अखिल भारतीय सेवाऐं सामान्य कानून और व्यवस्था, प्रशासन केन्द्र में दृढ़ संवैधानिक सत्ता को जोड़ने के हिसाब से बहुमूल्य हैं जो संविधान के संघवाद के लिए आवश्यक है और संविधान के मुख्य निर्माता सरदार पटेल ही थे । ऐतिहासिक सांस्कृतिक घटकों और दुलर्भकारी प्रभावों से भली प्रकार सचेत थे ।

उनका कांग्रेस संगठन से जूड़ने और प्रांतीय मंत्री के रूप में अनुभव ने पकड़ मजबूत बना दी। इसके उपरान्त सरदार पटेल ये मानते थे कि स्वतंत्र भारत के लिए प्रशासनिक मशीनरी का सुदृढ़ निर्माण, भारी दबाव को सहने की क्षमता और प्रशासन ने अनुशासन को बनाये रखना तथा समाज में शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखना परम आवश्यक था । सरदार पटेल ने स्वतंत्र भारत में चुनौतियों एवं समस्याओं से पार पाने के लिए जिन दो सेवाओं IAS एवं RIPS का निर्माण किया उनमें भारतीय लोगों की सेवा, बिना लड़खड़ाए राष्ट्र भक्ति के भारतीय शासन की कानून व्यवस्था एवं नीतियों को क्रियान्वित करने की समर्पण भावना एवं धर्मनिष्ठा विद्यमान थी । वे देश के भूतकाल और भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक परिस्थितियों से भली प्रकार परिचित थे । ये ही वो आधारभूत विचार थे जिन पर IAS प्रशिक्षण संस्थान का खाका खींचा गया और बाद में लोक प्रशासन अकादमी के रूप में विकसित किया गया ।

प्रो. एल. पी. सिंह ने अपनी पुस्तक में सरदार पटेल को उनके संविधान के विधि निर्माण में एवं मौलिक अधिकारों में किये गये योगदान के लिए सदैव याद करने की आवश्यकता पर बल दिया। स्वतंत्रता के चार वर्ष पश्चात् आलोचनात्मक रूप से कहा गया कि IAS और IPS का पुराना ढाँचा ही चल रहा है और प्रशासनिक ढाँचे को जाँचा परखा नहीं गया है यथा उदाहरण एक ऑटोमोबाइल को जाँचने के लिए कार्यशाला नहीं भेजा जा सकता । शान्ति और व्यवस्था की समस्याएँ आजादी से गायब नहीं हुई, लोक व्यवस्था को बनाये रखने और विधि का कानून को बिना किसी भय या झुके हुए विकास एवं कल्याण कार्यक्रमों को प्रशासनिक प्रक्रिया से क्रियान्वित किया जाना चाहिए ।

4.5 प्रशासनिक तत्व और सरदार पटेल

सर्व प्रथम यह जानना आवश्यक है कि. प्रशासन क्या है? सामान्यत: 'प्रशासन' शब्द को निम्न चार अर्थो से जाना जाता है -

(अ) मंत्रिमण्डल अथवा अन्य सर्वोच्च कार्यकारिणी के समानार्थक के रूप में जैसे नेहरू प्रशासन, इन्दिरा-प्रशासन, - वाजपेयी-प्रशासन, मनमोहन-प्रशासन आदि ।

(ब) लोक नीति या नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए की जा रही क्रियाऐं जैसे - भारतीय प्रशासन, रेले प्रशासन, विश्वविद्यालय प्रशासन आदि ।

(स) प्रबन्ध की कला के रूप में जैसे - डॉ. किरण बेदी ने पुलिस प्रशासन में अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया ।

(द) ज्ञान की एक शाखा जैसे - सामाजिक विज्ञानों में से लोक प्रशासन एक विषय है । सर्व प्रथम विलोबी (Willoughby) ने अपनी पुस्तक लोक प्रशासन के सिद्धान्त (Principles of Public Administration) में प्रशासन के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित बताये

(i) सामान्य प्रशासन - कार्यो का वितरण, निर्देशन, अधीक्षण एवं नियंत्रण ।

(ii) संगठन - प्रशासनिक संरचना का निर्माण करना ।

(iii) कार्मिक प्रबन्ध (Personnel Management)

(iv) भौतिक संसाधन

(v) वित्त ।

लूथर ने 'पोस्डकोर्ब' POST CORB के माध्यम से प्रशासन के तत्व बताये जो निम्नानुसार हैं-

P - Planning (नियोजन)

O - Organising (संगठन)

D - Staffing (कार्मिक)

S - Directing (निर्देशन)

Co - Co-ordination (समन्वय)

R - Reporting (प्रतिवेदन)

B - Budgeting (वित्तीय प्रशासन)

4.6 संगठन

सरदार पटेल में एक महान संगठनात्मक योग्यता थी । सरदार पटेल 1920 में गुजरात प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष बने और मार्च, 1931 में वे कांग्रेस के अखिल भारतीय अध्यक्ष बने । वे अपनी मृतयुर्पन्त संगठन पर पूरी तरह छाये रहे चाहे किसी प्रकार का पद उनके पास रहा हो अथवा नहीं । उन्होंने अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस संगठन की जड़ों की सींच कर इतना मजबूत आधार प्रदान किया जिसे हिलाना आसान नहीं था और इसी संगठनात्मक योग्यता से देश को एक डोर में बाँध कर गुलामी की जंजीरों को तोड़कर आजादी हासिल की थी ।

सरदार पटेल में कार्यकर्त्ताओं को ध्यानपूर्वक सुनने एवं उनका मनोबल बढ़ाने की विशेषता थी जिससे संगठन सुदृढ़ होता था । पटेल के कार्य करने की पद्धति लोकतांत्रिक थी । जब देश की आजादी के लिए आन्दोलन किये जा रहे थे तो पटेल का मानना था कि स्थानीय समस्याओं के निदान के लिए छोटे-छोटे सत्याग्रहों की आवश्यकता है । इनमें सफलता मिलने पर क्षेत्र की जनता में आत्मविश्वास एवं मनोबल बढ़ेगा और संगठन शक्ति का भी पता चल जाएगा । इस प्रकार उन्होंने आधार स्तर से ही संगठन को सुदृढ़ बनाया था ।

4.7 एकता और एकीकरण

किसी भी समस्या का हल है - एकता (Unity) । सरदार पटेल ने जब अंग्रेज देश के साम्प्रदायिकता के आधार पर देश को कमजोर कर रहे थे तब अंग्रेजों की चाल का भांडाफोड़ करते हुए कहा कि - 'हमारी इस कमजोरी का लाभ उठाकर ही अंग्रेजों ने भारत पर कब्जा किया है और इसी कमजोरी को जीवित रखकर वे हमारी गर्दनों पर अपने शैतानी पंजे जमाए रखना चाहते हैं । हमें शर्म से डूब मरना चाहिए, हममें इतना भी विवेक नहीं है कि शत्रु हमारी गर्दनें पकड़कर हमें लड़ाता रहे और हम लड़ते रहें, हम पलटकर शत्रु की गर्दन क्यों नहीं पकड़ लेते ।

14 मई, 1928 को बारदोली सत्याग्रह के दौरान किसानों को सम्बोधित करते हुए देश की एकता के लिए सरदार पटेल ने कहा था कि - 'थोड़े से लोगों की लापरवाही से बेड़ा गर्क हो सकता है लेकिन जहाज को सही सलामत बंदरगाह तक लाने के लिए उस पर सवार सभी लोगों के पूरे सहयोग की जरूरत होती है । सरदार पटेल के उक्त दोनों कथनों में संगठन की शक्ति अर्थात् एकता पर बल दिया गया है और आजादी की मंजिल तक पहुँचाने के लिए सभी लोगों के सहयोग पर जोर दिया है।

देश की आजादी के समय भारत में 565 रियासतें थी । सरदार पटेल की अद्भुत क्षमता एवं दक्षता, सूझबूझ, कूटनीति और आत्मीय शैली ने 6 सप्ताह के अन्दर 565 में से 561 रियासतों को विलय के लिए तैयार कर दिया । देश के एकीकरण में सरदार पटेल द्वारा किया गया कार्य उनके बहुमुखी प्रतिभा होने का दर्शन कराता है ।

4.8 जनता और प्रशासन के बीच सम्बन्ध

सरदार वल्लभभाई पटेल सदैव जनता और प्रशासकों के मध्य मधुर एवं मजबूत सम्बन्ध चाहते थे । पटेल न कार्मिकों को सलाह दी कि वे मानवीय सम्बन्धों को विशेष महत्व दें और देश निर्माण में अपना सर्वोत्तम योगदान करें । पटेल के अनुसार वही शासक अच्छा होता है जिसे जनता उसके लिए मान्यता प्रदान करती है । इससे स्पष्ट होता है कि पटेल जनता की भलाई में देश की भलाई मानते थे ।

4.9 प्रशासन में प्रतिबद्धता

प्रशासन सरदार पटेल प्रतिबद्ध नौकरशाही के समर्थक थे । उनके अनुसार प्रशासकों को किसी दलीय भावना से कार्य नहीं करना चाहिए । प्रशासकों को सरकार के कार्यो को उत्तरदायित्व के साथ क्रियान्वित कर लोक कल्याणकारी अवधारणा में सहयोग देना चाहिए । साथ ही प्रशासनिक कार्यो में राजनीतिज्ञों को भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । प्रशासकों को सरकारी नीतियों एवं निर्णयों को ईमानदारी से लागू करना चाहिए ।

4.10 प्रशासन अनुशासन महत्त्वता

सरदार वल्लभभाई पटेल ने प्रशासन में अनुशासन को विशेष महत्त्वता प्रदान की । पटेल स्वयं अनुशासनात्मक प्रवृत्ति के थे और वे चाहते थे कि वे स्वयं अनुशासन में रहने के साथ-साथ दूसरों से भी अनुशासन की आशा करनी चाहिए । पटेल साहब ने अनुशासनहीनता को कभी माफ नहीं किया चाहे उसके लिए उन्हें कठोर से कठोर निर्णय ही क्यों न लेने पड़े ।

पटेल केवल प्रशासनिक या रक्षा कर्मचारियों में अनुशासन तक ही सीमित नहीं रहे अपितु शासक, शासन एवं लोकतान्त्रिक नेतृत्व को भी इसमें सम्मिलित किया । वे किसी भी प्रकार के दबाव या प्रशासन में अनुचित हस्तक्षेप विरोधी थे । देश की एकता, अखण्डता एवं सुदृढ़ता के लिए वे अनुशासन को अपरिहार्य मानते थे ।

4.11 सही कार्य के लिए सही व्यक्ति का चयन

सरदार पटेल प्रशासनिक कार्यो के सफल क्रियान्वयन एवं लोक कल्याण कार्यो को दिशा देने के लिए सही व्यक्ति के चयन को अहम मानते थे । वांछित कार्य के प्रति चयनित व्यक्ति की रूचि, निष्ठा एवं त्याग की भावना होनी चाहिए तभी वास्तविक सफलता को हासिल किया जा सकता है । सरदार पटेल ने श्री वी. पी. मेनन को अपना सचिव चुना और पटेल के विश्वास के कारण मेनन विभिन्न मामलों, नीति, निर्णयों में महत्त्वपूर्ण सलाह भी देते रहे । पटेल एवं मेनन दोनों में विश्वास की भावना ने देश हित में कार्य किया ।

श्री एस. के. पाटिल ने सरदार के बारे में कहा है कि सरदार की प्रशासक के रूप में कुशलता के पीछे सबसे महत्त्वपूर्ण कारण उनके द्वारा सही सेवा के लिए सही व्यक्ति चुनना था तथा चुनाव के बाद उसे अपने विश्वास में लेना था । वह अपने सहायकों को पिता के स्तर से प्यार करते थे और प्रत्येक दशा में उन्हें खड़ा करते थे और उनके सहायक विश्वास और गहरी भक्ति के साथ सेवा को उनकी ओर मोड़ते थे ।

सरदार पटेल देश की अखण्डता को सर्वोपरि मानते थे और इस हेतु कुशल प्रशासन को आवश्यक समझते थे । देश में स्थायित्व एवं शान्ति स्थापित करने के लिए पटेल ने पूरे देश में एक समान अखिल भारतीय सेवाओं को नये स्वरूप में प्रारम्भ किया जिससे विविधता में एकता बनी रहे और देश का प्रशासन सकुशल चलता रहे।

प्रत्यायोजन : सरदार पटेल के केन्द्रीयकरण से दूर तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे । उनका मानना था कि शासन एवं प्रशासन को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि सत्ता का उचित एवं संतुलित विभाजन अपने अधीनस्थों के मध्य किया जाना चाहिए आपसी विश्वास एवं सम्बन्ध की घनिष्ठता पर पटेल ने जोर दिया । वे प्रशासकों को अहम की भावना त्यागने एवं सेवा भावना की सलाह देते रहे । उन्होंने प्रशासनिक सेवाओं में कार्यरत कार्मिक तंत्र को सलाह दी कि वे खुले मस्तिष्क से निडर होकर कार्य करें और राजनीतिक नेतृत्व के भय से निर्भय हो कर कार्य करें।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सरदार पटेल के दृष्टिगोचर पर नजर डालने के लिए श्री शान्ताकुमार द्वारा कहे गये शब्दों पर दृष्टि डालनी होगी -

'प्रशासन के सम्बन्ध में भी उनका व्यावहारिक, कठोर और अनुशासनमय दृष्टिकोण था । आज प्रशासन लचीला हो गया । प्रशासन शासनाविहीन होता जा रहा है । कारण है - ऊपर की पकड़ ढीली

होती जा रही है । ऊपर अनुकरणीय आदर्श व्यवहार रहा ही नहीं । आवश्यकता इस बात की है कि सारा प्रशासनतंत्र चुस्त करने के लिये ऊपर से प्रारम्भ किया जाए। अनुशासन दक्षता को कठोरता से लागू किया जाए । ऊपर के लोगों का जीवन अनुकरणीय भी हो और वे नीचे वालों की गलत कार्यवाही पर उचित कार्यवाही भी कर सकें । पर ईमानदारी लाने के लिये ऊपर ईमानदार होना चाहिए । अनुशासन स्थापित करने के लिये अनुशासित नेता चाहिए । पटेल जी के जीवन का सबसे बड़ा सन्देश यही है कि जो भी करना चाहते हो, वह पहले स्वयं बनकर दिखाने का संकल्प करो।'

4.12 आधुनिक भारत निर्माण में सरदार पटेल का योगदान

सरदार पटेल ने स्वतंत्रता संग्राम से लेकर शासन सत्ता संभालने तक भली प्रकार अपनी श्रेष्ठतम योग्यता का परिचय दिया । उनका प्रयास था कि राष्ट्र का सच्चे अर्थो में पुनर्निमाण हो । पटेल का मानना था कि स्वतन्त्रता तो मिल गई परन्तु असली स्वतन्त्रता तब मिलेगी जब विरासत में मिली अनेक गम्भीर समस्याओं से पार पा लिया जायेगा । आजादी के बाद देश के समक्ष राज्यों की रियासतों की समस्या, कश्मीर, हैदराबाद की समस्या, पुनर्वास की समस्या, साम्प्रदायिक दंगों की समस्या आदि खड़ी थी । सरदार पटेल ने देश को सुदृढ़ आधार प्रदान करने, प्रशासनिक, कानूनी एवं आर्थिक व्यवस्था को नया स्वरूप देने और देश के संविधान का गणतन्त्रीय आधार प्रदान करने के लिए अपनी अन्तिम सांस तक कार्य किया । सच्चे अर्थो में सरदार सच्चे देशभक्त एवं राष्ट्र निर्माता थे । सरदार पटेल ने एक राष्ट्र भाषा के निर्माण में भी योगदान किया और राष्ट्रीय एकता की दिशा में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलवाया । सरदार पटेल ने स्वदेशी आन्दोलन चलाकर देशीकरण की भावना को प्रोत्साहन दिया । उन्होंने किसानो, मजदूरों एवं जनता से अधिक काम करने की अपील की और सभी को राष्ट्रनिर्माण में पूरा सहयोग करने की सलाह दी ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश का संविधान बनाना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्य था, जिसमें डी. बी. आर. अम्बेडकर, अनन्तशयनम अयंगर, जान मथाई जैसे विधि विशेषज्ञों तथा सरदार पटेल, पं. नेहरू, राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन, के. एन. मुन्शी, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी एस. ए. लाहड़ी, महावीर त्यागी, देशमुख, कामथ एवं आर. आर. दिवाकर जैसे अनेक लोगों ने अपना योगदान किया । संविधान सभा में सरदार पटेल को तीन महत्त्वपूर्ण उपसमितियों का कार्य सौंपा गया जिनमें उन्होंने अध्यक्ष के रूप में नेतृत्वकारी एवं निर्णायक भूमिका निभायी, ये उप समितियाँ थी -

(अ) मौलिक अधिकारों से "सम्बन्धित उप समिति ।

(ब) प्रांतीय संविधान उप " समिति एवं

(स) अल्पसंख्यक उप समिति ।

मौलिक अधिकारों की उप समिति के अध्यक्ष होने एवं एक जिम्मेदार राष्ट्र निर्माता होने के नाते सरदार पटेल ने प्रेस, मानवीय स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, शिक्षा व संस्कृति के अधिकार, शोषण मुक्ति, विभिन्न समानताऐं सम्पत्ति संरक्षण का अधिकार आदि को कराने की दिशा में सराहनीय कार्य किये । इसी प्रकार प्रांतीय संविधान उपसमिति के अध्यक्षता करते हुए शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना, राज्य न्यायपालिका को मजबूती प्रदान करने, स्वतन्त्र निर्वाचन आयोग की स्थापना, राज्यपालों की स्थिति, देश की शासन व्यवस्था एवं देश के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद की व्याख्या करने मे अपना अहम योगदान किया । अल्पसंख्यक उपसमिति के अध्यक्ष के रूप में करते हुए उन्होंने अल्पसंख्यकों के उत्थान

के लिए आरक्षण की व्यवस्था का प्रावधान किया जिसे 10 वर्ष के पश्चात पुनर्विचार करने के लिए प्रावधान किया गया ।

4.13 सरदार पटेल : एक राजनीतिक के रूप में

सरदार पटेल एक महान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति, सक्षम एवं कुशल प्रशासक के साथ-साथ साहसी, निडर एवं अनुकरणीय उदाहरण पेश करने वाले अनुशासन प्रिय राजनीतिज्ञ भी थे । वे प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप को गलत मानते थे और उन्ही दृढ़ नेतृत्व एवं निर्णय शैली ने सभी को प्रभावित किया । श्री चन्द्रकान्त भट्टाचार्य ने पी. डी. सग्गी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'ए नेशलन होमेज लाइफ : एण्ड वर्क ऑफ सरदार वल्लभभाई पटेल' 1953 में लिखा है कि -

'चाणक्य चन्द्रगुप्त का प्रधानमंत्री, जो मौर्य साम्राज्य का वास्तविक निर्माता एवं स्थापनाकर्त्ता था, उस सयम के इतिहास का वह शायद एक ऐसा अकेला व्यक्तित्व था, जिसने सरदार पटेल के समान उपलब्धियाँ हासिल की । 'इस कथन में सरदार पटेल के तुलना चाणक्य से की गई है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि सरदार पटेल वास्तविक एवं सच्चे अर्थो में राष्ट्र निर्माता थे ।

वल्लभभाई पटेल के भाषण आग उगलने वाले थे । वे मुर्दो में भी जान फूंकने की शक्ति रखते थे । क्षेत्र के स्त्री-पुरूष उन्हें देवता की तरह मानते थे । सरकार की दमनकारी नीति का विरोध करते हुए अपने एक भाषण में पटेल ने कहा "आज तो सरकार जंगल में घूमने वाले उस पागल हाथी की तरह मदोन्मत्त हो गई है, जो अपनी चपेट में आने वाले हर किसी को कुचल डालता है । पागल हाथी अपने मद में यह गुरूर करने लगता है कि उसने शेर-चीतों तक को मारकर भगा दिया है तो फिर उसके सामने मच्छरों की क्या गिनती । परन्तु एक मच्छर यदि हाथी के कान में घुस जाए तो विशालकाय और शक्तिशाली हाथी भी जमीन पर गिरकर लडपने लगता है । " सरदार पटेल के ये ओजस्वी भाषण उनकी नेतृत्व क्षमता को भली प्रकार दर्शाते हैं ।

सरदार पटेल का राजनीतिक जीवन 1924 में नगरपालिका के चुनावों में अपनी पार्टी बनाकर चुनाव लड़ने से प्रारम्भ हुआ और उनकी पार्टी को 48 में से 35 पर विजय प्राप्त हुई । सरदार पटेल ने इसके अध्यक्ष की जिम्मेदारी स्वयं संभाली और लोक हित में अनके कार्य किये । सरदार पटेल नगरपालिका इंजीनियर और उसके विभाग को नगरपालिका प्रशासन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग समझते थे । वे अधीनस्थ कर्मचारियों से अपने बराबर जैसा व्यवहार करते और प्रत्येक व्यक्ति में कार्य की इच्छा एवं उत्साह का संचार करने का प्रयास करते थे । 4 फरवरी, 1928 को सरदार पटेल की अध्यक्षता में बारदोली आदोलन जिसमें आठ गाँवों के किसानों का सम्मेलन आयोजित किया था उसकी अध्यक्षता की । मार्च, 1931 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कराची अधिवेशन में बढ़-चढ़कर भाग लिया और अपने कार्य से देश के निर्माण में महान योगदान दिया ।

सरदार पटेल ने अल्पसंख्यकों को दो माँगों को स्वविवेक एवं चतुराई से सम्भाला जिनमें पहला था मंत्रिमण्डल में सीटो का आरक्षण और दूसरा सरकारी सेवाओं में निश्चित प्रतिशत का आरक्षण । सरदार पटेल ने संविधान में कानूनी व्यवस्था की कठिनाईयों को इंगित करते हुए इस समस्या को सुलझाया । सरदार पटेल ने राष्ट्रपति के चुनाव में आ रही अड़चनों और राष्ट्रपति पद को राष्ट्रीय दर्जा दिलाने में बड़ी दक्षता दिखाई । देशी राज्यों का विलय एक अभूतपूर्व घटना थी जिसका श्रेय सरदार

पटेल को जाता है । सरदार पटेल ने देश के उप प्रधानमंत्री, गृहमंत्री और सूचना एवं प्रसारण मंत्री रहते हुए देश की अनेक बड़ी एवं गम्भीर समस्याओं का समाधान बडी बुद्धिमता से किया ।

4.14 गृह मंत्री के रूप में सरदार

सरदार पटेल 1946 की अन्तरिम सरकार में देश के गृहमंत्री बने और अन्तिम सांस तक इस पद पर रहे । 'हिन्दी के सरदार' नामक पुस्तक में श्री रावजी भाई ने कहा है कि : 'देश में स्वराज्य की स्थापना होने पर, अपने ठोस अनुभवाधार पर भारत के गृहमंत्री और आन्तरिक विषयों के मंत्री के नाते सरदार साहब ने अखण्ड भारत का भव्य और सुन्दर भवन खड़ा किया ।' उक्त श्री रावजी भाई के कथन में सरदार पटेल को भारत निर्माता के रूप में दर्शाने का प्रयास किया गया है । उनके गृहमंत्री काल में देश का प्रशासन नये स्वरूप में आया और व्यवस्था को सुचारू चलाने, सद्भाव एवं सौहार्द्ध बनाने और देशी राज्यों के विलीनीकरण में सरदार पटेल का योगदान अविस्मरणीय है ।

4.15 निष्कर्ष

सरदार का दर्शन पूरी तरह स्पष्ट था । वे कहते थे 'हमारा कल्याण न तो राज्य के हाथो मे है औरन ही जमींदारों के हाथों में । हमारा कल्याण हमारे अपने हाथों में है ।' स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात् देश को शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाने में सरदार पटेल ने जिस अदम्य साहस का परिचय दिया वह वास्तव में अतुलनीय एवं महान था । सरदार पटेल ने भारतीय राज्यों की रियासतों के एकीकरण का कार्य जिस विवेक चतुराई से किया उसे भुलाया नहीं जा सकता । भारत के युगों के इतिहास में, भारत पहली बार एकजुट हुआ और वह भी खून की एक भी बूंद बहाये बिना । यह सब पटेल के व्यक्तित्व का ही चमत्कार था । उन्होंने देश के प्रशासन, कानून व्यवस्था के रख-रखाव, देश की स्थिरता सुनिश्चित करने और उसे अभेद्य बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

सरदार पटेल में कार्य की प्रकृति की समझ, सोचने की त्वरितता, त्याग और सेवा भावना, कार्य के प्रति लगाव, इच्छा शक्ति, नि:स्वार्थता, कठिन परिश्रमी, अनुशासनशीलता बोद्धिक कुशलता, निर्णय लेने की क्षमता, धैर्य, साहस और सैद्धान्तिक दृष्टिकोण की विशेषताएं महान बनाती है । सरदार पटेल ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बहुत कम समय में अपने द्ढ़ निश्चय, विश्वास और शक्ति से राज्यों को भारत का अभिन्न अंग बनाया और अपक किया हुआ वादा निभाया । यह उनकी अपेक्षित उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोगी रणनीति बनाने में कौशल, दूरदर्शिता और क्षमता का द्योतक है ।

सरदार पटेल में प्रशासनिक क्षमता का गण उनका समस्याओं के साथ निकटता के सम्बन्ध से निखरा हुआ था । वे समस्याओं पर गहन चिन्तन मनन करके सभी वैकल्पिक उपायों पर दृष्टि डालकर श्रेष्ठ विकल्प का चयन बड़ी निर्भीकता एवं दृढ़ता से करते थे । पटेल अपने अधिनस्थों के प्रति उदार दृष्टिकोण, उनमें विश्वास एवं उनके साथ निकटता का भाव रखते थे । उनका मानना था कि प्रशासनिक कार्यो में राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और प्रशासकों एवं प्रबन्धकों को सरदार के प्रति प्रतिबद्धता का परिचय देते हुए नीतियों एवं कानूनों का क्रियान्वयन करना चाहिए । वे चुनौतियों को दृढ़ता से स्वीकार करने में विश्वास रखते थे ।

देश के स्वाधीनता संग्राम, देश के एकीकरण, प्रशासनिक ढाँचा तैयार करने, नेतृत्व एवं चुनौतियों को स्वीकार करते हुए देश के निर्माण में महान योगदान किया है । सरदार पटेल ने देश में

कानून और व्यवस्था को बनाये रखने, संविधान के निर्माण एवं केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है ।

इस प्रकार सरदार, हस्तक्षेप रहित प्रशासन, जिसमें अधिकारियों से पूर्ण नीतिगत लाभ लिया जा सके और प्रशासक दृढ़ता के साथ सार्वजनिक कर्त्तव्य निभाऐं देश के हित को सर्वोच्च रखकर चाहते थे, ऐसा उनके नेतृत्व का चरित्र था । इस प्रकार वे नेपोलियन की भांति राष्ट्र हित की सर्वोच्चता तो चाहते थे परन्तु बिना किसी गलत परम्परा की नींव डाले । वे लोकतान्त्रिक पद्धति से कार्य करने वाले राष्ट्रवादी थे । सरदार पटेल ने इण्डियन सिविल सर्विस (ICS) के स्थान पर इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन सर्विस (IAS) और इण्डियन पुलिस (IP)के स्थान पर इण्डियन पुलिस सर्विस (IPS) का निर्माण किया था, इसीलिए उन्हें अखिल भारतीय सेवाओं का जनक (Father of All India Services) कहा जाता है । वास्तव में सरदार पटेल एक कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं सच्चे देश भक्त थे जिन्होंने अपना सारा जीवन देश सेवा में लगा दिया । वर्तमान सन्दर्भ में भी वे उतने ही प्रासंगिक है जितने अपने समय में थे । हम आज यदि उनके बताये हुए रास्तों पर चले और उनके आदर्शों, गुणों का अनुसरण करें तो देश को उन्नति के शिखर तक ले जा सकते हैं ।

4.16 अभ्यास प्रश्न

1. सरदार पटेल के व्यक्तित्व के' गुणों का संक्षिप्त वर्णन करो ।
2. सरदार पटेल के भारतीय प्रशासन में योगदान का उल्लेख कीजिए ।
3. सरदार पटेल को आधुनिक भारत का निर्माता क्यों कहा जाता है? विवेचना कीजिए ।
4. गृहमंत्री के रूप में सरदार पटेल के योगदान का वर्णन कीजिए ।
5. वर्तमान पतिप्रेक्ष्य में सरदार वल्लभभाई पटेल की प्रासंगिकता का विवेचन कीजिए ।
6. सरदार पटेल में बिस्मार्क जैसी संगठनात्मक योग्यता, कौटिल्य जैसी दक्ष राजनीतिज्ञता और अब्राहम लिंकन जैसी धर्म निष्ठा राष्ट्रीय एकता के लिए विद्यमान थी ।' वी.वी. गिरी के उक्त कथन की तर्कपूर्ण व्याख्या कीजिए

4.17 संदर्भ ग्रन्थ

1. एम. पी. कमल, सरदार वल्लभ भाई पटेल, राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2008
2. आई. जे. पटेल, आधुनिक भारत के निर्माता सरदार वल्लभ भाई पटेल, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2005
3. रवीन्द्र कुमार, सरदार वल्लभ भाई पटेल के सामाजिक व राजनीतिक विचार, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991
4. पी. एन. प्रभा चोपड़ा (संकलन), सरदार पटेल की अनमोल वाणी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2005
5. रावजी भाई मणिभाई पटेल, हिन्द के सरदार, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1972
6. एल. पी. सिंह, सरदार पटेल एण्ड द इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987

7. पी. एल. संजीव रेड्डी, एस. एन. मिश्रा सरदार वल्लभभाई पटेल द नेशन बुल्डर (ऐडिटेड), इण्डियन इन्सिटीट्युट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 2004 ।

इकाई - 05

वुडरो विल्सन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 जीवन परिचय

5.3 प्रशासकीय विज्ञान

5.4 राजनीति एवं प्रशासन

5.5 तुलनात्मक पद्धति

5.6 निष्कर्ष

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- वुडरो विल्सन के योगदान के बारे में ।
- विल्सन के प्रशासनिक विज्ञान के बारे में विचार ।
- विल्सन की तुलनात्मक पद्धति के बारे में धारणा ।
- विल्सन की राजनीति एवं प्रशासन पर धारणा ।

5.1 प्रस्तावना

लोक प्रशासन की बौद्धिक जड़े 1880 में वुडरो विलसन के उत्कृष्ट योगदान की देन है । यद्यपि गुडनाऊ को अमेरिकी लोक प्रशासन के 'पिता' की संज्ञा दी गई है, तथापि वे विलसन ही थे, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध 'प्रशासन का अध्ययन' द्वारा 'प्रशासन' के वैज्ञानिक अध्ययन पर जोर दिया । उनका निबंध सरकार के चरित्र को जानकारी का विषय बनाता है ।

5.2 जीवन परिचय

वुडरो विल्सन का जन्म अमेरिका के वर्जीनिया में दिसम्बर 28,1856 को हुआ था । उन्होंने राजनीति, प्रशासन एवं विधि का अध्ययन किया । 1879 में प्रिंसटन से पढ़ाई पूरी कर उन्होंने 1886 में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की । कॉलेज विद्यार्थी के रूप में ही उन्होंने अपना प्रथम पुस्तक 'काँग्रेशनल गवर्नमेन्ट' प्रकाशित किया । यह पुस्तक पीएच. डी. स्तर का था । वे राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर (1886-1902) तथा प्रिंसटन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (1902-1912) रहे । 1910 में वे न्यू जर्सी प्रांत के गवर्नर तथा 1913 में अमेरिकी राष्ट्रपति निर्वाचित हुए । उनका 1924 में देहांत हुआ । उन्होंने आठ पुस्तकें तथा अनेक लेख प्रकाशित किये । वे अति उत्कृष्ट राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर, प्रशासनिक विद्वान, इतिहासकार, शिक्षक, सुधारक एवं राजनीतिज्ञ थे । समसामयिक गतिविधियों से

प्रभावित होकर उन्होंने यह अनुभव किया कि प्रशासन के अध्ययन से व्यवस्था के राजनीतिक दुरूपयोग को सुधारना संभव होगा । विलसन के राजनीतिक दर्शन एडमंड, बर्क द्वारा प्रभावित थे, वाल्टर वेगहॉट ने उनके विचार प्रशासन एवं तुलनात्मक सरकार की ओर मोड़ा । किन्तु, वास्तव में जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रिचर्ड टी. इली ने विलसन को प्रशासनिक अध्ययन की ओर प्रेरित किया । उनके व्याख्यान अति महत्वपूर्ण थे क्योंकि इससे उन्हें यूरोपीय प्रशासनिक प्रणाली का अमेरिकी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था द्वारा आत्मसात किये जाने पर विचारने को प्रेरित हुए ।

विलसन के योगदान का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने प्रशासन के अध्ययन पर निबंध तब लिखा, जब उन्हें अमेरिकी प्रशासन का कोई अनुभव नहीं था । उन्होंने लिखने के साथ, विश्वविद्यालयों में प्रशासन पर व्याख्यान भी दिये । अकादमिक क्षेत्र में सफलता को उन्होंने शिक्षा या शोध में परिवर्तित नहीं किया । उन्होंने इस विषय के अध्ययन को विशेष समय नहीं दिया ।

शीघ्र ही वे 1885 में विन मॉअर में अध्यापन करने लगे तथा 'प्रशासन में तुलनात्मक व्यवस्था' विषय पर कार्य करने लगे । तीन प्रारूप तैयार करने के पश्चात् 1887 के पॉलीटिकल साईंस क्वाटरली में प्रकाशित लेख 'प्रशासन का अध्ययन' प्रकाशित होने के पूर्व से ही उत्कृष्ट रचना मानी जाने लगी । इस लेख में विलसन ने इस अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसका राजनीति विज्ञान में नवधारा तथा अध्ययन की आवश्यकता, मूल्य एवं तरीकों पर विस्तारपूर्वक रोशनी डाली है ।

विलसन पाठक को सर्वप्रथम प्रशासन के क्षेत्र की जानकारी देते हैं । उनके अनुसार प्रशासन के अध्ययन की आवश्यकता समाज में बढ़ती क्लिष्टता (जटिलता), राज्य की बढ़ती कार्यप्रणाली, तथा लोकतांत्रिक सरकारों का गठन है । विलसन के अनुसार सरकारों को सुधारने के लिये प्रशासन में सुधार की आवश्यकता है । प्रशासनिक अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि ये सफलतापूर्वक बिना धन एवं ऊर्जा के कार्य किये कैसे प्रशासनिक सुधार किये जा सकते हैं ।

विलसन के लिये प्रशासन सरकार का महत्वपूर्ण अंग है । वह सरकार का दृश्य अंग है । परन्तु राजनीति विज्ञान के ज्ञाताओं ने प्रशासन को सरकार के विज्ञान की शाखा नहीं माना । उन्नीसवीं शताब्दी पूर्व राजनीति विचारक संविधान, राज्य का स्वरूप, सार्वभौमिकता आदि विषयों पर ही लिखते थे । उनका ध्यान लोकतंत्र तथा राजतंत्र पर ही था । प्रशासन तथा प्रशासकीय अनुभव 'क्लार्कों' द्वारा निपटाए जाने योग्य विषय समझे जाते थे ।

विलसन के अनुसार पूर्व में सीमित जनसंख्या भी प्रशासन विषय में अध्ययन की आवश्यकता की कमी का कारण बनी । किन्तु उन्नीसवीं सदी पश्चात् व्यापार में जटिलतायें, विशाल निगमों का उद्भव, कार्मिक प्रबंधन समस्याऐं आदि राज्य के कार्यों को बढ़ाती है जिससे प्रशासन का अध्ययन अति आवश्यक हो गया है ।

5.3 प्रशासनिक विज्ञान

विलसन का मानना था कि प्रशासन मुख्यत: एक विज्ञान है । इस संबंध में उनकी कई टिप्पणियाँ हैं । उनका मानना था कि राजनीति विज्ञान का नव अंकुर 'प्रशासन का विज्ञान' था । व्यवहारत: अमेरिकी प्रशासनतंत्र में वैज्ञानिक प्रकृति का अभाव था । सुशासन की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं थी । यूरोप में सरकार का प्रबंधन भिन्न प्रकार था जिसे यथावत अपनाना अमेरिकी व्यवस्था हेतु संभव नहीं था । अमेरिकी उद्देश्य, विचार एवं सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता थी।

अमेरिका में प्रशासनिक विज्ञान का विकास काफी धीमी गति से हो रहा था । विल्सन का मानना था कि लोकतंत्र में राजतंत्र की अपेक्षा प्रशासन को संगठित करना कठिन था । प्रशासन का जनमत के प्रति उत्तरदायी होना अनिवार्य है, इसके लिए ' संवैधानिक परिवर्तन पर विचार न कर राष्ट्र को प्रशासनिक विज्ञान का व्यवस्थित विश्लेषण करना होगा ।

प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उसके अध्ययन में आने वाली कठिनाईयों पर विस्तृत चर्चा के पश्चात् विल्सन प्रशासन की विषयवस्तु तथा विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं । विलसन के अनुसार लोक प्रशासन जन कानूनों का विस्तृत एवं व्यवस्थित क्रियान्वयन है । प्रत्येक कानून का निर्वाह ही प्रशासन है । सरकार की योजनायें प्रशासनिक नहीं होती किन्तु उनका क्रियान्वयन ही प्रशासन है। योजनाओं एवं प्रशासनिक साधनों के मध्य भेद होता है ।

5.4 राजनीति एवं प्रशासन

विल्सन ने राजनीति एवं प्रशासन के मध्य संबंध भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किये हैं । विल्सन के अनुसार सरकार का अध्ययन विशेषता प्रशासन स्वयं में पूर्ण अध्ययन नहीं हो सकता । प्रशासन को लोक विधि की अन्य शाखाओं से अलग नहीं किया जा सकता । इसका तात्पर्य है कि विल्सन राजनीति और प्रशासन के मध्य अंर्तनिर्भरता से अनभिज्ञ नहीं थे ।

दूसरी ओर विल्सन ने प्रशासन और राजनीति को एक दूसरे से पृथक माना है । उनका मानना था कि प्रशासन राजनीति के घेरे से बाहर है तथा प्रशासनिक प्रश्न, राजनीतिक प्रश्न नहीं हो सकते । राजनीति राजनीतिज्ञों के अधिकार क्षेत्र में रहती है जबकि प्रशासन पर तकनीकी अधिकारियों का अधिकार रहता है । नौकरशाही के संदर्भ में विल्सन का मानना था कि नौकरशाही का अपना विशिष्ट अस्तित्व होना चाहिए । इस प्रकार विल्सन ने राजनीति व प्रशासन के मध्य भेद प्रस्तुत किया है । इससे स्पष्ट होता है कि कई विद्वानों में विल्सन के प्रशासन एवं राजनीति के मध्य जुड़ाव (सम्बद्धता) एवं असंबद्धता के विचारों के प्रति मतभेद था ।

कुछ अन्य लेखक मानते हैं कि विल्सन के लिए प्रशासन का क्षेत्र एक व्यापार है तथा राजनीति के दिन-प्रतिदिन के संघर्ष से विलग है । बुएकनर (Buechner) का मानना था कि विल्सन के निबंध की विशेषता यह है कि लोक प्रशासन का अध्ययन व्यावसायिक प्रशासन के समान होना चाहिए । विशेषकर आर्थिक, कुशलता तथा प्रभावशीलता की गुणवत्ता के संदर्भ में ।

विल्सन में जनमत एवं प्रशासन के मध्य संबंधों का भी विश्लेषण किया है । उनके अनुसार जनमत साधिकार आलोचक का स्थान लेती है किन्तु जनमत की और कुशल बनाने की आवश्यकता है । अत: विल्सन का मानना था कि प्रशासनिक अध्ययन से जन आलोचना को नियंत्रित किया जाये परन्तु प्रशासन में हस्तक्षेप से पूर्णत: रोका जाये । इसके लिये विल्सन ने तकनीकी रूप से तैयार प्रशासनिक सेवाओं की वकालत की । उनका मानना था कि अमेरिका में प्रशासनिक सेवा सुधार युद्धस्तर पर होने वाले प्रशासनिक सुधार का आरंभ मात्र था । नियुक्तियों के तरीकों के सुधार के साथ कार्यकारी संगठनों तथा उनकी कार्यशैली के तरीकों में भी सुधार होना चाहिए ।

5.5 तुलनात्मक पद्धति

इस लेख के अंतिम भाग में विल्सन ने प्रशासनिक अध्ययन के उपयुक्त तरीकों पर चर्चा की है । उन्होंने दार्शनिक शैली को नकारते हु ए ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया । उनका

मानना था कि तुलनात्मक अध्ययन से ही किसी भी व्यवस्था के गुण एवं दोष उजागर होते हैं । इनके अनुसार एकतंत्रीय यूरोपीय देशों से उनके कुशल प्रशासनिक तरीके अपनाये जा सकते हैं जिससे भीतरी एवं बाहरी विनाश से बचा जा सके लेकिन इन देशों की निरंकुशता को अपनाने से बचना चाहिए ।

प्रशासनिक तकनीक के वैश्विक आदान-प्रदान के संबंध में विल्सन की विचारधारा पर अनेक मतान्तर है । रिग्स (Riggs) का मानना है कि विल्सन प्रजातांत्रिक सरकार के प्रति निष्ठा रखते थे तथा गैर-प्रजातांत्रिक देशों की प्रशासनिक तकनीक भी निर्यात नहीं करना चाहते थे । इस प्रकार रिग्स का मानना था कि विल्सन को प्रशासनिक सुधार के राजनीतिक संदर्भ एवं प्रशासनिक विकास की पूर्ण जानकारी थी, किन्तु हेडी (Heady) का मानना था कि विल्सन के निबंधों के अनुसार प्रशासनिक तकनीक के निर्यात की कोई सीमा नहीं होनी चाहिए और उनका ध्यान उन परिस्थितियों की ओर है जिसमें कि प्रशासनिक तकनीक का आयात संभव है ।

5.6 निष्कर्ष

वुडरो विल्सन के प्रसिद्ध निबंध के प्रकाशन से लोक प्रशासन का एक अध्ययन विषय के रूप में जन्म हु आ । क्लिसन के प्रशासन के अध्ययन के पश्चात भी पाठक उसकी वास्तविकता से अनभिज्ञ रहता है । विल्सन ने प्रशासन को व्यापारिक तरीके से जोड़ा है । प्रशासनिक सेवा की व्याख्या की है तथा संवैधानिक वैधता के विभाजन की समस्या पर चर्चा की है जो कि पाठक के लिये समझना सरल नही है ।

अपने लेख के प्रथम अनुच्छेद में विल्सन ने प्रशासनिक अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना माना है कि सरकार उचित ढंग से तथा सफलतापूर्वक क्या कर सकती है परन्तु लेख में अधिकतर चर्चा राजनीति व प्रशासन के मध्य भेद पर की गई है जिससे कि विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं ।

स्वयं विल्सन के अनुसार उनका प्रशासनिक अध्ययन अति सामान्य, विस्तृत तथा संदिग्ध हैं । विल्सन के लेख में उत्तर से अधिक प्रश्नों का उल्लेख है साथ ही उन्होंने प्रशासनिक अध्ययन क्या है? का भी स्पष्टीकरण नहीं किया है तथा प्रशासन एवं राजनीति के अंर्तसंबंध की भी व्याख्या नहीं की और यह भी नहीं बताया कि क्या कभी प्रशासनिक अध्ययन प्राकृतिक विज्ञानों की श्रेणी का विज्ञान बन सकता है । इन सीमाओं के बावजूद भी विल्सन के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। 19वीं शताब्दी में लोक प्रशासन के विकास के संदर्भ में उनका यह लेख काफी महत्वपूर्ण है ।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. वुडरो विल्सन के प्रशासकीय योगदान के बारे में बताइये ।
2. विल्सन के प्रशासकीय विज्ञान की धारणा की समीक्षा कीजिये ।
3. विल्सन की राजनीति एवं प्रशासन की मान्यता की समीक्षा कीजिये ।

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. आर. पी. जोशी एवं अंजु पारीक, प्रशासनिक विचारक, रावत पब्लिकेसन्स जयपुर, 2005
2. प्रसाद, प्रसाद एवं सतनारायना एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली,
3. सिंह आर. एम., मेनेजमेंट थोट एण्ड थिंकर, सुलतान चन्द, नई दिल्ली, 1984

4. सप्रू आर. के., एडमिनिस्ट्रेटिव थ्यौरीज एण्ड मेनेजमेंट थोट, आर. एच. आई, नई दिल्ली, 2008

इकाई - 06

चेस्टर आई. बर्नार्ड

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 बर्नार्ड का योगदान
6.2.1 औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन : एक नवीन दृष्टि
6.2.2 सत्ता सिद्धान्त
6.2.3 संगठन : सहकारी एवं समन्वयकारी व्यवस्था
6.2.4 प्रशासकीय व्यवहार सम्बन्धी विचार
6.3 तुलना एवं मूल्यांकन
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्न
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे कि :

- चेस्टर आई. बर्नार्ड के औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन सम्बन्धी विचारों की विवेचना कर सकें ।
- बर्नार्ड के सत्ता सिद्धान्त, सहकारी व्यवस्था एवं प्रशासकीय व्यवहार सम्बन्धी योगदान को आत्मसात कर सकें ।
- बर्नार्ड की अन्य विचारकों से तुलना एवं मूल्यांकन कर सकें ।
- बर्नार्ड द्वारा लोक प्रशासन को दिए गए योगदान पर बहस एवं व्याख्या कर सकें ।

6.1 प्रस्तावना

चेस्टर इरविंग बर्नार्ड सांगठिक विचारों के दर्पण है । यह एक ऐसे व्यवस्थित लेखक है जिन्होने एक नवयुग का सूत्रपात किया है । आधुनिक संगठन की सम्पूर्ण क्रान्तिकारी बातें बर्नार्ड के चिन्तन में अन्तर्निहित है । बेल टेलीफोन कम्पनी के अपने व्यावहारिक अनुभवों को नेतृत्व, सत्ता, सम्प्रेषण, निर्णय क्रिया आदि के रूप में पिरोने वाले चेस्टर बर्नार्ड ने शास्त्रीय सिद्धान्त (classical theory) की सीमाएं की सीमाएं बतलाकर आधुनिक सिद्धान्त में अनौपचारिक संगठन, निगमीय संगठन, अधो-उर्ध्व सत्ता सिद्धान्त (Bottom-up Authority) तथा सम्प्रेषणकारी नेतृत्व के नवीन आयाम खोजे है जिसने हाथोर्न शोध' को मानव सम्बन्धवाद से मानव व्यवहारवाद तक पहुंचाया है । बर्नार्ड ने सहकारिता एवं संगठन की विचारधारा के प्रतिपादन के साथ-साथ प्रबन्धकीय प्रक्रिया का मानवीय एवं सामाजिक तार्किक विश्लेषण भी किया है । चेस्टर बर्नार्ड को प्रबन्धकीय इतिहास में सामाजिक प्रणाली

विचारधारा का आध्यात्मिक जन्मदाता (Spiritual Father of Social system School) माना जाता है ।

बर्नार्ड का जन्म 1886 में संयुक्त राज्य अमेरिका के मैसाचुसेटस राज्य में हुआ। इन्होने अपने जीवन की शुरूआत 'माउंट हरमन अकादमी (Mount Hermon Academy) में अपनी शिक्षा पूर्ण करके की । ये व 927 से 1948 तक 'न्यू जर्सी बेल टेलीफोन कम्पनी' (New Jersey Bell Telephone Company) के भी अध्यक्ष रहे । इन्होंने कई सरकारी, नागरिक व धमार्थ संगठनों में कार्य किया। सन् 1937 में ये लॉवेल इंस्टीट्यूट, बोस्टन (Lowell Institute, Boston) द्वारा प्रबन्ध पर व्याख्यानों की एक लम्बी श्रृंखला के लिए आमंत्रित किये गये, इनके यही व्याख्यानों 1938 में प्रसिद्ध कृति 'The 'The Functions of the executive' के रूप में प्रकाशित हुए ।

चेस्टर बर्नार्ड का अधिकांश जीवन उच्चस्तरीय प्रबन्धक के रूप में बीता । प्रबन्धकीय क्षेत्र में उनका सैद्धान्तिक ज्ञान अत्यन्त सुदृढ था साथ ही व्यावहारिक क्षेत्र में भी उनकी दृष्टि विलक्षण थी। इन्होंने समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के शोध परिणामों का प्रयोग प्रबन्ध व संगठन के सिद्धान्तों के प्रतिपादन हेतु किया । व्यवहार में बर्नार्ड प्रथम विचारक थे जिन्होने संगठन को सामाजिक प्रणाली के रूप में देखा तथा वैज्ञानिक प्रबन्धन के पारम्परिक चिन्तन से हटकर कार्य किया । उनका व्यक्तित्व बहुप्रतिभासम्पन्न था ।

उनकी महत्वपूर्ण पुस्तकें अग्रलिखित हैं -

01. द फंक्शन ऑफ एक्जीक्यूटिव (1938)

02. द नेचर ऑफ लीडरशिप (1940)

03. ऑर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेंट (1948)

इनकी प्रथम पुस्तक द फंक्शन ऑफ दी एक्जीक्यूटिव (1938) प्रबन्ध साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। यह प्रबन्धक के वैयक्तिक व्यवहार में निहित सक्रिय प्रक्रियाओं का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है ।

प्रशासनिक जगत के चिन्तन एवं विचारधाराओं पर इसका गहनतम प्रभाव पड़ा है। इस तरह इस इकाई में बर्नार्ड. के इन्हीं विचारों व योगदान की व्यवस्थित चर्चा की जाएगी तथा बर्नार्ड व अन्य विचारकों की परस्पर तुलना एवं मूल्यांकन पर प्रकाश डाला जाएगा ।

6.2 बर्नार्ड का योगदान

बर्नार्ड का योगदान तात्कालीन समय की मांग थी । बर्नार्ड ने संगठन सम्बन्धी नवीन दृष्टि प्रदान करके संगठन को नव जीवन प्रदान किया। बर्नार्ड ने संगठन के प्रत्येक पहलू पर अपने विचार स्पष्ट किए है । इनका अध्ययन निम्नलिखित उपबिन्दुओं के माध्यम से कर सकते है ।

6.2.1 औपचारिक-अनौपचारिक संगठन एक नवीन दृष्टि

संगठन सम्बन्धी नवीन विचारधारा लाने का श्रेय चेस्टर बर्नार्ड को दिया जाता है। औपचारिक संगठन के सम्बन्ध में इनका मानना है कि यह दो या अधिक व्यक्तियो की सचेत रूप से समन्वित क्रियाओं अथवा शक्तियों की प्रणाली है। बर्नार्ड अपने विचारों में 'प्रणाली' व व्यक्तियों शब्द पर विशेष बल देते है। इस प्रकार बर्नार्ड से दो या दो से अधिक लोगों की शक्तियों के समुच्चय को ही औपचारिक संगठन मानते है। सामान्यत: औपचारिक संगठन तभी बनता है जबकि - व्यक्ति परस्पर संवाद कर

पाने में सक्षम हों, इनमें कार्यविधियों, योजनाऐं परियोजनाओं में सहयोग करने की इच्छा हो अर्थात कार्य करने की इच्छा हो तथा सभी में समान उद्देश्य को प्राप्त करने की आकांक्षा हो ।

अत: संचार, कार्य की इच्छा व समान उद्देश्य - यही औपचारिक संगठन के तीन मूल तत्व है ।

बर्नार्ड का मत है कि इन तीनों तत्वों के मिश्रण एवं उचित संतुलन पर ही संगठन का अस्तित्व निर्भर करता है । किन्तु यह संतुलन बाह्य दशाओं के अनुरूप होना चाहिए, अर्थात संवाद (सम्प्रेषण) योगदान की इच्छा व सामान्य लक्ष्य के मध्य स्थापित होना चाहिए जिससे यह स्वत: बाह्य वातावरण के अनुरूप हो जाता है । बाह्य वातावरण ही संगठन में कार्यकुशलता व प्रभावशीलता का जनक हो सकता है ।

सहयोग की इच्छा (Willingness to cooperate) - इसमें व्यक्तियों के प्रयास संगठन में संयुक्त हो जाते है, मिलकर एक हो जाते है । इसके बिना व्यक्ति का संगठन के प्रति कोई सहयोग नहीं हो सकता है । यद्यपि बर्नार्ड का मानना है कि आधुनिक समाज में "जो सचमुच में किसी संगठन के प्रति सहयोग की सकारात्मक इच्छा रखते है वे हमेशा बहुत थोड़े से लोग होते है । वह योगदान की इच्छा के सम्बन्ध में तीन महत्वपूर्ण तथ्य बतलाते है -

(क) योगदान करने हेतु तीव्रता की व्यापक संभावना ।

(ख) सहयोग करने की इच्छा सदैव स्थायी नहीं होती है ।

(ग) संगठन में सकारात्मक सहयोग करने वालों की संख्या भी परिवर्तनशील होती है ।

अत: वैयक्तिक दृष्टि से सहयोग की इच्छा निजी इच्छा व अनिच्छा का संयुक्त परिणाम है। जबकि सांगठिक दृष्टि से यह व्यक्ति को दी गई वास्तविक प्रेरणाओं तथा उसे सौंपे गए दायित्वों का संयुक्त परिणाम है।

उद्देश्य (purpose) - संगठन में योगदान देने की इच्छा संगठन के उद्देश्य पर निर्भर करती है । उद्देश्य की अनिवार्यता स्वंयसिद्ध है और यह "व्यवस्था, संयोजन तथा सहयोग" जैसे शब्दों में अन्तर्निहित है । उद्देश्य के बिना कर्मचारियों के प्रयासों का निर्धारण कर पाना कठिन होता है । बर्नार्ड के मत में संगठन के प्रत्येक सदस्य का दोहरा व्यक्तिव होता है - (अ) सांगठनिकक व्यक्तिव (ब) वैयक्तिक व्यक्तिव।

यही बर्नार्ड यह तर्क देते है कि सांगठिक उद्देश्य एवं वैयक्तिक उद्देश्य में स्पष्ट अन्तर किया जाना चाहिए । अनेक बार इस बात पर बल दिया जाता है कि यह दोनो समान होने चाहिए, किन्तु आधुनिक दशाओं में यह व्यवहारिक नहीं है ।

सम्प्रेषण (Communication) - सम्प्रेषण के माध्यम से ही संगठन के लक्ष्य व व्यक्तियों की आंकाक्षाओं को पूरा किय जा सकता है । सम्प्रेषण की संगठन में केन्द्रीय भूमिका होती है क्योंकि इसी के द्वारा संगठन की संरचना, विस्तार व क्षेत्र का निर्धारण होता है । बर्नार्ड ने 'अवलोकनात्मक भावना' (Observational felling) का सम्प्रेषण का एक महत्वपूर्ण पहलू बताया है ।

बर्नार्ड औपचारिक के साथ अनौपचारिक संगठन पर भी अत्यधिक बल देते है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बर्नार्ड के विचार यहाँ से शास्त्रीय सिद्धान्तवादियों से भिन्न होना आरंभ हो जाते है। चूंकि शास्त्रीय सिद्धान्तवादी औपचारिक संगठन से बाहर झांकने का कष्ट नहीं उठाते है । जबकि व्यवहार में संगठन में सदस्यों की परस्पर क्रियाओं एवं सम्पर्को के कारण उनकी प्रवृतियों, ज्ञान, अनुभव व

भावनाओं पर गहरा प्रभाव पडता है । संगठन में लोग एक दूसरे से अपने व्यक्तिगत संबंधों के तहत घुलते-मिलते है, न कि संगठनात्मक उद्देश्यों के कारण । इस तरह का घुलना-मिलना सामूहिकता की प्रवृत्ति के कारण होता है । साथ ही इसके पीछे किसी वैयक्तिक इच्छा की पूर्ति का स्वार्थ भी हो सकता है । चूंकि इस तरह की अंतः क्रिया एक सतत् प्रक्रिया के तहत जारी रहती है । अतः यह व्यवस्थित स्वरूप ग्रहण कर लेती है । बर्नार्ड ने इसी प्रकार के व्यक्तिगत सम्पर्को एवं अन्तक्रियाओं के जोड व व्यक्तियों के संबंधित समूहों को अनौपचारिक संगठन कहा है । सामाजिक संबंधों वाले इन आधारहीन समूहों की प्रत्येक औपचारिक संगठन में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । बर्नार्ड के अनुसार सम्पूर्ण संगठन पर इसके दो प्रभाव होते है -

(अ) ये अनौपचारिक समूह संस्था की प्रथाओं, रीति-रिवाजों, आदर्शो, लोकाचारों एवं सदस्यों की विचारधाराओं, आदतों, प्रवृतियों एवं भावनाओं को प्रभावित करते है । फलतः व्यक्तियों की कार्यात्मक क्षमता, दृष्टिकोण, प्रबन्धकों के साथ व्यवहार आदि में भारी परिवर्तन आने लगता है।

(ब) अनौपचारिक समूह औपचारिक संगठन से आगे कार्य करते है । अतः यह ऐसी दशाओं का सर्जन करते है जिनमें औपचारिक संगठन कुशलता से कार्य कर सके । उद्देश्यों के प्रति सहमति तथा उनका सम्प्रेषण, योगदान की इच्छा 'व संस्था के प्रति पूर्ण निष्ठा की भावना उत्पन्न कर्ने में अनौपचारिक समूहों का महत्वपूर्ण सहयोग होता है ।

बर्नार्ड स्पष्ट करते है कि कोई अनौपचारिक संगठन उसी स्थिति में सफल हो सकता है जबकि उसके भीतर एक औपचारिक संगठन उपस्थित हो । साथ ही औपचारिक संगठन अनौपचारिक संगठनों को इसलिए उत्पन्न करते है जिससे संगठन के भीतर संवाद कायम रहे व औपचारिक संगठन के वर्चस्व से लोगों को निजी तौर पर मुक्त रखा जा सके । व्यवहार में ये एक ही अवधारणा के दो पहलू है । समाज औपचारिक संगठनों से बनता है, तथा ये औपचारिक संगठन अनौपचारिक संगठनों से शक्ति प्राप्त करते है एवं नियंत्रित होते है । एक का दूसरे के बिना अस्तित्व नहीं है । यदि दो में से कोई भी एक असफल हु आ तो दूसरा भी अनिवार्यतः नष्ट हो जायेगा । संगठन की कार्य प्रणाली एवं व्यवहार पर अनौपचारिक समूहों का गहरा प्रभाव होता है । यह संगठन पर नैतिक एवं सामाजिक दबाव बनाए रखते है । इन्हें 'अदृश्य सरकार (Invisible Government) भी कहा जाता है । बर्नार्ड के अनुसार अनौपचारिक संगठनों के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य है -

(1) संस्था तथा इसके सदस्यों के मध्य सम्प्रेषण में सहायता पहुंचाना ।

(2) योगदान करने की इच्छा बनाए रखना ।

(3) संगठन में पारस्परिक सामंजस्यता एवं सम्बद्धता बनाएं रखना ।

(4) सामाजिक अलगाव तथा दूरी का समाप्त करना ।

(5) सांगठनिक सदस्यों में सत्यनिष्ठा एवं आत्मसम्मान की भावना को बनाएं रखना ।

(6) सामाजिक कार्यकलापों में सक्रियता बढाना ।

बर्नार्ड ने संगठन में औपचारिक के साथ अनौपचारिक पहलू पर बल देकर व्यवहारवाद के क्षेत्र में क्रान्ति बीज का रोपण किया है । अनौचारिक समूह पर उनके विचार सांगठनिक चिन्तन को समृद्ध बनाते है ।

6.2.2 सत्ता सिद्धान्त (The Theory of Authority)

बर्नार्ड सत्ता के सम्बन्ध में शास्त्रीय विचारकों से भिन्न दृष्टिकोण रखते है । इनके अनुसार "औपचारिक संगठन में सत्ता वह सम्प्रेषण (आदेश) है जो इसके प्रभाव के कारण सदस्य द्वारा स्वीकार किया जाता है । अर्थात् संगठन की दृष्टि से यह सदस्य के कार्यो को संचालित या निर्धारित करता है ।"

सत्ता (अधिकार) की इस परिभाषा में आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ दोनों पहलू मौजूद हैं । आत्मनिष्ठ पहलू सम्प्रेषण को एक सत्ता के रूप में स्वीकार करता है व दूसरा वस्तुनिष्ठ पहलू में सम्प्रेषण (आदेश) की प्रकृति शामिल है जिसके प्रभाव के कारण इसे स्वीकार किया जाता है? बर्नार्ड लिखते है कि यदि किसी व्यक्ति को दिया गया आदेश उसके द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो यह उसके ऊपर सत्ता का होना प्रमाणित करता है और वह व्यक्ति कार्य करने हेतु बाध्य होता है । किन्तु आदेश की अवहेलना करने का आशय उसके उपर स्थापित की गई सत्ता को अस्वीकारना है। अत: बर्नार्ड ने सत्ता के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकाला है कि "यह निर्णय करना कि कोई आदेश सत्ता रखता है या नहीं उन व्यक्तियों पर निर्भर है जिन्हें यह आदेश दिया जाता है, उन व्यक्तियों पर नहीं जो कि सत्ता में है अथवा जो यह आदेश जारी करते है ।"

यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि एक अधिकारी की सत्ता सदैव उसके अधीनस्थों द्वारा सत्ता के प्रति दी गई स्वीकृति या अनुमति पर निर्भर करती है ।

बर्नार्ड की सत्ता विचारधारा नीचे से उपर की ओर जाने वाली (Bottom-up) सत्ता है जो कि अधीनस्थों की स्वीकृति पर आधारित होती है । इस प्रकार सत्ता वास्तव में अधीनस्थों में निहित मानी गई है न कि अधिकारियों में । बर्नार्ड का यह सत्ता सम्बन्धी विचार निःसन्देह पारम्परिक सोच से विपरीत है । इससे अधीनस्थ कार्मिक स्वयं ही अपने लिए सत्ता की स्थापना करता है । बर्नार्ड के मत में सांगठनिक कर्मचारी सत्ता (अधिकार, आदेश) को उसी स्थिति में स्वीकृति प्रदान करते हैं । जब कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियाँ हो यथा -

(1) जब अधीनस्थ कार्मिक दिए गए आदेश को पूर्ण रूप से समझ पाता है । अत: आवश्यकता है कि संचार संप्रेषणनीय हो । इसके अभाव में जारी आदेशों की व्याख्या व कार्यान्वयन की समस्या सामने आती है ।

(2) जब वह यह समझता है. कि उसे दिया गया आदेश संगठन के उद्देश्यों कें प्रतिकूल नहीं है । विरोधी एवं प्रतिकूल उद्देश्यों वाले आदेशों की पालना नहीं हो पाती है ।

(3) जब वह यह समझता है कि यह आदेश उसके निजी हितों के अनुकूल है तथा उसके लिए किसी प्रकार से अहितकर नहीं है व्यक्तिगत हितों को हानि पहुंचाने वाले आदेशों के स्वीकार्य होना कठिन होता है । समय से पूर्व स्वैच्छिक सेवानिवृति चाहने हेतु प्राप्त होने वाले आवेदनों के पीछे यह भी एक महत्वपूर्ण कारण होता है ।

(4) जब वह मानसिक तथा शारीरिक रूप से उस आदेश का पालन करने में समर्थ होता है ।

उपर्युका कारकों पर विचारण से यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि कार्मिकों का सतत सहयोग किस तरह प्राप्त किया जाए । बर्नार्ड कहते है कि यह संभव है -

(1) जब किसी संगठन में कोई आदेश जारी हो तब उपर्युक्त चारों परिस्थितियों पर विचार कर लिया जाए ।

(2) जब आदेश जारी हा तो वह तटस्थ' हो ।

(3) सामूहिक प्रभाव का व्यापक दायरा हो जिससे आदेश के प्रति कार्मिकों की व्यक्तिगत उदासीनता प्राप्त की जा सकें ।

कार्य संचालन का सबसे अच्छा सिद्धान्त यही है कि वे आदेश जिनका अनुपालन असंभव हो उन्हें जारी ही नहीं किया जाए । आदेशों की स्वीकृति के सम्बन्ध में बर्नार्ड ने उदासीनता के क्षेत्र' के विचार का प्रतिपादन किया है । उसके अनुसार स्वीकृति योग्यता की दृष्टि से समस्त आदेशों की तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । कुछ आदेश ऐसे होते हे जो स्वीकृति योग्य नहीं होते अर्थात अधीनस्थों द्वारा उसका पालन नहीं किया जाता है । कुछ आदेश तटस्थता की पंक्ति पर होते है अर्थात् वे मुश्किल से ही स्वीकार या अस्वीकार किये जाते है । तीसरी श्रेणी में वे आदेश आते है जो अधीनस्थों द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिये जाते है । बर्नार्ड के अनुसार उदासीनता के क्षेत्र में ये तीसरे प्रकार के आदेश ही सम्मिलित किये जाते है । व्यक्ति कुछ आदेशों के प्रति सत्ता की दृष्टि से उदासीन होते है । वे यह जानने की परवाह नहीं करते हैं कि आदेश क्या है क्योंकि सामान्य रूप से व उनके परिणामों व प्रभावों का संगठन में आने के समय ही पूर्वानुमान कर लेते है । उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को, जो बैंकिंग सेवा क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है, यह पता है कि बैंकों में स्थानान्तरण होना एक सामान्य बात है तो वह स्थानान्तरण आदेश के प्रति ज्यादा चिन्तित नहीं रहेगा, वरन् उदासीन ही रहेगा चाहे उसका स्थानान्तरण कहीं भी कर दिया जाए । दूसरे शब्दों, में जिन आदेशों के प्रभावों से व्यक्ति परिचित होता है, उनके प्रति प्राय: उदासीन हो जाता है । ऐसे आदेश उसके उदासीनता के क्षेत्र' के अन्तर्गत आते है ।

प्रत्येक व्यक्ति का 'उदासीनता का क्षेत्र पृथक-पृथक होगा । इसकी व्यापकता अथवा संकीर्णता इस बात पर निर्भर करेगी कि उससे दायित्वों व त्यागों की तुलना में उसे मिलने वाले लाभों व प्रेरणाओं की सीमा क्या है जो संगठन के प्रति उसकी निष्ठा बढाती है ।

6.2.3 संगठन : सहकारी एवं समन्वयकारी व्यवस्था

प्रत्येक संगठन को अनेक सीमाओं, बाधाओं के क्षेत्र में कार्य करना होता है । सामान्यत: गत्यात्मक परिस्थितियों के कारण सांगठनिक जीवन में भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन होता है ऐसी स्थिति में संगठन में कुशलता व उद्देश्य प्राप्ति में निरन्तरता बनाए रखना अत्यन्त कठिन कार्य होता जाता है । बर्नार्ड इन बाधाओं के निवारण का प्रभावशाली तरीका लोगो की सहकारी-सामाजिक गतिविधि के रूप में बतलाते है । अत: सहकारी क्रिया के माध्यम से संगठन में सहयोगी वातावरण की रचनार्थ बर्नार्ड कुछ सिद्धान्तों का सृजन करते है ।

बर्नार्ड के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की चयन शक्ति सीमित होती है । इसी के साथ-साथ वह सम्पूर्ण स्थिति के घटकों का परिणाम भी होता है । उसके कुछ लक्ष्य होते है: वह कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है, अत: उसके लिए श्रेष्ठ विधि यही है कि सम्पूर्ण स्थिति में से वह किसी विशेष घटक अथवा घटकों का चुनाव करें और इन घटकों के द्वारा स्थिति को बदलने का प्रयास करें । उद्देश्य की दृष्टि से ये सीमित घटक होते है, अत: इन्हीं पर ध्यान देना आवश्यक होता है । किसी व्यक्ति के

लिए वातावरण में सबसे महत्वपूर्ण घटक उसकी अपनी जैविक सीमाएं (Biological limitations) होती है । इन सीमाओं को दूर करने का सबसे प्रभावशाली तरीका "सहयोग" का है जो किसी समूह या अवैयक्तिक उद्देश्य के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है । सहयोग सम्पूर्ण स्थिति का एक सामाजिक पहलू है और इस स्थिति से कई सामाजिक घटक उत्पन्न होते है । इन घटकों पर दो प्रमुख कारणों से ध्यान दिया जाना चाहिये - (अ) व्यक्तियों व समूह के मध्य अन्तर्कियाओं के कारण । (ब) अन्तर्कियाओं के फलस्वरूप सदस्यों के लक्ष्यों व इच्छाओं पर पडने वाले प्रभाव के कारण । सहकारी क्रिया की सफलता दो बातों पर निर्भर करती है - (अ) इसकी प्रभावशीलता व (ब) इसकी कुशलता । प्रभावशीलता का सम्बन्ध सहकारी लक्ष्य की प्राप्ति से होता है, जो कि सामाजिक व अवैयक्तिक होता है । कार्यकुशलता का सम्बन्ध व्यक्ति की निजी आकांक्षाओं की पूर्ति से होता है । सहकारी क्रिया का चलते रहना दो अन्तर्सम्बन्धित व अन्तआश्रित प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है - (अ) वे प्रक्रियाएं जिनका सम्बन्ध वातावरण के संदर्भ में सम्पूर्ण सहकारी प्रणाली से होता है, तथा (ब) वे प्रक्रियाएं जो व्यक्तियों में संतुष्टि के सृजन अथवा वितरण से सम्बन्धित होती है । सहकारी कार्य की असफलता इन दोनो अथवा इनमें से किसी एक प्रक्रिया में दोष उत्पन्न हो जाने के कारण होती है । अत: प्रबन्धक को इनका प्रभावशाली समायोजन करते रहना चाहिए । चेस्टर आई.बर्नार्ड यह सवाल उठाते हु ए हु ए कि कोई व्यक्ति किसी संगठन विशेष के सचालन में अपनी गतिविधियों का योगदान क्यों करें, बर्नार्ड आर्थिक मनुष्य की अवधारणा को जोरदार शब्दों में नकारते है और इसके लिए सहयोग-सन्तोष संतुलन अवधारणा का प्रतिपादन करते है । संगठन में गतिविधि के रूप में सहयोग तभी संभव है जब इससे लोगो को व्यक्गित रूप से संतुष्टि हासिल हो । बर्नार्ड कहते है कि यदि हर व्यक्ति वही हासिल करे जो कि उसने दिया है तो उससे उसको कोई प्रोत्साहन नहीं होगा । यह चीज उसे सहयोग के बदले में संतोष भी नहीं देगी। आदमी जो बदले में हासिल करता है उससे उसको हर हालत में संतोष का लाभ मिलना चाहिए।

यह पुनर्प्राप्ति हमेशा' योगदान से भिन्न होनी चाहिए । कोई व्यक्ति अपने योगदान के बदले में जो संतोष हासिल करता है उसे संगठन की दृष्टि से प्रलोभन या प्रोत्साहन के रूप में देखा जा सकता है।

बर्नार्ड ने इस दृष्टिकोण को अस्वीकार किया कि लोग मुख्यत: आर्थिक प्रोत्साहनों से प्रेरित होते है । इस दृष्टि से उन्होंने संतोष के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया है तथा इसके चार विशिष्ट प्रोत्साहनों का उल्लेख

1. भौतिक प्रोत्साहन, जैसे धन, चीजें और भौतिक स्थितियाँ ।
2. गैर भौतिक व्यक्तिगत प्रलोभन, जैसे - विशिष्टता, प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत सत्ता
3. काम की इच्छित भौतिक परिस्थितियाँ और
4. आदर्श लाभ, जैसे कारीगरी का गर्व, पर्याप्तता का बोध, परिवार तथा अन्य लोगों के प्रति स्वार्थहीन सेवाभाव, संगठन के प्रति जिम्मेदारी और देशभक्ति तथा सौंदर्य या धार्मिक भावनाओं, विश्वास और बदले के उद्देश्यों से हासिल होने वाला संतोष ।

   बर्नार्ड ने इसके अलावा चार तरह के सामान्य प्रोत्साहनों का भी उल्लेख किया है जो कि इस प्रकार है-

1. सहयोगियों की संगति पर आधारित संयुज्यता का आकर्षण ।
2. काम की परिस्थितियों को अपने स्वाभाविक तरीकों और दृष्टिकोणों में ढाल लेने का आकर्षण

3. घटनाओं के संदर्भ में व्यापक सहभागिता के बोध का अवसर और
4. लोगों के साथ संवाद के अवसर, सहभागिता के अवसर, व्यक्तिगत सुविधा पर आधारित सामाजिक संबंधों के अवसर और मित्रता तथा व्यक्तिगत नजरिये में परस्पर समर्थन का अवसर विशिष्ट प्रलोभनों के बीच संबंधों का जिक्र करते हुए बर्नार्ड कहते है कि जीवनयापन से परे आर्थिक पुरस्कार प्रभावहीन होते है । वह यह भी मानते है कि प्रलोभनों को यांत्रिक तरीके से लागू नहीं किया जा सकता । उनका अनुपात विशेष परिस्थितियों सम्बन्ध और व्यक्तियों पर निर्भर करता है । प्रलोभनों की व्यवस्था एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें व्यापक अनुभव और कल्पना दोनों की आवश्यकता पड़ती है ।

बर्नार्ड की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह संगठन को सहकारी रूपी गुणों से युक्त करके प्रबन्धकों का ध्यान समन्वयन की ओर आकृष्ट करते है । बर्नार्ड समन्वय पर अत्यधिक बल देते है। बर्नार्ड समन्वय को सांगठनिक व्यवहार के एक जीवंत गतिदायक के रूप में देखते है और मानते है कि यह संगठन में एक महत्वपूर्ण रूप देने वाली शक्ति है ।

बर्नार्ड समन्वय को संचार के समतुल्य मानते है । व्यवहार में समन्वय की स्थापना संचार की द्वारा ही संभव है । बर्नार्ड के अनुसार अधिकारों का निर्धारण व्यक्तियों के निजी स्तर पर होता है । किसी के पास तब तक अधिकार रहते है जब तक उसके पास पर्याप्त रूप से जानकारी रहती है । साथ ही अधिकार इस बात पर भी निर्भर करते है कि व्यक्तियों में सहयोग की मनोवृति के प्रति व्यक्तिगत रूप से नजरिया क्या है तथा संगठन की संचार व्यवस्था कृत। है? अगर किसी व्यवस्था में मतभेद पाए जाते है तो इसका कारण असमन्वित व्यवस्था से जुडे अकुशल आदेश होते है । ऐसे में संगठन में असमझ का विकास होता है । ऐसे संगठन प्रभावशाली समन्वयन बोध के चरित्र को अधिकार की वस्तुगत व्यवस्था के रूप में नियंत्रित कर सकते है।”

बर्नार्ड संगठन में समन्वय हेतु संचार पर बल देते है व इस सन्दर्भ में संचार के सात सिद्धान्त बतलाते है । यह प्रत्येक संगठन में वस्तुगत प्राधिकार की स्थापना एवं उसे बनाए रखने हेतु आवश्यक है ये है -

1. संचार का मार्ग निर्धारित होना चाहिए ।
2. संगठन के प्रत्येक व्यक्ति के पास संचार का एक निर्धारित औपचारिक मार्ग होना चाहिए।
3. संचार की रेखा को जितना संभव हो, प्रत्यक्ष व छोटा होना चाहिए ।
4. संचार केन्द्रों के रूप में कार्य कर रहे व्यक्तियों की योग्यता पर्याप्त होनी चाहिए ।
5. संचार की पूर्ण औपचारिक रेखा का सामान्यत: पालन होना चाहिए ।
6. संगठन में कार्य करते समय संचार की रेखा में बाधा नहीं आनी चाहिए ।
7. प्रत्येक संचार प्रमाणित होना चाहिए ।

6.2.4 प्रशासनिक कार्य तथा प्रशासकीय व्यवहार

संगठनों में सफलता एवं जीवन्तता की प्राप्ति हेतु सहकारी व्यवस्था के तहत समन्वय की स्थापना आवश्यक मानी गई है । इसकी प्राप्ति हेतु प्रशासकों (प्रबन्धन) को अनेक कार्य करने आवश्यक होते है इसी से संगठन की उत्पादकता सुनिश्चित रहती है । बर्नार्ड ने प्रशासकीय कार्य को तीन भागों में विभक्त किया हैं-

(अ) संगठन में सम्प्रेषण प्रणाली को बनाए रखना (The maintenance of organisation communication)

(ब) व्यक्तियों से आवश्यक सेवाएं प्राप्त करना (The securing of essential services from individuals) और

(स) सांगठनिक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को तय करना (The formulation of purpose and objective)

प्रबन्धक के ये कार्य संगठन के तत्वों के अनुरूप है तथा आपस में एक दूसरे से सम्बन्धित एवं आत्मनिर्भर होते है । प्रबन्धक का प्रथम महत्वपूर्ण कार्य संगठन में एक निश्चित सम्प्रेषण प्रणाली को विकसित करना एवं बनाये रखना है । इस सम्प्रेषण कार्य के तीन पहलू हैं -

(अ) प्रबन्धक को सम्प्रेषण प्रणाली हेतु सर्वप्रथम 'संगठन की योजना' बनानी होती है । इसके अन्तर्गत उसे विभिन्न संगठन पदों को परिभाषित करना होता है तथा संगठन चार्ट, कर्त्तव्यों में विशिष्टताएं, कार्य विभाजन व विभागों के विवरण तैयार करने होते है ।

(ब) द्वितीय, अधिशासी कर्मचारियों के सम्बन्ध में उनके चयन, अभिप्रेरणा, नियंत्रण, पदोन्नति पदोअवनति योग्यता निर्धारण, प्रोत्साहन, सत्ता वितरण आदि से सम्बन्धित कार्य होते है ।

(स) अन्त में अनौपचारिक संगठन को बनाये रखना होता है । सम्प्रेषण के संदर्भ में इसका विशेष महत्व होता है । इसके द्वारा विभिन्न तथ्यों, विचारों, मतों, सुझावों, शंकाओं, सम्मतियों का सरलता से विनिमय हो जाता है । इससे औपचारिक निर्णयों में कमी तथा 'अनावश्यक प्रभावों को कम किया जा सकता हैं । सम्प्रेषण प्रणाली के संचालन में इन तीनों पहलुओं का अत्यधिक महत्व है। अत: इन तीनों में एक उचित सामंजस्य रहना आवश्यक है ।

संगठन प्रबन्ध का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य व्यक्तियों से उनकी निजी सेवाएं प्राप्त करना है । इस हेतु प्रबन्धक को दो कार्य करने होते है (अ) व्यक्तियों एवं संगठन के मध्य एक सहकारी सम्बन्ध (Cooperative relationship) स्थापित करना होता है । प्रबन्धक नये संगठनों के लिए कर्मचारी प्राप्त करता है अथवा विद्यमान संगठनों के विकास हेतु योग्य व्यक्तियों को उपलब्ध कराता है । इस प्रकार यह कार्य व्यक्तियों को संगठन में भर्ती करने अथवा नवदीक्षित (Proselyting) करने का है। संगठन की प्रकृति के अनुसार इसकी विधि, क्षेत्र व प्रभाव भिन्न-भिन्न हो सकता है । (ब) कर्मचारियों को प्राप्त करने के पश्चात् उनसे आवश्यक मात्रा में एक वांछित किस्म की सेवाएं लेना महत्वपूर्ण होता है । उनके प्रयासों एवं प्रभावों को उत्पादक बनाना आवश्यक होता है । यही संगठन की वास्तविक सामग्री होती है । मनोबल की स्थापना, प्रेरणाओं, प्रोत्साहन, पर्यवेक्षण, निरीक्षण, मूल्यांकन शिक्षा व प्रशिक्षण के माध्यम से प्रबन्धक व्यक्ति को अधिकतम योगदान के लिए उत्पेरित कर सकता है ।

प्रबन्धक का तीसरा मुख्य कार्य संगठन के उद्देश्यों, लक्ष्यों व साध्यों को निर्धारित करना व परिभाषित करना होता है । चेस्टर बर्नार्ड का मत है कि संगठन के उद्देश्य को शब्दों में निर्मित करने के बजाय कार्यो व क्रियाओं (Aggregate of action) से भली-भांति स्पष्ट किया जा सकता है । उनके अनुसार उद्देश्य को विशिष्ट लक्ष्यों में विभाजित किया जाना चाहियें तथा इसे संगठन के प्रत्येक सदस्य द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिये । इस कार्य के उन्होंने दो महत्वपूर्ण पहलू बतायें - प्रथम, उत्तरदायित्व सौंपना अर्थात् वास्तविक सत्ता का समर्पण करना तथा द्वितीय, वास्तविक निर्णय लेकर

प्रणाली को गतिशील बनाना । उन्होने इस बात पर भी जोर. दिया कि उद्देश्य निर्धारण का कार्य समस्त संगठन में व्यापक रूप से फैला होना चाहियें ।

इस प्रकार प्रबन्धक इन तीनों कार्यो के सम्मिश्रण के आधार पर संघटक संपूर्णता (Organic Whole) उत्पन्न कर सकता है । वास्तव में, इन कार्यो के संयोजन से ही संगठन का निर्माण होता है । बर्नार्ड ने इस तथ्य पर भी जोर दिया कि इन कार्यो में आपसी समायोजन व अन्तर्क्रिया संगठन के वातावरण से प्रभावित होती है । इसी प्रकार प्रयास करने की इच्छा (Will to effort) भी प्रबन्ध कार्यो पर प्रभाव डालती है ।

6.3 तुलना मूल्यांकन एवं आलोचना

तुलना :

बर्नार्ड की विचारधारा पर अनेक विचारकों का प्रभाव रहा है । इनमें ऑलीवर शैल्डन, मेरी पार्कर फोलेट एल्टन मेयो, पारीतो कुर्त लेविन, मैक्स वेबर, एल्फैड नार्थ व्हाइटेड आदि प्रमुख है, वैज्ञानिक प्रबंधन, शास्त्रीय विचारधारा, हाथोर्न प्रयोग आदि के निष्कर्षो को भी बर्नार्ड ने अपनी अभिकल्पनाओं का विकास करते समय ध्यान रखा है ।

मेरी पार्कर फोलेट व बर्नार्ड विभिन्न युगों के मध्य 'सम्पर्क पुल' माने जाते है । फोलेट व बर्नार्ड दोनों का चिन्तन दार्शनिक था तथा सहयोग एवं समूह भावना पर आधारित था । दोनो का सम्बन्ध व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व से न होकर उसके सामूहिक व्यक्तित्व से था । दोनों ने सत्ता की पुरानी अवधारणा को नया रूप देने सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा संगठन की प्रभावशीलता व व्यक्तियों के कल्याण हेतु पेशेवर एवं नैतिक नेतृत्व के विकास पर बल दिया था । फिर भी उन दोनो के चिन्तन में कुछ बुनियादी भेद रहे है । फोलेट ने व्यक्ति के समूह दर्शन (Group view of man) तथा सरूप मनोविज्ञान (Gesttalt psychology) पर बल दिया जबकि वे वैज्ञानिक प्रबन्ध के युग में कार्य कर रही थी । किन्तु बर्नार्ड ने औपचारिक संगठन की भूमिका को महत्वपूर्ण माना ।

दूसरी ओर, बर्नार्ड के विचारों ने भी कई अन्य विचारकों को दृष्टि प्रदान कि है । हर्बर्ट साइमन उनके विचारों से बडी सीमा तक प्रभावित था । किन्तु टेलर, फेयोल तथा ओलिवर शेल्डन के विचार बर्नार्ड से भिन्न थे । टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं 'कार्य प्रबन्ध' कर बल दिया । उनका लक्ष्य उत्पादकता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि करना था । फेयोल तथा शैल्डन ने मुख्यत: प्रबन्धीय कार्यो, सिद्धान्तों एवं उत्तरदायित्वों का विवेचन किया था । किन्तु बर्नार्ड ने कार्य पर उपस्थित घटकों की प्रकृति, उनकी विशेषताओं तथा उन पर परस्पर प्रभावों का विश्लेषण किया था ।

चेस्टर बर्नार्ड तथा मैक्स वेबर यद्यपि इस बात पर सहमत है कि औपचारिक मार्ग, कुशलता, नियम तथा वैयक्तिक योग्यता सम्प्रेषण के आवश्यक पहलू है, किन्तु बर्नार्ड ने मैक्स वेबर की नौकरशाही व्यवस्था के विपरीत सम्प्रेषण में अनौपचारिक समूह तथा उनके द्वारा प्रसारित सूचनाओं पर भी उचित ध्यान दिया । वेबर ने अनौपचारिक सम्प्रेषण की प्रणाली को 'दुष्क्रिया' (Dysfunction) माना है ।

कैनेथ एन्ड्रज (Keneth Andrews) लिखते है कि "बर्नार्ड का प्रभाव अनेक अनुभाविक एवं ऐतिहासिक अध्ययनों, जो प्रबन्ध जिज्ञासुओं एवं पेशेवर प्रबन्धकों द्वारा किये गये है, तक विस्तृत

पाया जाता है ।" एल्विन टॉफलर (Alwin Toffler) ने भी संगठन के तत्वों पर बर्नार्ड का समर्थन करते हुए लिखा है कि 'संगठन मानव उद्देश्यों, अपेक्षाओं तथा दायित्वों से अधिक कुछ नहीं है ।"

मूल्यांकन

यथार्थ में संगठन विचारधारा के सम्बन्ध में चेस्टर बर्नार्ड का अतुलनीय योगदान रहा है । उनकी पुस्तक 'द फंक्शन ऑफ दी एक्जीक्यूटिव' प्रबन्ध के क्षेत्र में उत्कृष्ट कृति है । इसमें उन्होने 'व्यक्ति', संगठन व 'प्रबन्धक' के कार्यो का विशद् विश्लेषण किया है ।

बर्नार्ड की विचारधारा का विशिष्ट मूल्यांकन निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट है -

(1) आधुनिक प्रबन्ध अभिकल्पना का विकास - बर्नार्ड की विचारधारायें प्रबन्ध चिन्तन का महत्वपूर्ण अंग है । उनके विचार आज भी उतने ही उपयोगी है जितने 1930 के दशक में थे । उन्होने वैज्ञानिक प्रबन्ध व नौकरशाही व्यवस्था के स्थान पर अधिक मानवीय एवं व्यावहारिक विचारधारा का विकास किया है । विक्सवर्ग लिखते है कि "बर्नार्ड के विश्लेषण ने आधुनिक प्रबन्ध अभिकल्पना की आधारभूमि तैयार की है ।

(2) व्यावहारिक एवं व्यापक दृष्टिकोण - बर्नार्ड एक व्यावहारिक व्यक्ति, पेशेवर प्रबन्धक तथा समाजशास्त्र के विशेषज्ञ थे । संगठन के सम्बन्ध मे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने वाले प्रथम विचारक थे । बर्नार्ड अपनी पुस्तक 'द फंक्शन ऑफ एक्जीक्यूटिव में लिखते है कि "यह किसी वैज्ञानिक या विद्वान का कार्य नही हैं, बल्कि मामलों में रूचित रखने वाले एक विद्यार्थी का है । "पोलार्ड कहते हैं कि "यह एक 'अनुभव पुस्तक है क्योंकि यह बर्नार्ड के प्रबन्धक के रूप में स्वयं के अनुभव के विश्लेषण पर आधारित है ।" जार्ज आर. ब्राउन लिखते है कि "आधुनिक प्रबन्ध प्रवर्तक माने जाने वाला बर्नार्ड एक बडा विद्वान था जिसकी शिक्षा औपचारिक प्रशिक्षण से कहीं अधिक थी ।"

(3) प्रणाली विचारधारा - चेस्टर बर्नार्ड ने संगठन विचारधारा का विश्लेषण एक प्रणाली के रूप में किया है । उनके शब्दों में "प्रत्येक संगठन एक अन्य बडी प्रणाली जिसे सामूहिक प्रणाली कहा जाता है, का एक अंग है । दूसरी ओर, संगठन मनुष्यों की क्रियाओं से निर्मित उप-प्रणालियों में बंटा होता है ।" इस प्रकार बर्नार्ड का जोर प्रणाली विचारधारा पर था ।

(4) संगठन की सजीवता - उन्होने संगठन की जड व यांत्रिक विचारधारा को त्याग कर संगठन को एक सजीव प्रणाली के रूप में देखा है । वे लिखते है कि, "मै समूह-प्रणालियों को, जिन्हें हम संगठन कहते है, एक व्यक्ति की तरह 'सजीव' (Alive) सामाजिक जीव मानता हूँ । इस प्रकार उन्होने संगठन के परम्परागत 'चेतनाहीन विचार का खण्डन किया है । उन्होने औपचारिक संगठन के निर्माण एवं संचालन में मानव तत्व के महत्व को स्पष्ट किया है ।

(5) प्राधिकार सम्बन्धी नवीन दृष्टि - बर्नार्ड ने संगठन के उच्च स्तरों से नीचे की और प्रवाहित होने वाली सत्ता (Top down authority) के पारम्परिक एवं नौकरशाही विचार का भी खण्डन किया है । उनका मानना है कि सांगठनिक सत्ता अधीनस्थों से अधिकारियों की ओर प्रवाहित होती है । इस प्रकार बर्नार्ड सत्ता प्राधिकारद्ध सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते है जो 'पद' व 'स्थिति' पर आधारित नहीं होकर 'ज्ञान' व 'योग्यता' से सम्बन्धित है ।

आलोचना (Criticism)

बर्नार्ड के विचारों में ओजस्विता के दर्शन होते है । इनके विचारों ने सांगठनिक जगत में सकारात्मक परिवर्तन के युग को आरम्भ किया है तथापि ये आलोचना से नहीं बच पाए है । आलोचकों के अनुसार उनकी अधिकांश अवधारणायें फोलेट, शेल्डन तथा अन्य विचारकों के कथनों का समर्थन मात्र है । एमरी व ट्रिस्ट के अनुसार बर्नार्ड के विचार पारम्परिक बंद प्रणाली (Closed system) अवधारणाओं का ही प्रतिबिम्ब है । बर्नार्ड ने संरचनात्मक परिवर्तन की उपेक्षा की है तथा संगठन एवं वातावरण की अन्तरनिर्भरता को नहीं दर्शाया है ।

कुछ आलोचकों के अनुसार बर्नार्ड द्वारा प्रतिपादित सहकारी समाजिक प्रणाली को प्रत्येक अवस्था में लागू नहीं किया जा सकता । कुन्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, "बर्नार्ड का सहकारी सामाजिक प्रणाली दृष्टिकोण प्रबन्ध के क्षेत्र की अपेक्षा व्यापक है । साथ ही इसमें अनेक धारणाओं, सिद्धान्तों एवं तकनीकों की भी उपेक्षा की गई जो प्रबन्धकों के लिए उपयोगी है । फुलमर भी कून्ट्ज एवं डोनेल का समर्थन करते हुए लिखते है कि "इस व्यापक परिभाषा संगठन एक सहकारी प्रणालीद्ध के अन्तर्गत, एक आक्रामक भीड भी संगठन कही जा सकती है, यद्यपि हम सामान्यत: भीड की कार्यवाही को संगठित एवं नियंत्रित नहीं कह सकते ।"

बर्नार्ड की उदासीनता के क्षेत्र' की अवधारणा को भी आलोचक मौलिक नहीं मानते है । 'संगठन की सजीवता के विचार को भी अत्यन्त सामान्य बात एवं अमूर्त माना गया है । ड्रकर के अनुसार 'निगम को संगठन मानकर बर्नार्ड ने एक महत्वपूर्ण दर्शन सामने रखा है, किन्तु फिर भी बर्नार्ड ने निगम का राजनैतिक दृष्टि से विश्लेषण नहीं किया है । ' मेरी कुशिंग नाइल्स का यह मत है कि बर्नार्ड के विचार केवल पश्चिमी परिप्रेक्ष्य से ही जुडे हुए है । भारत जैसे देश में उन्हें प्रयुक्त नहीं किया जा सकता । वे लिखती है हैं कि न तो पश्चिमी न ही तकनीकें पूर्णरूप से भारतीय मंच को हस्तांतरित हो सकती है ।

बर्नार्ड की पुस्तक 'The Function of the Executive' प्रस्तावना में केनेथ एंड्रूज ने पुस्तक की स्पष्ट कमियों में 'प्रस्तुतिकरण की अमूर्तता' उदाहरणों की कमी तथा नीरस स्वभाव तथा शैली की कठिनाई की ओर ध्यान आकर्षित किया है । एण्ड्रूज, बर्नार्ड की अन्वेषण विधि तथा शीर्ष प्रबन्ध, लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया, अभिप्रेरण, व्यक्तियों का विकास, सत्ता, नेतृत्व आदि विषयों के संबंध में बर्नार्ड के विश्लेषण से भी संतुष्ट नहीं थे । लेकिन इन सबके पश्चात् भी बर्नार्ड का कार्य प्रबन्धन जगत में उल्लेखनीय योगदान हेतु अविस्मरणीय रहेगा ।

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि चेस्टर बर्नार्ड के सृजनात्मक विचारों के फलस्वरूप संगठन की एक नई विचारधारा का विकास हुआ है । उन्होने प्रबन्ध एवं संगठन के संबंध में एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाया था । प्रबन्ध में सामाजिक विज्ञान का उपयोग करने वालों में प्रथम वहीं थे । बर्नार्ड ने प्रणाली दृष्टिकोण पर बल दिया तथा मानवीय संबंधों की एक नई व्याख्या की । उन्होनें संगठन में औपचारिकतावाद को समाप्त किया तथा 'सजीवता की स्थापना की । इस इकाई को जानने एवं इस पर मन्थन करने की समझ प्रदान की है ।

6.5 शब्दावली

सहकारी	:	समान रूप से मिलजुल कर की जाने वाली क्रिया
सम्प्रेषण	:	सूचनाओं का समझयुक्त आदानप्रदान-
निष्पादन	:	कार्य पर अमल करने का ढंग
वैज्ञानिक प्रबंधन	:	फ्रेडरिक टेलर द्वारा विकसित अवधारणा जो संगठन का वैज्ञानिक विधियों से संचालन पर जोर देती है ।
उदासीनता का क्षेत्र	:	अधीनस्थों द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकृत आदेशों का क्षेत्र

6.6 अभ्यास प्रश्न

(1) अनौपचारिक संगठनों की प्रकृति तथा संगठन में भूमिका पर प्रकाश डालिए ।

(2) संगठन में आदेश स्वीकृत होने वाली आवश्यक परिस्थितियाँ बतलाइये ।

(3) 'उदासीनता के क्षेत्र' से चेस्टर बर्नार्ड का क्या अभिप्राय है?

(4) बर्नार्ड का सांगठनिक सहकारी व्यवस्था से क्या अभिप्राय है?

(5) बर्नार्ड प्रबन्धक के क्या-क्या कार्य बतलाते हैं?

(6) चेस्टर बर्नार्ड शास्त्रीय सिद्धांतवादियो से किस प्रकार भिन्न है?

(7) औपचारिक संगठन की विचारधारा क्या है?

(8) बर्नार्ड का सत्ता का सिद्धांत समझाइयें?

6.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. चेस्टर आई. बर्नार्ड, द फंक्शन ऑफ दी एक्जीक्यूटिव, हार्वर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, 1938
2. चेस्टर आई. बर्नार्ड, ओर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेंट, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1948
3. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण, प्रशासनिक चिन्तक, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1999 ।
4. आर .जे .एस. बेकर, एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरि एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लंदन, हटिंशन विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, 1972 ।
5. जी.एस. सुधा, प्रबन्धकीय चिंतन का इतिहास, आर .बी. एस. ए, पब्लिशर्स, जयपुर, 1998
6. हेनरी सी. मेटकाफ तथा लिंडाल उर्विक, डायनेमिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हार्पर एण्ड रो, 1940

इकाई - 07

मैरी पार्कर फौलेट

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 रचनात्मक विरोध
7.3 आदेश देना एवं स्थिति का नियम
7.4 शक्ति, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व
  7.4.1 शक्ति
  7.4.2 प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व
7.5 नेतृत्व, समन्वय तथा नियंत्रण सिद्धांत
  7.5.1 समन्वय का सिद्धांत
  7.5.2 नियंत्रण का सिद्धांत
7.6 मूल्यांकन एवं आलोचना
  7.6.1 आलोचना
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्न
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएंगे कि :

1. रचनात्मक विरोध एवं इनके समाधान का श्रेष्ठ मार्ग जान सके ।
2. आदेश देने के ढंग को समझ सके ।
3. फोलेट के प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व सम्बन्धी विचारों की विवचेना कर सके ।
4. फोलेट के नेतृत्व एवं समन्वय सम्बन्धी विचारों को आत्मसात करके इनकी व्याख्या कर सके ।

7.1 प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के प्रबन्ध लेखकों में मेरी पार्कर फोलेट का महत्वपूर्ण स्थल है । इनका जन्म सन् 1868 में अमेरिका के बोस्टन शहर में हुआ । इन्होने अपनी शिक्षा-दीक्षा थायर अकादमी (Thayer Academy),रेडक्लिफ (Radcliffe) कॉलेज, मेसेच्यूसेटट्स (U.S.A) तथा न्यूहाम (Newwham) कॉलेज, केम्ब्रिज में पूरी की आप उच्च शिक्षा के लिए पेरिस भी गई थी । आपने दर्शनशास्त्र, इतिहास, कानून व राजनीति शास्त्र आदि विषयों का अध्ययन किया था । 32 वर्ष की उम्र में इन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ किया और सर्वप्रथम एक वाद-विवाद संस्था की स्थापना की । इस संस्था की कुछ ही वर्षो

में अनेक शाखाए स्थापित हो गई । 1909 में ये आप 'Commitee on the extended use of school Buildings' नामक समूह की अध्यक्ष बनी । प्रारम्भ से ही इन्होंने सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यो में गहन रूचि का दर्शन शुरू कर दिया था । इन्होंने जीवन में कभी भी किसी व्यावसायिक उपक्रम का प्रबन्ध कार्य नहीं किया । फिर भी ये विभिन्न विषयों के गहन अध्ययन एवं यर्थाथपूर्ण विचारों के कारण एक कुशल परामर्शदात्री के रूप में प्रतिष्ठित हो गई ।

वे प्रारम्भ से ही यथार्थवादी,विनम्र एवं मित्रता व सहयोग की भावना से ओत-प्रोत थी । ये जीवन में अविवाहित रहीं तथा इनके कार्य करने की शैली आपसी समझ पर आधारित थी । अत: ये शीघ्र ही लोगों का विश्वास प्राप्त कर लिया करती थी । प्रबन्धीय क्षेत्र मे इन्होंने कई रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये । अपने कार्यो में पार्कर फोलेट का मुख्य संबंध मानवीय पहलू से रहा (Her concern was human character) व्यक्तियों तथा उनकी समस्याओं में उनकी वास्तविक रूचि थी, विशेषकर वे जो शोषित एवं पीडित थे । वे जीवन पर्यन्त 'मेलजोल' (Togetherness) तथा 'समूह चिन्तन' (Group Thinking) का उद्घोष करती रहीं ।

फोलेट ने आम प्रबंध या समाजशास्त्रियों की तरह राष्ट्र या समुदाय को अपने अध्ययन का विषय नहीं बनाया । इसके विपरीत उन्होने उद्योग जैसे विषय पर उत्तरोत्तर अपना ध्यान केन्द्रित किया । अपने इन अध्ययनों में उन्होनें संगठनों में मौजूद मानवीय संबंधों को तो सिद्धांतबद्ध किया ही, साथ ही इन सिद्धान्तों को व्यापारियों के बीच भी एक व्यापक स्वीकृति दिलायी जिससे मौजूदा समस्याओं का हल निकाला जा सकें । फोलेट ने बहुत प्रशंसनीय ढंग से आदर्श, तथ्य और सिद्धान्त के बीच समन्वय स्थापित किया । उन्होने अपनी संकल्पनाओं को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जोडा ।

1920 में इन्होंने कई क्रान्तिकारी विचार प्रकट किये थे । यह एक गहन आश्चर्य की बात है कि हार्थोर्न प्रयोगों (Hawthorne Experiments) से मेरी पार्कर फोलेट का कोई संबंध नहीं रहा था । किन्तु 1930 में जब इन प्रयोगों के निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये तो उनमें से अधिकांश निष्कर्ष मेरी पार्कर फोलेट द्वारा पहले से प्रतिपादित सिद्धान्तों के सदृश्य (similar) ही थे । इसके पीछे फोलेट की पैनी अवलोकन क्षमता विद्यमान थी । इनके द्वारा लिखित पुस्तकें एवं लेख अग्रलिखित है -

1. द स्पीकर ऑफ द हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव (1896)
2. द न्यू स्टेट्स (1918)
3. क्रिएटिव एक्सपिरियेंस (1924)
4. बिजनेस मैनेजमेंट एज ए प्रोफेश्न हेनरी सी मेटकॉफ द्वारा सम्पादित (1927)
5. डायनेमिक एडमिनिस्ट्रेशन : द क्लेक्टेड पेपर्स ऑफ मेरी पार्कर फोलेट, हेनरी सी मेटकॉफ तथा एल उर्विक द्वारा सम्पादित, (1949)

मेरी पार्कर फोलेट द्वारा प्रबन्ध को दिये गए योगदान का वर्णन अग्रलिखित ढंग से किया जा सकता है-

7.2 रचनात्मक विरोध (Constructive Conflict) :

विरोध एवं संघर्ष को सामान्यत: प्रत्येक देश काल में नकारात्मक माना जाता है । इन्हें विकास को रोकने वाला एवं सकारात्मक चिंतन के साथ रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाने में बाधा स्वरूप माना

जाता है । लेकिन मेरी पार्कर फोलेट ने सर्वप्रथम विरोध के सम्बन्ध में नव दृष्टि प्रदान की । उन्होने बतलाया कि विरोध न अच्छे होते है व न ही बुरे, वरन् अच्छे या बुरे परिणामों के लिए यह प्रबन्धकों को अवसर प्रदान करता है । यह विरोध संगठन में रचनात्मक भूमिका निभा सकता है । चूंकि सांगठनिक मतभेद पर सकारात्मक दृष्टिकोण नवीन एवं उत्तम विवाद रहित स्थितियों का जन्मदाता होता है । अत: यह इनके उपयोग पर निर्भर करता है । रचनात्मक मतभेदों को चाहे वे संगठन की किसी भी प्रक्रिया की गतिविधि में मौजूद हो मान्यता दी जानी चाहिए । वास्तव में सांगठनिक संघर्ष कोई युद्ध नहीं है, वरन् वैचारिक तथा हितों की भिन्नता का आभास है । यह मतभेदों का प्रकटीकरण मात्र है । यह विरोध अविर्यत: सदैव मालिक और मजदूर के मध्य ही नहीं होते बल्कि प्रबन्धकों एवं निदेशकों के बीच भी होते रहते है ।'

मतभेद परस्पर असहमतियों की अकारण-अनावश्यक अभिव्यक्ति नहीं है । यह एक सामान्य प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मतभेद अपने-आपसे संबंध सभी लोगों की ज्ञान-परिधि को व्यापक बनाने की दिशा में तत्पर होते है ।[2]

व्यक्तिगत मतवैभिन्नयों के कारण, मतभेद मानवीय संगठनों में अपरिहार्य है । इसलिए उन्हें बुरा कहकर उनकी उपेक्षा करने के बजाए उनसे लाभ उठाने की कोशिश की जानी चाहिए कुछ बेहतर बनाने के लिए उनका इस्तेमाल किया जाना चाहिए । सुश्री फोलेट की दृष्टि में मतभेद इच्छाओं की अंतःक्रिया के क्षणों की उपज है, और इन क्षणों में अगर विध्वंसात्मक के बीच छिपे है तो इनमें रचनात्मकता का अंश भी है । उन्हें रचनात्मक और विध्वंसक दोनो तरह से इस्तेमाल में लाया जा सकता है । जिस क्षण मतभेद गहराता लगे यह समझ लेना चाहिए कि यह उन्नति के बाधक क्षणों का पूर्वाभास है । ब्रह्माण्ड में अनुरूपता को रेखांकित करते हुए सुश्री फोलेट कहती है 'कभी तरह की चमक रगड़ के बाद ही आती है । हमें वायलिन से मधुर तान इसके तारों में रगड करने पर ही मिलती है । हमने जिस क्षण रगड़ से आग पैदा की उसी क्षण गंदी स्थिति को पीछे छोड़ दिया ।'

फोलेट के मत में संघर्ष का सृजनात्मक उपयोग किया जा सकता है जिस प्रकार एक इंजीनियर घर्षण का उपयोग कर लेता है । इसे संस्था व समूह के हित वृद्धि का माध्यम बनाया जा सकता है।

मेरी फोलेट ने संघर्ष के समाधान की निम्नलिखित तीन विधियाँ बताई थी -

(1) प्रभुत्व (Domination) :

प्रभुत्व का आशय एक पक्षकार द्वारा दूसरे पर विजय प्राप्त करना है । फोलेट ने संघर्ष के समाधान के लिए इस विधि का समर्थन नहीं किया था क्योंकि प्रभुत्व में दबाव, बल प्रयोग एवं दूसरों के हितों पर चोट करते हुए अपने स्वार्थो की पूर्ति की जाती है । इसमें पराजित पक्ष सदैव अपने अवसर की प्रतीक्षा करता है । प्रभुत्व से संघर्ष का समाधान नहीं हो पाता, वरन् वह दब जाता है ।

(2) समझौता (compromise) :

इस विधि में दोनो पक्ष अपनी मांगों के कुछ अंश का परित्याग करते हुए किसी मध्यबिन्दु पर अनिच्छापूर्वक सहमत हो जाते है । यह विधि प्रभुत्व से अच्छी है, किन्तु इसमें भी दोनो पक्ष की मांगे पूरी नहीं होती है तथा मांग का अतृप्त एव त्यागा हुआ अंश नये संघर्ष का बीज बन जाता है । वास्तव में, कोई भी पक्ष समझौता करना पसन्द नहीं करता है क्योंकि इसमे इसे कुछ मांगों का त्याग करना होता है ।

(3) एकीकरण (Intergration) :

फोलेट के मतानुसार एकीकरण संघर्ष समाधान की सर्वोत्तम विधि है । एकीकरण का आशय किसी ऐसे नये समाधान अथवा विकल्प की खोज करना है । जिससे दोनो पक्षों की वास्तविक मांगे पूरी हो सकें । एकीकरण किसी नये व्यवहार के द्वारा दोनो पक्षों को पूर्ण संतुष्टि प्रदान करना है । यह संघर्ष को सदैव के लिए समाप्त कर देता है । फोलेट ने एकीकरण के निम्न चरण बताये है -

(1) सर्वप्रथम दोनो पक्षों को अपनी मांगे तथा उनसे संबंधित सभी बाते स्पष्ट करके अपनी वास्तविक मांग को पहचानना चाहियें । इस प्रकार उन्हें अपने विरोध को पूर्णत: स्पष्ट कर देना चाहिए । (To bring the whole thing into the open)

(2) द्वितीय चरण में संघर्ष को उप-खण्डों में विभक्त करके मांग के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विश्लेषण किया जाना चाहिये । ऐसी मांगों को जो वास्तविक है तथा जिनकी पूर्ति विशेष रूप से की जानी चाहियें, उन मांगों से पृथक कर ली जानी चाहिये जो इच्छाओं का संकेत मात्र (Mere symbolic desires) है तथा अन्य तरीकों से पूरी की जा सकती है ।

(3) तीसरे चरण में दोनो पक्षों के प्रत्युत्तर एवं प्रतिक्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न प्रभावो का समझना चाहिये । प्रत्येक पक्ष को दूसरे पक्ष की अनुक्रियाओं एवं उत्तरों को समझने की तैयारी रखनी चाहिए । चक्रीय व्यवहार' (Circular Behaviour) के द्वारा उन्हें एक दूसरे की संवदेनशीलता व भावना पर विचार करना चाहियें । यह धारणा बतलाती है कि "मैं आपसे अकेले नहीं लड़ सकता हूँ वरन् मुझे 'आप तथा मैं' (You plus me) के साथ लड़ना चाहिये । मैं केवल 'आपसे' नहीं. वरन् 'आप और मैं' के सम्बन्ध से प्रभावित हूँ ।

उपर्युक्त चरणों के द्वारा दोनों पक्ष किसी नये व्यवहार, नये विकल्प अथवा नये ढंग को खोज लेते है जो दोनो की मांगों में एकीकरण एवं एकता उत्पन्न करके मूल संघर्ष को सदैव के लिए समाप्त कर देता है । फोलेट इस विधि को श्रेष्ठ मानती है, यद्यपि यह सरल नहीं है । इसके लिए उच्च स्तर की समझदारी, तीक्ष्ण अवबोध, विवेक एवं कुशल कल्पना शक्ति (Inventiveness) की आवश्यकता होती है । किन्तु व्यवहार में प्रबन्धकों में प्रभूत्व की भावना प्रबल होती है । वे वास्तविक समाधान खोजने की अपेक्षा सिद्धान्त निर्मित करने (Theorizing) में रूचि लेते है तथा पूर्व धारणाओं से ग्रसित होते है । एकीकरण के द्वारा संघर्ष का रचनात्मक उपयोग करते हुए श्रेष्ठ एवं नयी स्थिति विकसित की जा सकती है । फोलेट के अनुसार "चूंकि संघर्ष सदैव हमारे मध्य रहेगा, श्रेष्ठ बात यह है कि हम इसका रचनात्मक उपयोग करना सीखें ।

एकीकरण के लिए उच्च बोद्धिकता कुशाग्र बोध, भेदी दृष्टि और प्रभावशाली खोजी प्रवृति की जरूरत होती है । काम करने का कोई बेहतर रास्ता सुझाने के बजाय झगडा करना हमेशा आसान होता है । जब तक उच्च बौकिता और खोजी प्रवृति नहीं होगी तब तक एकीकरण के द्वारा मतभेदों को दूर करना बहुत कठिन होगा । इसकी राह में एक और बाधा है और वह है लोगो पर वर्चस्व से आनन्दित लेने का: स्वभाव । कई लोगों के लिए एकीकरण एक नीरस मामला है । यह उन्हें न तो विजय की संतुष्टि देता है और न ही सघंर्ष का रोमांच । फोलेट का विचार है कि ऐसे स्वभाव वाले लोग एकीकरण के बजाय वर्चस्व को ही प्राथमिकता देते है । एकीकरण में एक तीसरी बाधा यह है कि बहुधा समस्याओं को सिद्धान्त बना दिया जाता है । बजाय इसके कि उन्हें प्रस्तावित गतिविधियों अथवा व्यावहारिक मुद्दों

की तरह लिया जाए जिनके हल तुरंत प्राप्त किए जा सके, लोग अक्सर यह भूल जाते है कि मौजूद समस्याओं को अगर सिद्धान्त न बनाया जाए तो ये आसानी से दूर हो सकती है । फोलेट जोर देकर कहती है कि सिर्फ बोद्धिक अनुबंध से न तो समस्याएं हल हो सकती है और न ही एकीकरण की स्थिति उत्पन्न हो सकती है । एकीकरण के रास्ते में चौथी बाधा है भाषा । फोलेट का मानना है कि उपयोग में लाई जाने वाली भाषा मतभेद बढाने वाली नहीं बल्कि सामंजस्यपरक होनी चाहिए । आमतौर पर कई बार ऐसा होता है कि प्रयोग की जाने वाली भाषा के कारण मतभेद समाप्त होने के बजाय और बढ जाते है तथा उसके चलते कई ऐसे मतभेद भी पैदा हो जाते है जो पहले अस्तित्व में नही थे । एकीकरण की राह में पांचवी बाधा है नेताओं द्वारा पैदा किए गये अनावश्यक प्रभाव । इन सभी बाधाओं में से निस्संदेह एकीकरण के लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बाधा है प्रशिक्षण का अभाव ।

फोलेट कहती है कि प्रशिक्षण के अभाव के चलते ज्यादातर लोगो में पूर्व कल्पित योजनाओं को ताकत के बल पर अथवा धक्का देकर जबरन लागू करने की प्रवृति होती है । इसीलिए वह एकीकरण की कला में माहिर होने के लिए प्रबंधकों और कर्मचारियों दोनों के लिए ही सहयोग की कला के अध्ययन का सुझाव रखती है ।

7.3 आदेश देने एवं स्थिति का नियम

टेलर, फेयॉल, गुलिक उर्विक तथा अन्य क्लासिकीय चिंतकों की तरह फोलेट ने भी संगठन में आदेश देने की आवश्यकता को समझा । फोलेट आदेश देने के सिद्धान्त को व्यापक स्तर पर परखती है और भिन्न तरह से आदेश देने के तरीकों को रेखांकित करती है । उनके मुताबिक आदेश देने के चार महत्वपूर्ण चरण है -

1. सचेतन दृष्टिकोण - जो ऐसे सिद्धान्तों को व्यवहार में परखता है जिनके जरिये किसी भी मुद्दे पर कार्यवाही संभव हो ।
2. उत्तरदायी दृष्टिकोण - जो यह तय करता है क हमें किस सिद्धान्त पर अमल करना चाहिए ।
3. प्रायोगिक दृष्टिकोण - जो परिणामों पर नजर रखें और प्रयोगों की चेष्टा करें ।
4. परिणामों को एकत्र करना ।

फोलेट ने 1925 में अपने एक पेपर 'द गिविंग ऑफ आर्डरस' में प्रबन्धकों द्वारा दिए जाने वाले आदेशों के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का विश्लेषण किया था । इसके माध्यम से फोलेट ने क्रिस आर्गीरिस के इस विचार कि "एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दिया गया आदेश उस दूसरे व्यक्ति को अप्रतिष्ठित कर देता है" की घोषणा बहुत पहले ही कर दी थी । फोलेट ने आदेश देने संबंधी अग्रलिखित मनोवैज्ञानिक पहलुओं को स्पष्ट किया है-

1. आदेश देने मात्र से संतोषजनक परिणाम प्राप्त होना आवश्यक नहीं है ।
2. किसी आदेश के प्रति बौद्धिक सहमति प्रकट कर देना भी स्वयं में अच्छे निष्पादन की गारंटी नहीं है ।
3. कोई कार्यवाही आदेश की अपेक्षा व्यक्ति के पूर्व अनुभवों के आधार पर निर्मित उसके स्वभाव-प्रारूपों (Habit Patterns) पर अधिक निर्भर करती है ।
4. प्रबन्धकों को अपने कर्मचारियों में आदत-प्रारूपों एवं मानसिक अभिवृतियों का निर्माण करना चाहिये।

5. ये प्रारूप एव अभिवृतियॉ प्रशिक्षण द्वारा विकसित की जा सकती है ।
6. प्रबन्धकों को अपने कार्यो की सम्भावित प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान करते हु ये उनके लिए पूर्व-तैयारी कर लेनी चाहिये ।
7. व्यक्ति अपने भीतर संघर्ष अनुभव कर सकते है ।
8. आदेशों के फलस्वरूप संघर्षो. की उत्पत्ति नहीं, वरन् उनका समाधान होना चाहिये ।

मेरी फोलेट ने आदेश प्रदान करने के कारण उत्पन्न होने वाली कुछ विशिष्ट समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है । वे निम्नलिखित है -

कई व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ स्वेच्छा से कार्य करना (work with) चाहेंगे, किन्तु आपने उपर व्यक्तियों के होने (People being over them) की भावना को वे प्रगाढता से नापसन्द करेंगे। कई कर्मचारी, जिन्हें अपने कार्य का पूर्ण शान एवं गर्व होता है, दूसरे व्यक्तियों से विस्तृत निर्देश पाने पर रोष अनुभव करते है । जब आदेश, विशिष्ट रूप से विस्तृत आदेश प्रदान किये जाते है तो आदेश ग्रहण करने वाले व्यक्ति से ये दायित्व को हटा देते है । उस व्यक्ति को यह कहने का बहाना मिल जाता है कि ' मैने तो वैसा ही किया है, जैसा कहा गया था ।" आदेश प्राय: आज्ञाकारिता एवं स्वतन्त्रता में संघर्ष उत्पन्न करते है । एक आदेश में जो कि स्थिति के नियम का प्रत्युत्तर होता है, विकसित हो रही तथा इसकी उत्पत्ति में प्रबन्ध पर भी विचार किया जाना चाहिये । फोलेट का मत था कि प्रबन्धकों द्वारा आदेश प्रदान करने के पूर्व उन्हें आदेश के मनोवैज्ञानिक परिणामों का मूल्यांकन कर लेना चाहियें ताकि कर्मचारियों की कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव न पडे ।

स्थिति का नियम - फोलेट ने ही सर्वप्रथम 'स्थिति' (the situation) के तत्व का संगठनों के लिए उपयोगी ढंग से विश्लेषण किया था । उन्होने इस नियम का प्रयोग संगठनों में आदेश देने के सम्बन्ध में किया था । अक्सर संगठनों में आदेश जारी करने व उन्हें स्वीकार करने के सम्बन्ध में कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती है । कर्मचारियों द्वारा आदेशों का विरोध व अवहेलना करने के अतिरिक्त, कई बार अधिकारी भी आदेश सत्ता के गर्व से अपने कर्मचारियों को अपमानित करते है तथा उनमें हीन भावना का संचार करते है । अत: फोलेट के अनुसार दोनो छोरो से बचना चाहिए, यानि आदेश देने में अत्यधिक बॉसवाद या आदेश ही न देना फॉलेट के अनुसार इस समस्या का जवाब आदेश देने का निवर्यक्तिकरण (depersonalization) करने में निहित है । उनके शब्दों में "मेरा समाधान आदेश देने की वैयक्तिकता खत्म करना सभी संबंधित लोगों को परिस्थिति के अध्यन में एकजुट करना, स्थिति के नियम की तलाश करना और उसका पालन करना है ।" इस तरह कोई किसी को आदेश नहीं देता दोनो ही स्थिति के आदेशों को स्वीकारते है । इसलिए आदेश कार्यवाहियों से आने चाहिए न कि कार्यवाहियॉ आदेशों से आनी चाहिए । यह 'आदेशों का निर्व्यक्तिकरण या स्थिति के प्राधिकार को लागू करना है ।

हालांकि फॉलेट का आदेशों का निर्व्यक्तिकरण क्लासिकीय विचारकों के यांत्रिक रूख से अलग नहीं है, मगर प्रशासन के मानवीय आयाम पर जोर देकर वह उनसे अलग हो जाती है । इस विरोधाभास के निवारण के लिए फॉलेट ने पुन: व्यक्तिकरण (repersonalization) की बात की ।

7.4. शक्ति, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व

7.4.1 शक्ति (power)

लोक प्रशासन के अध्ययन एवं व्यवहार दोनो में शक्ति, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व का अत्यधिक महत्व है । फोलेट भी इन पर विशेष ध्यान देती है । शक्ति के अपने विश्लेषण में वह मौलिक अन्तदृष्टि प्रतिपादित करती है । वह शक्ति को "कार्यो को संभव बनाने, कारणात्मक प्रेरक होने तथा बदलाव करने की क्षमता रखने वाली शक्ति के रूप में परिभाषित करती है । यह एक सामान्य तथ्य है कि सभी व्यक्ति शक्ति चाहते है किन्तु वास्तविक प्रश्न यह है कि जिनके पास शक्ति है वे उसका प्रयोग किस भांति करते है? फोलेट शक्ति प्रयोग के दो ढंग बतलाती है -

(अ) किसी के उपर शक्ति का प्रयोग (Power over) - कोसी के उपर शक्ति का प्रयोग करने का अर्थ है, उस व्यक्ति पर अपनी इच्छा थोपना, किन्तु इससे आपस में विद्‌वेष एवं प्रतिक्रिया जन्म लेती है। कर्मचारियों में मनोमालिन्य एवं आक्रोश बढता है । इससे अधिकारियों में और शक्ति पा लेने की भूख बढती है । यह शक्ति वैयक्तिक (independent) होती है तथा प्रबन्धक इसे केवल अपने हित के लिए प्रयोग करना चाहते है । फोलेट ने इस प्रकार की शक्ति को कपटपूर्ण एवं अमानवीय (dehumanizing) बताते हुए इसे कम करने के लिए सुझाव दिया था । उनके अनुसार उपर सत्ता को एकीकरण के प्रयोग (Use of Integration), चक्रीय व्यवहार (Circular behviour) तथा 'स्थिति के नियम' (Low of situation) का प्रयोग करते हुए कम किया जा सकता है ।

(ब) किसी के साथ शक्ति का प्रयोग (Power with) - इसका आशय संयुक्त शक्ति' (Joint power) से है । जब दो व्यक्ति अथवा समूह दोनों के लिए संतृप्तकारी समाधान पर पहुंचने के लिए अपनी शक्ति का एकीकरण (Pool their power) करते है तो संयुक्त शक्ति का जन्म होता है । वास्तव में, 'किसी के साथ शक्ति के प्रयोग का अर्थ हितों व शक्ति के सामंजस्य एवं सहभागिता से है । यह शक्ति उत्पीडन अथवा मात्र सहमति के स्थान पर 'सह क्रिया' (Co action) को प्रोत्साहित करती है । प्रबन्धकों को अपने कर्मचारियों में 'सह शक्ति' (Power with) की भावना उत्पन्न करनी चाहिये । उनमें किसी के अधीन या नियंत्रण में कार्य करने की भावना उत्पन्न नहीं होने देनी चाहिए । मेरी फोलेट का मत था कि निरंकुशवाद सत्ता 'अ-सहयोग पर आधारित होती है, जो कि संगठन के लिए आत्मघाती होती है । प्रबन्धको इसका परित्याग कर देना चाहिए ।

फोलेट के शक्ति के सम्बन्ध में कुछ अन्य विचार निम्नलिखित है -

(1) वास्तविक सत्ता का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता है ।

(2) उत्तरदायित्व के बिना शक्ति नहीं दी जानी चाहिए ।

(3) श्रमिकों को दी जाने वाली सत्ता के सम्बन्ध में वास्तविक प्रश्न यह है कि वे कितनी सत्ता को धारण (To assume) कर सकते है ।

(4) प्रबन्धकों का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वे अपने श्रमिकों को शक्ति के लिए अपनी क्षमता को विकसित करने का अवसर प्रदान करें ।

(5) शक्ति एवं अधिकार एक बात नहीं है ।

(6) शक्ति तभी वास्तविक एवं महत्वपूर्ण होती है जब यह 'स्थिति' से उत्पन्न होती है तथा स्थिति' का अंग होती है ।

7.4.2 प्राधिकार (अधिकार) एवं उत्तरदायित्व (Authority and Responsiblity)

फोलेट ने प्राधिकार को निहित सत्ता के रूप में परिभाषित किया है । यह शक्ति को विकसित तथा इस्तेमाल करने का अधिकार है । शक्ति की तरह यहाँ भी फोलेट क्लासिकीय प्रशासकीय चिंतन से आगे जाती है तथा प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व की अवधारणा का विकास करती है ।

फोलेट ने अधिकार एवं उत्तरदायित्व सम्बन्धी कई अव्यावहारिक धारणाओं पर भी चोट की है । फोलेट का यह मत था कि संगठन के सम्पूर्ण अधिकार व शक्ति उच्चतम अधिकारी को सौंप देना उचित नहीं है । उन्होने बताया कि प्रबन्ध में 'अन्तिम सत्ता' (Ultimate authority) व 'सर्वोच्च नियंत्रण' (Supreme control) जैसे शब्दों का प्रयोग अत्यन्त भ्रामक है । अन्तिम अधिकार मात्र एक भ्रम है (The final authority is only an illusion) 'अन्तिम अधिकार' की अवधारणा वर्तमान व्यावसायिक संगठनों में अपना महत्व खो रही है । समस्त शक्तियों का संगठन के शीर्ष पर केन्द्रीयकरण कर देना अत्यन्त अव्यावहारिक एवं निराधार धारणा है ।

उनका मत था कि किसी व्यक्ति को अधीनस्थ मानकर उस पर अधिकार रखना व्यक्ति की भावनाओं के प्रति अपराध एवं अपमान है और यह स्थिति कभी भी सुदृढ औद्योगिक संगठनों की नींव नहीं बन सकती हैं । उन्होने सुझाव दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति को 'कार्य-सत्ता' (Authority of function) दी जानी चाहिये । अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जिसे जो कार्य सौंपा जाए वह उस कार्य के लिए अंतिम रूप से उत्तरदायी होना चाहिये । उसे अपने कार्य के क्षेत्र (job area) के बारे में उसे अधिकार मिला होना चाहिए । उन्होने लिखा है कि - "अधिकार कार्य से सम्बन्धित है तथा कार्य के साथ ही रहते है (Authority belongs to the job and stays with the job) ।

फोलेट की यह मान्यता थी कि संगठन में प्रत्येक व्यक्ति की सत्ता 'प्रत्यायोजित सत्ता' (delegated authority) न होकर कार्य से जुडी सत्ता होनी चाहिए तथा वह स्वयं ही उसके लिए अंतिम रूप से जिम्मेदार होना चाहिये । वे लिखती है कि, प्रत्यायोजित सत्ता का आशय तो यह होगा कि आपका मुख्य अधिकारी उस सम्पूर्ण सत्ता पर 'अधिकार' रखता है, यद्यपि वह इसके कुछ भाग का प्रत्यायोजन करना लाभप्रद मानता है । मै नहीं मानती कि एक अध्यक्ष को उसके कार्य से अधिक सत्ता रखनी चाहिए ।" दूसरे शब्दों में फोलेट के अनुसार सत्ता हा प्रत्यायोजन किया जाना भी ठीक अर्थ में सम्भव नहीं है । क्योंकि जो व्यक्ति आपके स्थान पर कार्य कर रहा उसे उस कार्य के भाग विशेष के संबंध में सत्ता प्राप्त होगी । सारांश में, "सत्ता वास्तव में किसी की किसी को प्रदान नही की जा सकती वरन् यह वह शक्ति है जो कार्य में अन्तर्निष्ठ होती है ।

उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में उनका विचार था कि वैयक्तिक स्तर पर कर्मचारी कार्य के प्रतिदायी होना चाहियें, किसी व्यक्ति के प्रति नहीं (A person must be responsible for work not to someone) विभागीय स्तर पर कार्य करने के उत्तरदायित्व में वे सभी संयुक्त रूप से सहभागी होंगे जिन्होने अपना योगदान दिया है, प्रबन्धक विभिन्न वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्तरदायित्वों में केवल समन्वय स्थापित करने वाला होगा ।

प्राधिकार की तरह उत्तरदायित्व भी संगठन में कार्य और स्थिति का गुण है । फोलेट ने कहा कि सवाल यह है कि कोई "किस कार्य के लिए जिम्मेदार है" न कि "किसके लिए जिम्मेदार है' इस प्रकार उन्होने कार्यात्मक उत्तरदायित्व या बहुलतावादी उत्तरदायित्व या संचित उत्तरदायित्व को उचित बतलाया व अन्तिम उत्तरदायित्व को खारिज किया । सामान्यत: बहुलतावादी उत्तरदायित्व के दो अर्थ है - पहला, नीति निर्धारण में अधीनस्थ स्तरीय कार्यकारियों की भागीदारी और दूसरा प्रबंधन में कर्मचारियों की भागीदारी ।

7.5 नेतृत्व, समन्वय तथा नियंत्रण सिद्धान्त

फोलेट नेतृत्व की प्रक्रिया पर भी यथेष्ट ध्यान देती है और उस पर विस्तार से चर्चा करती है । वह मानती थी कि नेतृत्व के पुराने तरीके बदल रहे है क्योंकि मानव संबंधों की अवधारणाएं बदल रही हैं । साथ ही, प्रबंध विकास की अवधारणायें भी बदल रहीं है । उनके अनुसार नेता वह नहीं होता है जो संस्थान का अध्यक्ष हो या किसी विभाग का प्रमुख हो बल्कि नेता तो वह होता है जो "परिस्थिति को समग्रता में देख सकता हो, इसमें संबंधित सुनिश्चित नीतियों और उद्देश्यों को देख सकता हो, इससे संबंधित अग्रिम परिस्थितियों को देख सकता हो और इस बात को भली-भांति समझ सकता हो कि एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति तक कैसे पहुंचा जा सकता है ।" वह आगे कहती है, "नेता वह है जो अपने समूह में उत्साह भरना जानता हो जो पहल को प्रोत्साहित करता हो और संगठन के प्रत्येक सदस्य की अधिकतम क्षमता का सही जगह पर प्रयोग करना जानता हो । सुश्री फोलेट कहती है कि "यही वह व्यक्ति है जो साबित कर सकता है कि आदेश परिस्थिति का अभिन्न अंग है ।" नेतृत्व उसी के हिस्से में जाता है जिसके पास इसके लिए आवश्यक अनुभव हो और जैसा कि कहा जाता है - "जो मामले को समग्रता में देखने की क्षमता रखता हो" साथ ही, "उसके लिए सारे अन्तर्सबंध बिल्कुल स्पष्ट होने चाहिए । नेता प्रभावी एकता और सौहार्द की अभिव्यक्ति है, जो उसी के चलते बनती है अर्थात् वह प्रभावी एकता और सौहार्द की अभिव्यक्ति को मूर्त रूप लेने मे मदद पहुंचाता है साथ ही वह इसमें मौजूदा चिंता बना देता है । फोलेट का विचार है कि जरूरी नहीं है कि ऐसे लोग संगठन के शीर्ष पर ही हो । हकीकत तो यह है कि ऐसे लोग संगठन में हर स्तर पर मौजूद रहते है । संयोजन, लक्ष्य निर्धारण और भविष्यवाणी करना-फोलेट इन तीन (गुणों) को नेतृत्व के अनिवार्य हिस्से मानती है । वह मानती है कि नेता का प्रमुख काम है अपने समूह के अनुभवों को इकट्ठा कर उन्हें सत्ता में बदल देना । फोलेट को ऐसा कतई नहीं लगता कि नेता सिर्फ जन्मजात ही होते है । उनका विचार है कि इन्हें संगठन और प्रबन्ध की शिक्षा तथा प्रशिक्षण के जरिये तैयार किया जा सकता है ।

फोलेट की दृष्टि में नेतृत्व तीन प्रकार के होते है

1. पद पर आधारित नेतृत्व ।
2. व्यक्तित्व से उदभूत होने वाला नेतृत्व और गुण के बल पर नेतृत्व ।
3. प्रकार्य से उत्पन्न नेतृत्व अधिक महत्त्वपूर्ण ।

पहले तरह के नेतृत्व में नेता के पास औपचारिक अधिकार होता है जबकि दूसरे तरह के नेतृत्व में ऐसे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के बल पर नेतृत्व हासिल कर लेते है जिनमें आवश्यक गुण मौजूद होते है । इस तरह का नेतृत्व उस स्थिति में और अधिक प्रभावी हो जाता है जब नेतृत्वशील व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के पास उसका औपचारिक अधिकार भी मौजूद हो । लेकिन मौजूदा दौर में ये दोनो तरह

के लोग नेतृत्व नहीं करते अपितु ऐसे लोग नेतृत्व करते है जिनके पास इसकी विशेषज्ञता हो, क्योंकि दूसरे उनकी राय से, उनकी बौद्धिक समझ से प्रभावित होते है । कोई व्यक्ति एकाएक या अनायास नेतृत्व उस समय हासिल कर लेता है जब किसी परिस्थिति विशेष का विशिष्ट ज्ञान तो उसे होता ही है, साथ ही दूसरे मामलों में भी वह अन्य लोगों के बराबर हो जात है । इसी क्रम में परिस्थितियों के जानकारी व्यक्ति के नेतृत्व उस क्षण मिलता है जब वह उसके नेतृत्व को बारीकी से समझता है और साथ ही उस परिस्थिति के परे भी देख सकता है । विशेषज्ञ लोग ऐसे लोगों को भी आदेश दे सकते है जो पद में उनसे बड़े होते है । उदाहरणार्थ, फोलेट कहती है कि प्रेषण बाबू अधीक्षक को तथा भंडारण बाबू उस व्यक्ति को जो खरीद करता हो आदेश दे सकता है । हालांकि व्यक्तितत्व नेतृत्व हासिल करने में अहम भूमिका निभाता है, फोलेट मानती है कि प्रकार्य विशेषज्ञता के चलते प्राप्त नेतृत्व अधिक महत्वपूर्ण होता है ।

संक्षेप में फोलेट नेतृत्व के सम्बन्ध में अग्रलिखित आवश्यक तत्वों का उल्लेख करती हैं -

1. नेता को अपने कार्य का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए ।
2. नेता में सम्पूर्ण स्थिति को समझने की योग्यता होनी चाहिए ।
3. नेता शक्ति को उत्पन्न करते है तथा उसे प्रवाहित करते है । नेतृत्व का सार नियंत्रण का सृजन करना है (The essence of leadership is to create control)
4. नेता को न केवल वर्तमान स्थिति वरन् विकसित होने वाली स्थिति (Evolving situation) पर भी विचार करना चाहिये ।
5. श्रेष्ठ नेता अपने उपक्रम की समस्त शक्तियों को संगठित करके सामान्य उद्देश्य के लिए उनका प्रयोग करता है ।
6. नेता में साहसिक कार्य करने व नये रास्ते खोजने का अदम्य साहस होना चाहिए ।
7. नेता व उसके अनुसरणकर्ताओं को एक अदृश्य नेता - 'सामान्य उद्देश्य' (The common purpose) का अनुसरण करना चाहिये ।
8. श्रेष्ठ नेता अपने अनुयायियों को अपनी बात मानने के लिए प्रेरित नहीं करता, बल्कि वह उन्हें वह बात बतलाता है जो उनके उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए आवश्यक है ।
9. श्रेष्ठ नेता अपने अनुयायियों को स्वयं नेता हो जाने के लिए प्रशिक्षित करता है (The best leaders try to train their followers themselves to become leaders) ।

फेयोल एवं शैल्डन से सहमत होते हुए मेरी फोलेट ने इस तथ्य पर बल दिया था कि नेता केवल जन्मजात ही नहीं होते है बल्कि मानव व्यवहार एवं समूह गति-विज्ञान की शिक्षा देकर उनको तैयार किया ज सकता है । फोलेट ने बहु-नेतृत्व (Multiple Leaderships) की अवधारणा पर भी विचार किया था । वे संगठन में लघु नेताओं (Leasser Leader) के विकास के पक्ष में थी वे संगठन में एक ही नहीं, वरन् कई अरस्तु (Aristotle) देखना चाहती थी ।

7.5.1 समन्वय का सिद्धान्त

फोलेट के मतानुसार, 'समन्वय प्रबन्ध का केन्द्रीय सारभाग है" (Coordination is the central core of managment) व्यवसाय में प्रबन्धकीय उत्तरदायित्व कई व्यक्तियों में बटा हुआ

होता है, सत्ता बिखरी हुई होती है तथा नेतृत्व विभिन्न व्यक्तियों के हाथों में होता है । व्यवसाय के कुशल संचालन के लिए इनमें उचित सामंजस्य उत्पन्न किया जाना चाहिये । मेरी पार्कर फोलेट ने प्रभावशाली समन्वय के चार सिद्धान्तों का वर्णन किया है -

1. **प्रत्यक्ष संपर्क का सिद्धान्त (The Principle of Direct Contect) -** फोलेट का यह मत था कि समन्वय के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को एक दूसरे से प्रत्यक्ष सम्पर्क करके समन्वय स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए । उन्होने सुझाव दिया कि अन्तवैयक्तिक समतल संबंधों (Inter - personal horizontal relationship) व व्यक्तिगत सम्प्रेषण की व्यवस्था के द्वारा समन्वय करने में और भी सुगमता हो जाती है । प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा विचारों, विधियों, उद्देश्यों व प्रगति के बारे में विचार-विमर्श करके अज्ञानता व भ्रांतियाँ दूर की जा सकती है ।
2. **प्रारम्भिक अवस्था में समन्वय का सिद्धान्त (The principle of Coordination in Early Stages)-** फोलेट के इस सिद्धान्त के अनुसार समन्वय की प्रक्रिया योजना बनाने व नीति निर्धारण करते समय ही प्रारम्भ हो जानी चाहिये । योजनाओं व नीतियों के निर्माण के पूर्व ही विभिन्न विभागों के अनुभागों के अध्यक्षों से परामर्श कर लिया जाना चाहिये तथा कर्मचारियों के विचार जान लिये जाने चाहिये । उनका मत था कि नीति-निर्माण व नीति समायोजन को पृथक-पृथक प्रक्रियाएं नहीं मानना चाहियें । नियोजन कार्य पूर्ण होने के पश्चात् समन्वय हेतु उसमें परिवर्तन करना कठिन होता है ।
3. **पारस्परिक संबंध का सिद्धान्त (The principle of Reciprocal Relationship) -** समन्वय के इस सिद्धान्त के अनुसार किसी स्थिति विशेष में सभी घटक पारस्परिक रूप से सम्बन्धित होते है । अर्थात् किसी उपक्रम के सभी कर्मचारी अपने पारस्परिक संबंधों एवं अंतःक्रियाशीलता के कारण एक दूसरे को प्रभावित करते है तथा ये स्वयं भी अन्य सभी व्यक्तियों से प्रभावित होते है । समन्वय स्थापित करने के दौरान अन्तर्सम्बन्धों व अन्तर्प्रभाव के इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिये । मेरी फोलेट लिखती है कि वास्तव में, सिद्धान्त ही हमें बताता है कि समन्वय की प्रक्रिया क्या है, अत: इसे समन्वय का लक्ष्य भी माना जा सकता है ।
4. **सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त (The principle of continous process) -** मेरी फोलेट ने समन्वय को एक सतत् प्रक्रिया माना है । अर्थात् समन्वय का कार्य संस्था में सदैव ही चलता रहना चाहिये तथा इसे अवसरों पर नहीं छोड जाना चाहिये । समन्वय के निरन्तर जारी रहने से भावी आकस्मिक घटनाएं उपक्रम पर विपरीत प्रभाव नहीं डाल सकती है तथा निर्धारित लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है ।

7.5.2 नियंत्रण का सिद्धांत (The Theory of Control)

मेरी फोलेट ने नियंत्रण का एक नया विचार विकसित किया था जो कि 'तथ्यों का नियंत्रण'(Fact control) है, न कि 'व्यक्तियों का नियंत्रण' (Men Control) तथा जो कि सह सम्बन्ध नियंत्रण' (Correlated Control) है न कि अभ्यारोपित नियंत्रण (Superimpesed Control) फोलेट का मत था कि केन्द्रीय नियंत्रण तभी प्रभावशाली हो सकता है जबकि यह प्रभुत्व पर नहीं, वरन् सहयोग एवं सामंजस्य (Synthesis) की भावना पर. आधारित हो ।

फोलेट के नियंत्रण का विचार एक दी हुई स्थिति में सभी तत्वों, सामग्रियों तथा व्यक्तियों के एकत्व (Unity) एवं सहयोग पर आधारित है । वे लिखती है कि, 'संगठनात्मक इंजीनियरिंग का उद्देश्य प्रभावी एकत्व (Effective Unity) के द्वारा नियंत्रण स्थापित करना है । 'एकत्व विभिन्न भागों से मिलकर बनी एक व्यवस्था है जिसके सभी भाग अन्तर्सम्बन्धित एवं अन्तर्क्रियाशील होते है । उनके अनुसार 'एकत्व नियंत्रण का आधार है (Unity is the basic of control) । फोलेट का मत था कि जिस प्रकार भौतिकी, चिकित्साशास्त्र एवं मनोविज्ञान में स्व-नियामक एवं स्व-निर्देशित 'संघटित एकत्व (Integrative Unities) होते है, उसी प्रकार व्यवसाय को भी अपनी प्रभावी कार्य प्रणाली के लिए ऐसी प्रक्रियाए विकसित करनी चाहिये जहाँ उसके विभिन्न भागों में होने वाली अन्तर्क्रिया नियंत्रण को जन्म दे सके । फोलेट के शब्दों में, 'सामाजिक नियंत्रण एकीकरण की प्रक्रिया से ही उत्पन्न होना चाहिये । (Social control must develop from the process of integration)

7.6 मूल्यांकन एवं आलोचना

रचनात्मक ऊर्जा से लबरेज फोलेट जैसे उदाहरण इतिहास में कम ही मिलते है । उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होनें सांगठनिक चिन्तन का कार्य स्वैच्छिक आत्मप्रयास के रूप में सम्पन्न किया । चूंकि वह स्वयं प्रबन्धक नहीं थी तथापि उनके विचारों की गहन सत्यता एवं व्यावहारिकता के कारण अनेक प्रबन्धकों ने उनसे मार्गदर्शन एवं परामर्श प्राप्त किया । लेखन में उनकी भाषा अत्यन्त सरल, सीधी व प्रभावशाली थी । विलीज विसलर (Willis Wissler) ने इनके बारे में लिखा है कि - "आपके विचार हेनरी डैंनिसन अल्फ्रेड क्लोन जैसे कई व्यावसायिक नेताओं के समान हैं । आपके विचारो को आज कई उन समाजशस्त्रियों, अर्थशास्त्रियों व राजनीतिज्ञों द्वारा स्वीकार किया जा जा रहा है जो अपने स्थिर सामाजिक एवं प्रशासनिक सिद्धान्तों को छोड़ रहे है ।" अमेरिकन मैनेजमेन्ट एसिसिएशन के टीम हॉर्टन लिखतें हैं कि "फोलेट में अवलोकन की विलक्षण क्षमता थी ।"

मेरी फोलेट को टेलर के उत्पादकता वाली यांत्रिक दृष्टिकोण एवं मानवीय व्यवहार की विचारधारा के मध्य पुल निर्मित करने का श्रेय दिया जाता है । वे ही प्रथम विचारक थी जिन्होने वैज्ञानिक प्रबन्ध व प्रबन्ध की समूह एवं प्रणाली विचारधारा में सामंजस्य उत्पन्न किया । रॉबर्ट फुलमर (Robert Fulmer) लिखते है कि, 'उन्होने प्रबन्ध श्रृंखला की तीन कड़ियों - वैज्ञानिक प्रबन्ध, मानवीय सम्बन्ध तथा प्रशासन को सही स्थान व सही समय पर एक साथ जोड़ा था ।" फोलेट ने प्रबन्ध को टेलर के यांत्रिक विश्लेषण की अतिमात्रा से मुक्त करवा कर मनो-समाजशास्त्रीय विचारधारा का सूत्रपात किया था । पीटर पार्कर (Peter Parker) लिखते हैं कि "फोलेट द्वारा अपने व्यापक विचारों को प्रयुक्त करने के पूर्व प्रबन्ध कार्यकुशलता केन्द्रित व्यक्तियों की बौद्धिक सम्पत्ति' (Intellectual Property) था । पोलार्ड (Pollard) लिखतें हैं कि "प्रबन्ध विचारधारा के विकास में फोलेट ने प्रबन्ध के प्रारम्भिक व्यावहारिक कार्य एवं अनुभव दृष्टिकोण (Practical Work / experience approache) तथा 40 वर्षो के बाद के मनो-समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के मध्य एक सीढ़ी उपलब्ध करवायी थी ।" मेरी फोलेट ने ही सर्वप्रथम मानवीय संबंधों में वैज्ञानिक विधि का सुझाव दिया था । यद्यपि ओलिवर शेल्डन ने इस बात का विरोध करते हुए कहा था कि - "जहाँ मनुष्यों का संबंध है, वहाँ वैज्ञानिक संबंध रही कागज की तरह है ।" उन्होंने आगे भी कहा है कि, "लागत, परिवहन, संचालन का विज्ञान हो सकता

है, किन्तु सहयोग का कोई विज्ञान नही हो सकता । "मेरी फोलेट' ने इसका तार्किक उत्तर देते हुये लिखा है कि - "सहयोग केवल नेक इरादे व स्नेहपूर्ण भावना का ही विषय नहीं है, यद्यपि यह इन पर आधारित होना चाहिये । लेकिन आप सफलतापूर्वक सहयोग तब तक नहीं कर सकते जब तक कि विभिन्न प्रयोगों के आधार पर सहयोग की विधियाँ न खोज ली गई है ।" उनका मत था कि सहयोग कैसे करें (how to cooperate) इसका वैज्ञानिक विश्लेषण होना चाहिये ।

फोलेट ने सुझाव दिया था कि व्यक्ति एवं संस्था के हितों में एकीकरण करके ही मतभेदों व संघर्षो को समाप्त किया जा सकता है । आज जबकि प्रबन्धीय क्षेत्र में सृजनात्मक एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है, फोलेट द्वारा प्रस्तुत मतभेद के निपटारे का यह "तीसरा मार्ग" (the third way) अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है । आज उद्योग एवं व्यवसाय समस्त वातावरण प्रगतिशील है । प्रबन्ध में जहाँ एक ओर मानवीय संबंधों एवं व्यवहार को महत्व दिया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर स्थितिगत दृष्टिकोण (Situational Approach) व सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया जा रहा है । ऐसे समय मे फोलेट का 'स्थिति का नियम प्रभावशाली हो गया है । आधुनिक व्यवसायों में 'आदेश एक स्वैच्छिक प्रभुता का परिणाम न होकर स्थिति का नियम बन गया है । उन्होने 'स्थिति की तर्कसंगतता (Logic of the situation) को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना था ।

मेरी फोलेट ने 'अन्तिम सत्ता' के विचार की व्यर्थता को सिद्ध किया गया जो कि आधुनिक व्यवसाय में उपयुक्त सिद्ध हो रहा है । आज व्यवसाय एवं प्रबन्ध में "अनेकवादी सत्ता' (Pluralistic Authority) की धारणा जोर पकड रही है । वर्तमान बहुलवादी संगठनों में किसी एक उच्चतम अधिकारी को प्रबंध के समस्त अधिकार सौंपने की बात कोरी कल्पना नजर आने लगी है सत्ता का संगठन के निचले स्तर की ओर फैलाव (Diffusion) बढ़ रहा है । फोलेट के सिद्धान्त ने प्रशासनिक सत्ता की क्रम परम्परा के शीर्ष भाग को उलट कर नीचे कर दिया है । यह सत्ता के श्रेणीबद्ध स्वरूप को एक सीधी चुनौती थी । फोलेट ने सत्ता को पद एवं स्थिति को हटाकर 'ज्ञान एवं अनुभव को साथ जोड दिया था । वे लिखती है 'सत्ता ज्ञान एवं अनुभव के साथ चलनी चाहिये जहाँ आज्ञाकारिता रहती है चाहे यह श्रेणी के उपर हो या नीचे ।" उन्होने 'सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने पर जोर दिया था । उनका कथन है कि 'सामूहिक उत्तरदायित्व व्यक्तियों का सबसे बडा विकासक है (collective responsibility is the great developer of men) ।" वर्तमान युग मे पद एवं व्यक्तित्व के आधार पर स्थापित नेतृत्व स्थायी नहीं हो सकता । फोलेट ने कार्य पर आधारित नेतृत्व (widely diffused leadership) एवं बहु-नेतृत्व के विचार को रखा था । उन्होने बताया कि समाज में लघु नेताओं (Lesser Leader) व व्यापक रूप से फैले हुए नेतृत्व (widely diffused leadership) के द्वारा ही युग की समस्याओं को हल किया जा सकता है । उद्योग हो या समाज एक महान नेता के स्थान पर हमें अनेकों व्यक्तियों को अपना योगदान देने के लिग नेतृत्व सौंपना होगा ।

7.6.1 आलोचना (Criticism)

सांगठनिक जगत को मेरी पार्कर फोलेट का योगदान अविस्मरणीय है तथापि प्रशासन एवं प्रबन्ध दोनों के विभिन्न पहलुओं पर उनके विचार आलोचना से परे नहीं है उनके विचारों में निहित प्रमुख दोष इस प्रकार हैं-

1. **उच्च आदर्शवाद -** कुछ विचारकों के अनुसार फोलेट की अभिकल्पनाओं व सिद्धान्तों में उच्च आदर्शवाद की झलक है, जो उनके विचारों को अव्यावहारिक बना देती है ।
2. **प्रबन्धकीय अनुभव की कमी -** कुछ विद्वानों के अनुसार फोलेट के अधिकांश विचार मात्र उनके गहन अवलोकन की उपज थे । उन्हें प्रबन्धकीय कार्य का कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं था, न ही उन्होने मेयो की भांति कोई व्यवस्थित अध्ययन किये थे ।
3. **सत्ता सम्बन्धों की वास्तविकता -** फोलेट ने सुझाव दिया था कि संगठनों में सत्ता के सम्बन्धों को दूर किया जाना चाहिये । वे प्रबन्धकों को पद सत्ता या मुख्य प्रबन्धक को अन्तिम सत्ता सौंपेने के पक्ष में नहीं थीं । किन्तु मैक्फारलैंड के अनुसार ' 'किसी भी संगठन के प्रबन्ध में सत्ता एक आवश्यक तत्व है तथा राजनैतिक यथार्थ है । सत्ता प्रारूप से किसी संगठन को मुक्त कर पाना एक कोरी कल्पना है । ' कुछ विचारकों के अनुसार फोलेट की विचारधारा - उपर सत्ता (Power over) तथा 'साथ सत्ता' (Power with) की कल्पना भी अव्यावहारिक है । किन्तु फोलेट ने इस सम्बन्ध में अपना तर्क प्रस्तुत करते हुये कहा है कि सत्ता का यह विभाजन वैधानिक दृष्टि से भी उचित है क्योंकि हम किसी दास के उपर सत्ता (Power with a slave) का प्रयोग करते है, जबकि किसी कर्मचारी के साथ सत्ता (Power with a slvae) का प्रयोग किया जाता है।
4. **स्थिति के नियम' की अव्यावहारिकता -** यह भी कहा जाता है कि फोलेट के 'स्थिति के नियम को व्यवहार में क्रियान्वित कर पाना अत्यन्त कठिन है । इसके लिए कुछ आवश्यक घटकों, जैसे निष्ठावान कर्मचारियों, सहयोगी दृष्टिकोण, प्रबन्धकों द्वारा सत्ता सहभागिता की इच्छा आदि का होना आवश्यक है ।
5. **नियोक्ता के हितों पर अधिक ध्यान -** फोलेट की आलोचना इसलिए भी की गई है कि वह नियोक्ता के हितों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों में प्रभावी प्रवृति उत्पन्न करने के तरीकों की खोज में अधिक उत्सुक रहीं तथा उसने श्रमिकों के हितों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया ।
6. **सामाजिक वर्ग संघर्ष की उपेक्षा -** कुछ विचारकों के अनुसार फोलेट ने वास्तविक सामाजिक वर्ग संघर्षो के समाधान पर ध्यान नहीं दिया था । उन्होनें केवल मनोवैज्ञानिक संघर्षो, जिनकी उत्पत्ति प्रमुखत: समझ की कमी, भ्रांतियों एवं वैयक्तिक गुणों में भिन्नता के कारण होती है ।
7. कुछ विचारकों जैसे कीथ डेविस, क्रिस अरगाइरिस आदि ने फोलेट द्वारा कर्मचारियों की सहभागिता एवं सहमति पर व्यक्त विचारों को तर्कयुक्त एवं व्यावहारिक नहीं माना हैं । आलोचकों के अनुसार फोलेट ने मैकियावली को दोहराया है कि जब वे कहती है कि ' 'अन्तत: कोई भी समुदाय अधिक अवधि तक नहीं बना रह सकता जब तक इसकी नींव शासित कर्मचारियों की सहमति पर नहीं रखी गयी हो । "

8. फोलेट की आलोचनाओं में यह भी कहा जाता है कि उनका लेखन वैज्ञानिक अध्ययन का परिणाम नहीं था । उनके सभी विचार मौलिक नहीं थे, न ही उनके विचारों में क्रमबद्धता थी ।

वास्तव में फोलेट की आलोचना विशेषकर उनके पूंजीवादी दर्शन के तीव्र विरोध के कारण हुई थी । व्यवहार में उनका योगदान ' 'आधारभूत एवं निस्संदेह युगांतकारी प्रकृति का है । मेटकाफ एवं उर्विक के मत में उनकी अवधारणाएँ अपने समय से आगे की थी और समसामयिक चिंतन से भी आगे ही है ।

7.7 सारांश

यह इकाई मेरी पार्कर फोलेट के लोक प्रशासन एवं प्रबन्ध में योगदान एवं भूमिका की व्याख्या करती है । इस इकाई के अध्ययन से ज्ञात होता है कि फोलेट ने प्रबन्ध विचारकों के समक्ष अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न रखे थे, जैसे क्या शक्ति किसी के उपर होती है या साथ मिलकर चलती है? क्या सत्ता सामाजिक सम्मान का द्योतक है या एकीकरण का साधन है? क्या सत्ता उपर से प्रदान की जाती है या वातावरण से उत्पन्न होती है? इन प्रश्नों ने प्रबन्धकों को अपनी प्रबन्ध शैली में परिवर्तन लाने हेतु विवश कर दिया था इस इकाई में रचनात्मक संघर्ष, प्राधिकार, नेतृत्व इत्यादि की विस्तार से विवेचना की गई है । फोलेट का वैचारिक मूल्यांकन करने पर वह आलोचना से नहीं बच पाती है तथापि वे प्रबन्ध विचारधारा के इतिहास में एक भविष्यवक्ता थी एवं आदर्श मार्गदर्शक थी ।

7.8 शब्दावली

चक्रीय व्यवहार	:	परस्पर एक दूसरे से-प्रभावित होने वाला व्यवहार
प्रभुत्व	:	एक पक्षकार द्वारा दूसरे पर विजय प्राप्त करना ।
एकीकरण	:	दोनो पक्षों की मांगों को श्रेष्ठ विकल्प के माध्यम से पूर्ण करना
प्रत्यायोजन	:	उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ को सत्ता सौंपना ।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. मेरी पार्कर फोलेट को उदारवादी विचारक माना जाता है कैसे?
2. रचनात्मक संघर्ष से आपका क्या अभिप्राय है?
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए -
   (अ) स्थिति का नियम
   (ब) नेतृत्व विचारधारा
   (स) उत्तरदायित्व
4. फोलेट ने संघर्ष समाधान की कौनसी विधि बताई है?
5. आदेश देने के चार चरण लिखिए ।
6. फोलेट के शक्ति सम्बन्धी विचार बताइये ।
7. फोलेट के अनुसार नेतृत्व के प्रकार बताइये ।
8. फोलेट का समन्वय का सिद्धांत बतलाइये ।

(9) फोलेट के विचारों का मूल्यांकन कीजिए ।

(10) फोलेट का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ।

7.10 संदर्भ ग्रंथ

1. हेनरी सी. मेटकाफ, लिंडॉल उर्विक : डायनेमिक एडमिनिस्ट्रेशन : द क्लेक्टेड पेपर्स ऑफ मेरी पार्कर फोलेट, न्यूयार्क, हार्पर एण्ड रो, 1940
2. एस.ए. सप्रे, मेरी पार्कर फोलेट हर डायनेमिक फिलॉसफी ऑफ मैनेजमेंट, बाम्बे गर्वनमेंट सेन्ट्रल प्रेस 1975
3. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण, प्रशासनिक चिंतक, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1999
4. मेरी पार्कर फोलेट, क्रियेटिव एक्सपिरियन्स लांगमैनस ग्रीन, 1924, लंदन
5. जी.एस. सुधा, प्रबन्धकीय चिंतन का इतिहास, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर 1998

इकाई- 08

मैक्स वेबर - I

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जीवन वृत एवं प्रमुख कृतियां

8.2.1 प्रमुख रचनाएँ

8.3 वेबर का आदर्श-रूप प्रतिमान

8.4 मैक्स वेबर की सत्ता अथवा प्राधिकार प्रणाली

8.4.1 परंपरागत सत्ता

8.4.1.1 परम्परात्मक सत्ता को विशेषताएँ

8.4.1.2 परम्परागत सत्ता में प्रशासनिक कर्मचारी की विशेषतायें

8.4.2 करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता

8.4.2.1 करिश्माई (चमत्कारिक) सत्ता की विशेषतायें

8.4.2.2 चमत्कारिक सत्ता में प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग की विशेषताएँ

8.4.3 वैध विवेकपूर्ण सत्ता

8.4.3.1 वैध विवेकपूर्ण सत्ता की विशेषताएँ

8.4.3.2 वैध विवेकपूर्ण सत्ता में कर्मचारी वर्ग (नौकरशाही)

8.5 वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की विशेषतायें

8.6 नौकरशाही का उदय

8.7 नौकरशाही पर नियंत्रण

8.8 नौकरशाही बनाम प्रजातंत्र

8.9 मैक्स वेबर के विचारों की आलोचनाएँ

8.10 सारांश

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.12 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- मैक्स वेबर की सत्ता अथवा प्राधिकार की अवधारणा के बारे में ।
- मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा के बारे में ।
- मैक्स वेबर का प्रशासन में योगदान के बारे में ।

8.1 प्रस्तावना

"जब कोई विशेषता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाये, तब उसकी स्थिति की कल्पना व व्याख्या करना 'आदर्श-रूप' है ।" मैक्स वेबर

आधुनिक सामाजिक विचारकों के इतिहास में मैक्स वेबर का नाम अत्यन्त श्रद्धास्पद है । मैक्स वेबर की रचनाएँ आज भी प्रामाणिक ज्ञान एवं अन्तर्दृष्टि के स्रोत के रूप में पूरे संसार में विख्यात है । मैक्स वेबर न केवल एक अच्छे समाजशास्त्री थे, बल्कि उतने ही अच्छे राजनीतिशास्त्र के ज्ञाता भी थे । ओटो स्टेमर के अनुसार, "मैक्स वेबर शताब्दी के अन्त के समय के एक प्रसिद्ध विद्वान, जर्मनी में वैज्ञानिक समाजशास्त्र समिति के जन्मदाता, व्याख्यात्मक दार्शनिक, स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति, राजनीतिक सलाहकार एवं आलोचक थे ।" मैक्स वेबर ने नौकरशाही की अवधारणा का एक 'आदर्श रूप' प्रतिमान प्रस्तुत किया । नौकरशाही' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विन्सेन्ट डी. गोरने ने किया था। उस समय नौकरशाही का प्रयोग भ्रष्ट अर्थो में किया जाता था, लेकिन मैक्स वेबर ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने नौकरशाही को भ्रष्ट अर्थो से छुटकारा दिलाया ।

मैक्स वेबर जो मूलत: समाजशास्त्री थे, तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के भी 'अग्रणी चिन्तक' माने जाते थे । प्रशासनिक प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन पर उनका प्रभाव इतना अधिक माना गया है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र के एक मुख्य संश्लेशक निमरोद रेफेली ने यहाँ तक कह दिया है कि वेबर के अधिकारी तंत्र का आदर्श-रूप प्रतिमान लोक प्रशासन के साहित्य में सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतिमान है ।

8.2 जीवन वृत्त एवं प्रमुख कृतियां (Life Sketch and Main Publication)

मैक्स वेबर का जन्म 21 अप्रेल, 1664 को जर्मनी के थ्रीजीया नामक स्थान पर एक वस्त्र निर्माता के परिवार में हुआ था । वेबर के पिता वकील होने के साथ-साथ नगरपालिका एवं संसद के सदस्य थे । 1882 में प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद 18 वर्ष की आयु में वेबर ने हैडलबर्ग विश्वविद्यालय में विधि का अध्ययन किया । उन्होंने 1889 में "मध्ययुगीन व्यावसायिक संगठनों के इतिहास के लिए योगदान" पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की । बर्लिन विश्वविद्यालय में "कानून के प्रशिक्षक के रूप में" कार्य किया और 1891 में दूसरा शोध प्रस्तुत किया । कानून पर उन्होंने कई शोध पत्र लिखे । 1894 में फिडलबर्ग विश्वविद्यालय में पद ग्रहण किया । जून, 1920 को 56 वर्ष की अवस्था में वेबर की निमोनिया के कारण मृत्यु हो गई ।

वेबर द्वारा लिखित रचनाएँ सामाजिक विद्वानों के साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं । उनमें से प्रमुख निम्न हैं-

प्रमुख रचनाएँ (Main Publications)

1. The Protestant Ethic and The Sprit of Capitalism, (1904-05)
2. The Religion of China, (1916)
3. The Religion of India, (1916)

4. The City, (1921)
5. Economy and Society, (1921)
6. Sociology and REligion, (1922)
7. Ancient Judaism, (1922)
8. The Theory of Social and Economic Organization,(1927)
9. General Economic History, (1927)
10. The Rational and Social Foundation of Music, (1929)
11. The Methodology of Social Sciences, (1941)
12. Essays in Sociology.

वेबर द्वारा अधिकांश साहित्य जर्मनी भाषा में लिया गया है । वेबर की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है "The Theory of Social and Economic Organization" का हैण्डरसन तथा पारसन्स द्वारा 1947 में जर्मन से अंग्रेजी में अनुवाद किया गया । जर्मन शीर्षक से लिखी गई इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद "Economy and Socity" के रूप में किया गया । मैक्स वेबर के अधिकांश विचारों का अध्ययन समाजशास्त्र में किया गया है । एक समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री तथा राजनीतिविज्ञानी के रूप में वेबर का योगदान अविस्मरणीय है । मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत एक महत्वपूर्ण अवधारणा 'आदर्श-रूप' है ।

8.3 वेबर का 'आदर्श-रूप' प्रतिमान ('Ideal Type' of Model of Weber)

"जब कोई विशेषता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाये तब उसकी स्थिति की कल्पना व व्याख्या करना आदर्श-रूप है"" अथात् अतिरंजना की कल्पना करना वेबर के पद्धतिशास्त्रीय अंतर्दृष्टि का परिणाम है ।

मैक्स वेबर से पहले डिल्थे वसीमेल ने आदर्श-रूप जैसी अवधारणाओं की विवेचना की थी । परन्तु वेबर ने पहली बार एक नए ढंग से आदर्श रूप की अवधारणा को प्रस्तुत किया एवं इस बात पर जोर दिया कि आदर्श रूप जैसी अवधारणाओं का विकास करना चाहिये और इन्हीं आदर्श रूपों के आधार पर सामाजिक एवं प्रशासनिक घटनाओं की विवेवचना करनी चाहिये ।

वेबर के अनुसार "आदर्श-रूप" की निम्न विशेषताएँ हैं -

(i) कुछ वास्तविक तथ्यों के तर्क-संगत आधार पर यथार्थ अवधारणाओं का निर्माण करना,
(ii) आदर्श-रूप' वास्तविक नहीं है, बल्कि वास्तविकता के कल्पनात्मक आधार से निर्मित किये जाते हैं,
(iii) ये अमूर्त भी नहीं होते
(iv) 'आदर्श-रूप' बने बनाए उपलब्ध नहीं होते, बल्कि उन्हें अनुसंधानकर्त्ता को अपनी समस्या से सम्बन्धित उचित अवयवों को मिलाकर बनाना पड़ता है ।
(v) इन आदर्श-रूपों का उद्देश्य तुलना करना होता है । अपनी वैचारिक विशुद्धता में यह मानसिक अवधारणा वास्तविक विश्व में अनुभव के रूप में कहीं भी देखी नहीं जा सकती ।

(vi) ऐतिहासिक अनुसंधान के अन्तर्गत यह निश्चित करने का कार्य है कि प्रत्येक मामले में किस सीमा तक यह 'आदर्श-अवधारणा' वास्तविकता के समीप या दूर है ।

(vii) 'आदर्श-रूप', ' वास्तविकता" का स्वयं प्रतिनिधित्व नहीं करता, अपितु यह केवल वास्तविकता के कतिपय तत्वों का तार्किक रूप से सूक्ष्म विचार में एक अतिरंजना और अमूर्तिकरण है ।

चित्र 1

'आदर्श रूप' के प्रकार (Types of 'Ideal Model')

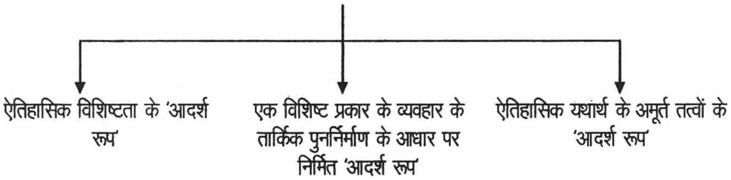

वेबर का मत था कि समाज और संस्कृति के अध्ययन में पहला कार्य एक विशिष्ट संरचना में संयुक्त तत्वों को स्पष्ट करना और उनको एक आदर्श-रूप में एकीकृत करना, होना चाहिये । यह आदर्श-रूप सामाजिक अनुसंधान को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकेगा । रेमण्ड एरन के अनुसार मैक्स वेबर ने आदर्श रूप को तीन प्रकार की अवधारणाओं को विवेचित करने के लिए प्रयोग किया है ।

(i) ऐतिहासिक विशिष्टता के 'आदर्श रूप' (Ideal Types of Historical Particulars) - इसमें वेबर उन आदर्श-रूपों' को रखता है जो एक विशेष ऐतिहासिक स्थिति का विवेचन करने के लिए बनाये जाते हैं, जैसे पूँजीवाद एवं पश्चिमी शहर । ये दो आदर्श-रूप विशिष्ट 'आदर्श-रूप' के उदाहरण हैं, जो एक ' सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था एंव विशिष्ट ऐतिहासिक यथार्थ के आधार पर बौद्धिक रूप से निर्मित किये गये हैं ।

(ii) एक विशिष्ट कार के व्यवहार के तार्किक पुनर्निर्माण के आधार पर निर्मित आदर्श रूप (Ideal Types includes those that constitute Rationalizing Reconstructions of a Particular kind of Behavior) - एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार की तार्किकता के आधार पर जब कोई आदर्श-रूप बनाया जाता है तो उसे इस श्रेणी में रखा जाता है । वेबर के अनुसार, "अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के तर्क-वाक्य इस श्रेणी के आदर्श-रूप हैं ।

(iii) ऐतिहासिक यथार्थ के अर्मूत तत्वों के आदर्श रूप (Ideal types which Designate Abstract Elements of the Historical Reality) - वे तत्व जो बहु त से या अधिकांश मामलों में दिखाई देते हैं, अत्यंत जटिल एवं अर्मूत होते हैं । वेबर के अनुसार इनका स्रोत भी ऐतिहासिक होता है । परन्तु ये वे तत्व हैं जो अधिकांश रूप से देखे जा सकते हैं तथा इन्हें वास्तविकता रवे देखा जा सकता है, जैसे - अधिकारीतंत्र सामन्तवाद । वेबर के अनुसार ऐसे आदर्श रूपों में सम्पूर्ण व्यवस्था की वास्तविकता का समावेश न होकर कुछ विशिष्ट प्रकार की ऐतिहासिक वास्तविकता का समावेश होता है।

इसी प्रकार वेबर ने तीनों प्रकार के प्रभुत्व-तार्किक, परम्परागत व चमत्कारिक को भी इस प्रकार के 'आदर्श-रूप' बताया है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मैक्स वेबर ने आदर्श प्रारूप की वैज्ञानिक अवधारणा को पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से अत्यन्त सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है । वेबर का

पद्धतिशास्त्रीय आदर्श-रूप निःसंदेह समाजशास्त्रीय प्रघटनाओं का वैज्ञानिक व यथार्थ आधार पर समझने का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाय है ।

8.4 मैक्स वेबर की सत्ता अथवा प्राधिकार प्रणाली (Authority System)

मैक्स वेबर ने जर्मन शब्द 'हर्रशापट' का प्रयोग प्राधिकार के लिए किया था । उनका कहना है कि प्रत्येक संगठित समूह एवं प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व मूल रूप से विद्यमान रहते हैं। संगठित समूह अथवा प्रशासनिक संस्था में कुछ तो साधारण-सदस्य होते हैं और कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनके पास उत्तरदायित्व होता है । साथ ही साथ उनके पास सत्ता भी रहती है और कुछ प्रधान प्रशासक के रूप में होते हैं । सत्ता या प्राधिकार की दृष्टि से समूह की रचना इसी प्रकार की होती है और उसमें उपरोक्त तत्व विद्यमान रहते हैं । वेबर ने सत्ता अथवा प्राधिकार को इस प्रकार परिभाषित किया है, "यह सम्भावना कि एक विशिष्ट विषय युक्त आदेश का व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह द्वारा पालन किया जायेगा ।" सत्ता के प्रयोग में यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति किसी अधीनस्थ समूह को आदेश दे और उस समूह के सदस्य उस आदेश के औचित्य में विश्वास रखने के कारण उसका पालन करें । जहाँ संस्था संस्थानीकृत हो जाती है, तब यह प्राय: संगठित समूह के साथ सम्बद्ध हो जाती है, अर्थात् उन समूहों के साथ जो आदेशों को लागू करने के लिए अपने प्रशासनिक कर्मचारियों का प्रयोग करते हैं ।

मैक्स वेबर ने सत्ता के तीन बुनियादी प्रारूपों में अंतर किया है । ये तीन प्रकार की सत्ताएँ निम्नलिखित हैं :

चित्र 2

मैक्स वेबर के सत्ता/प्राधिकार के प्रकार (Types of Authority)

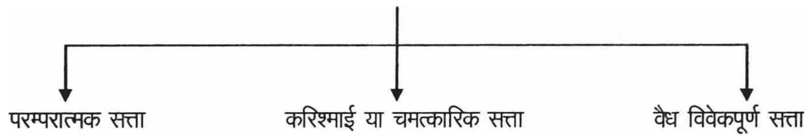

8.4.1 परम्परागत सत्ता (Traditional Authority)

परम्परागत सत्ता उस सत्ता की वैधता के विश्वास पर आधारित है, जो हमेशा बनी रहती है । आदेश की शक्ति को कार्यान्वित करने वाले व्यक्ति सामान्य रूप से प्रभुत्वशाली होते हैं, जो अपनी आनुवंशिक प्रस्थिति के कारण व्यक्तिगत सत्ता का उपभोग करते हैं । लेकिन उनके पास स्वतन्त्र व्यक्तिगत निर्णय के विशेषाधिकार भी होते हैं । इसमें प्रथा का अनुसरण तथा व्यक्तिगत निरंकुशता दोनों ऐसे नियमों की विशेषतायें होती हैं । जो व्यक्ति प्रभु व्यक्तियों के आदेशों के अधीन होते हैं, वे शाब्दिक अर्थ में उनके अनुयायी होते है । वे प्रभु व्यक्तियों के लिए व्यक्तिगत- रूप से भक्त होने के कारण उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तथा भूतकाल से प्रतिष्ठित पद के लिए उनकी पवित्र श्रृद्धा होती है । इसीलिए वे उसकी आज्ञा का पालन करते हैं । वेबर ने परम्परागत सत्ता में कार्यरत प्रशासनिक स्टाफ को तीन भागों में विभक्त किया है । प्रथम प्रणाली 'जैरोन्टोक्रेसी' कहलाती है । इस प्रणाली में संगठित स्टाफ न होकर समूह के एक वरिष्ठ व्यक्ति के आदेश की पालना की जाती है, जो कि सामूहिक

भावना पर आधारित होते हैं । यह समूह अनौपचारिक संगठन के रूप में रहता है । दूसरे प्रकार की प्रणाली को वेबर ने 'पैट्रीआर्कलिज्म' का नाम दिया है । इस प्रणाली में आदेश का पालन आनुवंशिकता के आधार पर किया जाता है । तीसरे प्रकार की प्रणाली 'पैट्रीमोनियलिज्म' कहलाती है । यह निरंकुश सत्ता की प्रणाली है । इसमें शासक के पास स्वयं की सम्पत्ति, सेना तथा सेवीवर्ग विकसित हो जाता है । अत: शासन संचालन हेतु उसे विकेन्द्रीकरण करना पड़ता है ।

इस प्रकार की प्रणाली के लिए दो प्रकार के उपकरण प्रयुक्त होते हैं । पैतृक शासन में इस उपकरण में व्यक्तिगत अनुगामी होते है जैसे कि गह अधिकारी सम्बन्धी या कृपा पात्र व्यक्ति । एक सामन्तवादी समाज में इस उपकरण के अन्तर्गत व्यक्तिगत रूप से भक्त मित्र होते हैं । जैसे कि अधीन जागीरदार या करदाता सरदार । ऐसे व्यक्तिगत अनुचर अधिकारी की हैसियत से अपने प्रभु के निरंकुश आदेशों या परम्परागत आदेशों के अधीन होते हैं । उनकी क्रियाओं का क्षेत्र एवं आदेश की शक्ति निम्न स्तर पर उस प्रभु व्यक्ति का दर्पण होती है । इसके विपरीत एक सामन्तवादी और पितृनामी शासन का भेद और दोनों प्रणालियों में परम्पराएँ एवं निरंकुश आदेशों की निकटता सभी प्रकार की परम्परागत प्रभुता में छायी रहती है ।

8.4.1.1 परम्परागत सत्ता की विशेषताएँ (Characteristics of Traditional Authority)

परम्परागत प्राधिकार की निम्न विशेषताएँ हैं -

(i) इस प्रकार की सत्ता एक व्यक्ति को वैधानिक नियमों के अन्तर्गत एक पद पर आसीन होने के कारण नहीं बल्कि परम्परा द्वारा स्वीकृत पद पर आसीन होने के कारण प्राप्त होती है ।

(ii) चूँकि इस पद को परम्परात्मक व्यवस्था के अनुसार परिभाषित किया जाता है, इस कारण ऐसे पद पर आसीन होने के कारण व्यक्ति को कुछ विशिष्ट सत्ता मिल जाती है । इस प्रकार की सत्ता परम्परात्मक विश्वासों पर टिकी होने के कारण परम्परात्मक सत्ता कहलाती है । उदाहरणार्थ - कृषि युग में भारतीय गाँवों में पाई जाने वाली पंचायत में पंचों की सत्ता को ही लिजिये - इन पंचों की सत्ता वैधानिक नियमों के अन्तर्गत नहीं आती थी, बल्कि परम्परागत रूप में उन्हें सत्ता प्राप्त हो जाती थी । यहाँ तक की पंच की सत्ता की तुलना ईश्वरीय सत्ता से की जाती थी, जैसा कि 'पंच-परमेश्वर' की धारणा में व्यक्त होता है ।

(iii) 'पारम्परिक प्राधिकार प्रणाली', 'आदेश की पवित्रता' के आधार पर औचित्य का दावा करती है और उसे स्वीकार करती है ।

(iv) इस तंत्र में शासक की आशा का पालन इसलिये किया जाता है कि परम्परा वैसी माँग करती है।

(v) कार्याधिकार के नियम और क्षेत्र पूर्णतया परिभाषित नहीं होते । प्राधिकार प्रयुक्त करने में पूर्ववर्तिता एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है तथा एक शासक अस्पष्टता से परिभाषित कतिपय क्षेत्रों में तत्वत: मनमाने ढंग से प्राधिकार का प्रयोग कर सकता है ।

(vi) नियमों का विधिकरण नहीं किया जाता । सभी स्थितियों में पूर्ववर्ती परम्परा का आश्रय लिया जाता है ।

8.4.1.2 परम्परागत सत्ता प्रशासनिक कर्मचारी की विशेषताएँ

(Characteristics of Administrative Staff in Traditional Authority)

(i) कर्मचारियों की भर्ती के दो स्रोत हैं -

(1) आनुवंशिक : ये व्यक्ति निष्ठा द्वारा प्रमुख रूप से मुखिया से बंधे होते हैं ।

(2) आनुवंशिकेत्तर : विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत निष्ठा (कृपापात्र) जागीरदार (स्वामीभक्त से सम्बन्ध) अथवा वे जो इस प्रकार के सम्बन्धों से मुक्त रूप से समझौता करते हैं ।

(ii) बहुत से पद पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर भरे जाते हैं, लेकिन दास भी उच्च पद पर आसीन हो सकते हैं ।

(iii) कर्मचारी वर्ग का विकास आनुवंशिकेत्तर प्रभाव के समूहों से होता है, लेकिन ये प्राय: आरम्भिक रूप से प्रमुख के वैयक्तिक अनुयायी थे ।

(iv) परम्परागत प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग में निम्न तत्वों की कमी रहती है -

(a) कार्याधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं होते,

(b) एक पदसोपान में पदों की विवेकपूर्ण व्यवस्था नहीं होती,

(c) नियमित नियुक्तियाँ और पदोन्नतियाँ नहीं होती,

(d) नियमित आवश्यकता के रूप में, प्राविधिक प्रशिक्षण नहीं होता,

(e) इस प्रकार की प्रणाली के अन्तर्गत निजी सम्पर्क, निष्ठाएँ रिश्तेदारी और आयु भी प्रशासनिक पदाधिकारियों की नियुक्तियों और पदोन्नतियों को बड़ी सीमा तक निश्चित करते हैं ।

(v) परम्परागत शासन के अन्तर्गत कर्मचारी वर्ग के प्रकार -

(a) 'पितृसत्तावाद - इसमें वैयक्तिक प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग का सर्वथा अभाव रहता है ।

(b) आनुवंशिकवाद - एक व्यक्तिगत कर्मचारी वर्ग विकसित होता है, जो विशुद्ध रूप से प्रमुख के निजी नियंत्रण में रहता है ।

(c) विकेन्द्रिकृत आनुवंशिक : प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग में समूह या व्यक्ति, सुविधाओं, पदों आदि पर अधिकार कर लेते हैं और इस प्रकार प्रमुख की सत्ता एवं नियंत्रण को सीमित कर देते है । (पट्टे पर उठाना, पदों का विक्रय आदि) ।

पारम्परिक प्राधिकार के अन्तर्गत प्रशासनिक प्रणाली का वर्णन करते हुए वेबर न सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक प्रणाली के बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया है । वेबर ने इस प्रकार की योजना का उपयोग आदर्श रूप प्रतिमान की भाँति किया, किसी आनुभाविक स्थिति के वर्णन की तरह नहीं । इस प्रकार हम आधुनिक अधिकारीतंत्र के मिश्रण का विश्लेषण करें तो वेबर का पारम्परिक प्राधिकार में प्रशासनिक पद्धतियों का अध्ययन शोध प्रक्रिया में सहायक सिद्ध हो सकता है ।

इस प्रकार, सामान्य रूप में परम्परा का अध्ययन सांस्कृतिक प्रणाली के विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । इसके अतिरिक्त वेबर की परिकल्पना उन प्रशासनिक प्रणालियों के विश्लेषण में सहायता दे सकती है जो, 'आदिम अथवा कबीलाई समाजों के विन्यासों में कार्य कर रही है । इन सभी विषयों में अनुसंधानकर्ता इस प्रकार के रीति-रिवाजों पर विचार करता है जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराएँ परस्पर क्रिया करती हैं एवं जिनका कि प्रशासनिक उप-प्रणाली अंग होती है । सामाजिक संरचनाओं की परस्पर निर्भरता पर यह दबाव वेबर के राजनैतिक, प्रशासनिक प्रणाली को एक पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य से देखने की आवश्यकता को स्वीकार करता है ।

8.4.2 करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता

चमत्कारिक प्राधिकार प्रणाली में, औचित्य का दावा करिश्मा' (चमत्कार) या शासक. की अतिमानवीय और अतिप्राकृतिक गुणों के आधार पर किया जाता है और स्वीकार किया जाता है, न कि वैध विवेकसंगत नियमों और परम्परा के आधार पर । वेबर के विश्लेषण में, शासक का चमत्कार दर्शक की दृष्टि में रहता है, लेकिन उसमें संस्थानीकरण का पक्ष भी सम्मिलित है ।

8.4.2.1 करिश्माई (चमत्कारिक) सत्ता की विशेषतायें

करिश्माई सत्ता की विशेषतायें निम्न हैं

(i) आदेश की शक्ति एक नेता भी कार्यान्वित कर सकता है, भले ही वह एक पैगम्बर हो, नायक हो अथवा अवसरवादी नेता हो । पर ऐसा व्यक्ति तभी चमत्कारी नेता हो सकता है जब वह यह सिद्ध कर दे कि तांत्रिक शक्तियों, दैवी संदेश या अन्य अभूतपूर्व गुण के कारण उसके पास चमत्कार है ।

(ii) सत्तासीन व्यक्ति को अतिमानव और अति प्राकृतिक स्वीकार करके नेता माना जाता है ।

(iii) जो नेता के दावे को ठीक मानते हैं, वे अनुयायी होते हैं, वे उसका चुनाव नहीं करते, परन्तु उसके चमत्कार को स्वीकार करते हैं, यह उनका कर्त्तव्य होता है ।

(iv) उन शिष्य पदाधिकारियों को कठिनता से ही एक संगठन के रूप में माना जा सकता है, और उनकी क्रियाओं का क्षेत्र तथा आदेश की शक्ति देवी सन्देश, अनुकरणीय आचरण एवं निर्णय पर निर्भर है । पदाधिकारियों का चुनाव इनमें से किसी एक के आधार पर हो सकता है ।

(v) इनमें से कोई भी पदाधिकारी, न नियमों से बंधा हुआ है और न परम्परा से, अपितु केवल नेता के निर्णय से बंधा हुआ होता है ।

इस प्रकार यह सत्ता न तो वैधानिक नियमों पर और न ही परम्परा पर अपितु कुछ करिश्मा या चमत्कार पर आधारित होती है । इस प्रकार की शक्ति केवल उन्हीं व्यक्तियों के पास सीमित होती है, जिनके पास विलक्षण या चमत्कारिक शक्ति होती है । इस प्रकार की सत्ता प्राप्त करने में व्यक्ति को काफी समय लग जाता है और पर्याप्त साधना-प्रयत्न के पश्चात् ही लोगों द्वारा यह सत्ता स्वीकार की जाती है । दूसरे शब्दों में, एक व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास इस प्रकार किया जाता है कि लोग यह समझने लगें कि उसने अपने व्यक्तित्व में कोई चमत्कारी या विलक्षण शक्ति का विकास कर लिया है । इसके बल पर ही वह अन्य लोगों को अपने सामने झुका लेता है और व्यक्तियों द्वारा उसकी सत्ता स्वीकार कर ली जाती है ।

(vi) करिश्माई नेता अपने प्रति या अपने लक्ष्य या आदर्श के प्रति निष्ठा के नाम पर दूसरों से आज्ञापालन करने की माँग करता है । जादूगर, पीर, पैगम्बर, धार्मिक नेता, सैनिक, योद्धा, किसी दल के नेता आदि इसी प्रकार के सत्ता-सम्पन्न व्यक्ति होते हैं ।

कुछ लोग इस कारणवश ऐसे लोगों कि सत्ता स्वीकार कर लेते हैं कि इनमें कुछ विलक्षण या अद्वितीय गुण पाये जाते हैं जो साधारण लोगों में देखने को नहीं मिलते हैं । अत: प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर इन गुणों के प्रति श्रद्धा स्वभावत: होती है । इन गुणों को बहुदा दैवीय गुणों

के समान या उनके अंश के रूप में माना जाता है । इस कारण इस प्रकार की सत्ता में सम्पन्न व्यक्ति की आज्ञा का पालन लोग श्रद्धा एवं भक्ति के साथ करते हैं ।

(vii) इस सत्ता की भी परम्परात्मक सत्ता के समान कोई सीमा नहीं होती है । इस सत्ता की एक विशेषता यह भी है कि परिस्थिति के अनुसार यह सत्ता संवैधानिक या परम्परात्मक सत्ता में बदल जाती है ।

(viii) चमत्कार में निरन्तर असफलता से नेता पदच्युत हो सकता है ।

(ix) अधिक स्थायी प्रकृति के चमत्कारिक प्राधिकार हेतु उत्तराधिकारी की खोज करके चमत्कार को नैत्यिक बनाया जाना आवश्यक है-

(a) विशिष्ट लक्षणों वाले व्यक्ति की खोज करके (दलाई लामा) ।

(b) देववाणियाँ, भाग्य पत्रक आदि ।

(c) आरम्भिक चमत्कारी व्यक्ति द्वारा निर्दिष्ट किया जाना ।

(d) चमत्कारी रूप सें योग्य कर्मचारी वर्ग द्वारा निर्दिष्ट करके ।

(e) उत्तराधिकारी रूप से संक्रमित चमत्कार ।

(f) अनुष्ठान आदि साधनों से संक्रमित चमत्कार ।

(xi) नैत्यिकता के लिए अत्यन्त शक्तिशाली अभिप्रेरणा है - सुरक्षा की खोज, प्राधिकार, सामाजिक प्रतिष्ठा. आर्थिक सुरक्षा ।

(xii) नैत्यिक चमत्कार की प्राधिकारी संरचना उन रीति-रिवाजों से प्रभावित होती है, जिनसे प्रशासनिक कर्मचारीगण अपनी आर्थिक स्थिति को सुरक्षित करता है, विशिष्ट उदाहरण सामंतवाद'।

(xiii) चमत्कार सत्तावाद् - विरोधी दिशा में भी नैत्यिक हो सकता है -

(a) नेतृत्व के औचित्य के लिए जनमत संग्रह का उपयोग जनतंत्र में अति महत्त्वपूर्ण मार्ग है - वह भी नेतृत्व के साथ संयोजित किया जाये ।

(b) चमत्कारी प्राधिकार में सत्तावादी तत्व जनमत संग्रह द्वारा छिपाये जाते हैं ।

(c) सत्तावाद - विरोधी नैत्यिक चमत्कार आर्थिक विवेकता की ओर ले जा सकता है लेकिन साथ ही साथ यदि वह अनुयायियों के लिए लाभ प्राप्त करने पर रोक लगाता है जब सारी विवेकपूर्ण विधियों को छोड़ा भी जा सकता है ।

(xiv) यदि शिष्यों को अपने गुरूओं के चमत्कारी गुणों में कोई कमी या उल्लेखनीय असफलता दिखाई देती है तो सम्भव है कि वे उसे छोड़ दें और इस प्रकार चमत्कारिक प्राधिकरण प्रणाली का विघटन सम्भव हो सकता है ।

4.4.2.2 चमत्कारिक सत्ता में प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग की विशेषताएँ (Characteristics of Administrative Staff in Charismatic Authority)

(i) विशुद्ध रूप में कोई प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग नहीं होता, केवल अनुयायी और शिष्य होते हैं । यहाँ वैध नियम नहीं होता ।

(a) शिष्य चमत्कारी गुणों के आधार पर चुने जाते हैं ।

(b) नियुक्तियाँ व पदोन्नतियाँ नहीं होतीं ।

(c) पदसोपान नहीं होता, न ही स्पष्ट अधिकार क्षेत्र होता है ।

(क) पूर्ववर्ती से बंधे नहीं होते ।

(ii) नैत्यिकता भी प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग के चरित्र को प्रभावित करती है -

(a) भर्ती के नियम बनाए जाते हैं ।

(b) चमत्कारिक उत्तराधिकारी के चयन का प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग की चयन विधि पर प्रभाव पड़ता है ।

(c) नित्यक्रम में बंधा कर्मचारी वर्ग अपनी आर्थिक स्थिति को धर्मवृत्तियों, जागीरों, पदों आदि से सुरक्षित कर सकता है ।

(iii) सत्तावाद विरोधी दिशा में चमत्कारी की नैत्यिकता भी प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग के चरित्र को प्रभावित करती है

(a) कर्मचारी वर्ग के लिए चुनाव का सिद्धान्त लागू किया जा सकता है ।

(b) कर्मचारी वर्ग के चुनाव से नेता की सत्ता में कटौती की प्रवृत्ति होगी ।

(c) जब तक जनमत संग्राहक नेता तक चुनाव सीमित रहता है, तब तक कर्मचारी वर्ग सामान्यतया निजि निष्ठा के आधार पर चुना जाएगा (चयन की कोई विवेकपूर्ण कसौटी नहीं, न विशिष्ट कार्यक्षेत्र तथा न ही तकनीकी क्षमता) ।

(iv) नियुक्तियाँ, पदोन्नतियाँ, पारिश्रमिक और कार्मिक प्रशासन के अन्य क्षेत्रों के लिए कोई औपचारिक नियम नहीं होते । उसी प्रकार शिष्य अपने नेता का आदेश स्वीकार करते हैं, मुख्यत: इसलिए कि वे उसके अतिमानवीय और अतिप्राकृतिक गुणों में विश्वास रखते हैं । प्रशासनिक कार्य विधियों के निर्देशन के लिए कोई विधि सम्मत नियम नहीं होते तथा प्रशासनिक कार्यो की परम्परा का सम्मान किया जाता है ।

वेबर ने सुझाव दिया है कि चमत्कारी प्राधिकार का नैत्यिकीकरण या संस्थानिकीकरण इस प्रकार किया जा सकता है कि प्राधिकार व्यवस्था चमत्कारी नेता के दृश्य पर से हटने के बाद भी चलती रहे । चमत्कार का नैत्यिकीकरण एक सत्तावादी या सत्तावाद-विरोधी दिशा में किया जा सकता है । देववाणी के उपयोग से लेकर चमत्कारी स्टॉफ द्वारा मनोनयन तक की भिन्नता लिए सत्तावादी प्रक्रियाएँ पायी जाती हैं । दूसरी ओर जनमत संग्रह का संस्थानिकीकरण एक जनतांत्रिक आधार के करिश्में को नैत्यिक कर सकता है । नैत्यिकीकृत चमत्कार के विविध 'रूपों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक स्टाफों की आवश्यकता होती है ।

यह स्पष्ट है कि वेबर ने चमत्कारिक प्राधिकार प्रणाली के अन्तर्गत प्रशासनिक स्टॉफ के अपने विश्लेषण में सामाजिक-सांस्कृतिक आस्थाओं एवं मूल्यों के इस प्रकार की प्रणाली पर पड़ने वाले प्रभाव पर बल दिया है । राजनीतिक प्रणाली का चमत्कारी रूप (उच्च नेतृत्व) बड़ी सीमा तक, प्रशासनिक वर्ग, कर्मचारी वर्ग (शिष्यो) की प्रकृति को निर्धारित करता है । स्वयं शिष्यों का समर्थन चमत्कारी नेतृत्व के जीवित रहने के लिए निर्णायक है, तथापि इसके आगे, चमत्कार का नैत्यिकीकरण प्रशासनिक स्टॉफ के चुनाव के लिए कार्य विधि के सुधार को प्रभावित करता है । नैत्यिकीकरण प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग के लाभों जागीरों और पदों द्वारा आर्थिक स्थिति को सुरक्षित करने के तरीकों को भी प्रभावित करता है ।

यह स्पष्ट है कि वेबर का चमत्कारी प्राधिकार का विचार उन उदीयमान राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियों के अध्ययन में सहायक हो सकता है, जहाँ कि तथाकथित चमत्कारी नेतृत्व का नैत्यिकीकरण हो रहा है । वास्तव में, प्राय: किसी भी राजनीतिक प्रणाली में चमत्कारी तत्वों को देखा जा सकता है । इस प्रकार की वैयक्तिक निष्ठा 'आधुनिकीकृत' राष्ट्रों के मध्य की विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों में एक महत्त्वपूर्ण घटक है । यद्यपि वैध विवेकपूर्ण प्राधिकार इस प्रकार के राष्ट्रों की सामान्य रूप से लक्षणीकृत प्राधिकार संरचना है ।

8.4.3 वैध विवेकपूर्ण सत्ता

जहाँ कहीं नियमों की ऐसी प्रणाली है जो निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार न्यायिक और प्रशासकीय रूप से प्रयुक्त होती है तथा जो एक नियमित समूह के सभी सदस्यों के लिए वैध है, वहाँ वैधानिक सत्ता है । जो व्यक्ति आदर्श की शक्ति को कार्यान्वित करते हैं, वे विशिष्ट रूप से श्रेष्ठ' होते हैं । वे कानून द्वारा सम्मत प्रविधि के अनुसार नियुक्त होते हैं या चुने जाते हैं तथा वैधानिक व्यवस्था के अनुरक्षण के लिए स्वयं निर्देशित रहते हैं ।

एक विधि सम्मत एवं विवेक सम्मत प्राधिकार प्रणाली में आज्ञानुवर्तिता कानूनी रूप से स्थापित अवैयक्तिक नियमों का अनुकरण करती है । (वे नियम जो अपने विवेकसंगत चरित्र के आधार पर न्यायोचित माने गये हैं) वैध विवेकपूर्ण प्राधिकार प्रणाली दो प्रकार से विवेकपूर्ण प्रतीत होती है -

(i) राजनीति तंत्र में प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए साधनों हेतु प्रयुक्त नियमों के सामंजस्य में, और

(ii) उपलब्धि की सार्वभौमिक कसौटी में जो तंत्र में कार्यरत व्यक्तियों पर लागू की जाती है ।

8.4.3.1 वैध विवेकपूर्ण सत्ता की विशेषताएँ

(i) इसमें सत्ता का आधार विधान होता है । सत्ता के इस रूप में नेता को न तो परम्परा के कारण, न ही उसके करिश्माई गुणों के कारण स्वीकार किया जाता है । अपितु उसका चुनाव उसकी योग्यता के आधार पर किया जाता है ।

(ii) जो व्यक्ति इन आदेशों (विधान) के अधीन हैं, वे वैधानिक रूप से समान हैं, तथा वे विधान का पालन करते हैं न कि इस विधान को कार्यान्वित करने वाले लोगों का । ये नियम उप उपकरण के लिए प्रयुक्त होते हैं जो वैधानिक प्रभुता की प्रणाली को कार्यान्वित करते हैं । यह संगठन अबाध्य होता है ।

(iii) इसके अधिकारीगण उन नियमों के अधीन होते हैं, जो इनकी सत्ता की सीमा निर्धारित करते हैं ।

(iv) सारी कार्यवाही वैध होने के लिए लिखित में होनी चाहिये, इस प्रकार राज्य द्वारा प्रतिपादित कुछ सामान्य नियमों के अनुसार उत्पन्न अनेक पद ऐसे हैं जिनके साथ एक विशेष प्रकार की सत्ता जुड़ी होती है । इस कारण जो भी व्यक्ति उन पदों पर आसीन होते हैं, उनके हाथों में उन पदों से सम्बन्धित सत्ता भी चली जाती है ।

(v) इसमें सत्ता का स्रोत व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा में निहित नहीं होता है, अपितु जिन नियमों के अन्तर्गत वह एक विशिष्ट पद पर आसीन है, उन नियमों की सत्ता में निहित होता है ।

इसलिए उसका क्षेत्र वहीं तक सीमित है, जहाँ तक की वैधानिक नियम व्यक्ति को विशिष्ट अधिकार प्रदान करते हैं । एक व्यक्ति को वैधानिक नियम के अन्तर्गत जितना अधिकार प्राप्त हुआ है, उसके बाहर या उससे अधिक सत्ता का प्रयोग वह व्यक्ति नहीं कर सकता है । इस प्रकार व्यक्ति का वैधानिक सत्ता का प्रयोग वह व्यक्ति नहीं कर सकता है । इस प्रकार व्यक्ति का वैधानिक सत्ता और उसके बाहर के क्षेत्र में (अर्थात् उस क्षेत्र में जिसमें वह एक व्यक्तिगत या निजी हैसियत से रहता है) बुनियादी भेद है ।

(vi) एक जटिल समाज में वैधानिक सत्ता प्रत्येक व्यक्ति के हाथों में नहीं होती है, बल्कि इसमें भी एक ऊंच-नीच का संस्तरण होता है, अर्थात् वैधानिक आधार पर समाज में उच्च और निम्न सत्ताएँ होती हैं ।

(vii) इस सत्ता में कार्यरत व्यक्तियों के लिए यह आवश्यक है कि वे तंत्र में व्यक्तिगत सफलता प्राप्त करने के लिए विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करें तथा इस प्रकार तंत्र के सामान्य लक्ष्यों को भी संबल प्रदान करें ।

(viii) आज्ञानुवर्तिता वैध रूप से स्थापित निर्वैयक्तिक आदेश के प्रति होती है ।

(ix) कानूनी मानदण्डों की स्थापना विभिन्न आधारों (कार्य-साधकता मूल्य आदि) पर हो सकती है।

(x) विशिष्ट विषयों के लिए सामान्य नियम जो सौद्देश्य रूप से स्थापित किए गए हैं, लाग किये जाते हैं ।

(xi) प्राधिकारी व्यक्ति किसी पद पर आसीन होता है ।

(xii) आदेश का पालन करने वाला व्यक्ति केवल कानून का पालन करता है, किसी व्यक्ति की आज्ञा का नहीं ।

(xiii) एक वैध विवेकपूर्ण प्रणाली में प्राधिकार का मूल स्रोत एक अन्य व्यवस्था (करिश्मा) हो सकती है ।

8.4.3.2 वैध विवेकपूर्ण सत्ता में कर्मचारी वर्ग (नौकरशाही)

वेबर का कहना है कि वैसे तो प्रत्येक सत्ता में एक प्रशासनिक तंत्र (कर्मचारी वर्ग) होता है लेकिन जो कर्मचारी वर्ग वैध विवेकपूर्ण सत्ता में पाया जाता है, उसे नौकरशाही कहते हैं ।

चित्र - 3

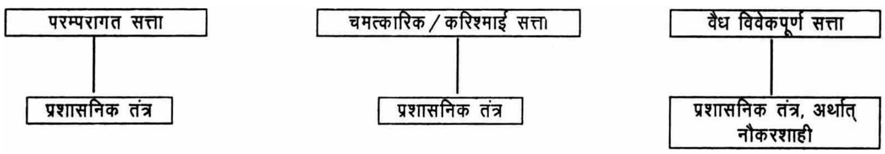

वेबर के अनुसार, नौकरशाही केवल वैध विवेकपूर्ण सत्ता में ही पाई जाती है । मैक्स वेबर के नौकरशाही पर प्रस्तुत अब तक अनेक समाजशास्त्रियों एवं राजनीतिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत विचारों में विशिष्ट हैं । वेबर ने अपनी समाजशास्त्रीय रचनाओं में नौकरशाही या अधिकारी तंत्र को बहुत अधिक महत्त्व दिया है । वेबर का कहना है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

8.5 वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की विशेषतायें
(Characteristics of Weber's Bureacuracy Model)

वेबर ने नौकरशाही को प्रशासन की तर्क पूर्ण व्यवस्था माना है । उनके मतानुसार संस्थागत मानव व्यवहार में तर्क-पूर्णता लाने का सर्वोत्तम साधन नौकरशाही है । नौकरशाही के आदर्श रूप की कतिपय विषेशताओ का वर्णन मैक्स वेबर ने किया है । साथ ही यह धारणा भी प्रकट की है कि यदि वास्तविक जगत के किसी संगठन में ये विशेषतायें उपलब्ध न हों तो यह आदर्श-रूप का दोष नहीं है, वरन् इस बात का प्रतीक है कि उस संगठन का उतने ही अंशों तक नौकरशाहीकरण नहीं हो सका है। अपनी आदर्श विशुद्धता में यह आदर्श रूप यर्थाथ जगत में कभी उपलब्ध नहीं होता । मैक्स वेबर द्वारा वर्णित नौकरशाही प्रतिमान की विशेषतायें निम्न है -

1. **स्पष्ट श्रम विभाजन (Clearcut Division of Labor) :** वेबर ने अपने मॉडल के आधार पर श्रम विभाजन किया है । नौकरशाही संगठन के सभी कर्मचारियों के बीच कार्य का सुनिश्चित तरीके से स्पष्ट वितरण किया जाता है तथा प्रत्येक कर्मचारी को अपना कार्य प्रभावशाली रूप से सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है ।
2. **विशिष्टीकरण (Specialisation) :** अधिकारी तंत्र के संगठन में कार्मिकों की विशेष योग्यता पर अधिक बल दिया जाता है । जो व्यक्ति जिस काम में विशेष योग्यता रखता है, उसे वही काम सौंपा जाता है, अर्थात् प्रशासनिक कार्यो के काफी जटिल एवं तकनीकी होने के कारण कर्मचारियों को उनकी विशेषज्ञता के आधार पर कार्य दिया जाता है ।

चित्र - 4

वेबर के नौकरशाही मॉडल की विशेषतायें

(Characteristic of Weber's Bureaucracy Model)

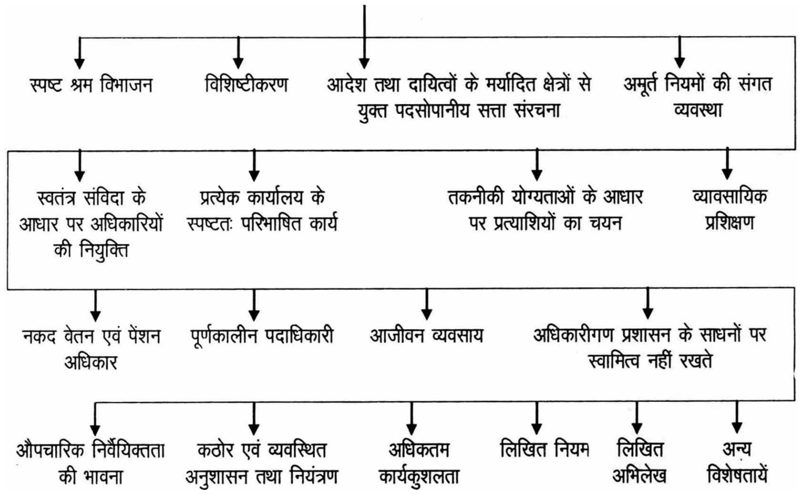

3. **आदेश तथा दायित्वों के मर्यादित क्षेत्रों से युक्त पदसोपानीय सत्ता संरचना (Hierarchical Authority Structure with Limited Areas of Command and Responsibility):** नौकरशाही संगठन पदसोपान के सिद्धान्त का अनुशीलन करता है । तद्नुसार प्रत्येक अधीनस्थ, कार्यालय एवं कर्मचारी उच्चतर कार्यालय एवं कर्मचारी के नियंत्रण में रहता है । अधीनस्थ कर्मचारी

के दायित्वों का समुचित निर्वाह कराने हेतु प्रत्येक जाँच अधिकारी को वांछनीय सत्ता प्रदान की जाती है, जिसका प्रयोग करते हुए वह अपने अधीनस्थों को आवश्यक निर्देश तथा आदेश जारी कर सकता है ।

4. **अमूर्त नियमों का संगत व्यवस्था (Consistent System of Abstract Rules) :** नौकरशाही संगठन में तकनीकी नियमों अथवा नार्म्स के आधार पर कार्यालय की समूची कार्यवाही का नियमन किया जाता है । कार्यालय के सभी कर्मचारियों को इन नियमों अथवा नार्म्स का समुचित प्रशिक्षण दिया जाता है । ऐसा प्रशिक्षण नौकरशाही संगठन में प्रवेश की पूर्व शर्त भी बना दिया जाता है। संगठन में अमूर्त नियमों की एक संगत व्यवस्था होने के कारण कार्यो में एकरूपता बनी रहती है तथा विभिन्न कार्यो के बीच समन्वय करना सरल हो जाता है ।
5. **स्वतन्त्र संविदा के आधार पर अधिकारियों की नियुक्ति (Officials Appointed on the basis of Free Contract):** नौकरशाही संगठन में प्रत्येक कर्मचारी के साथ स्वतन्त्र समझौता किया जाता है । कोई भी व्यक्ति किसी के दबाव या बाध्यता के कारण पद ग्रहण नहीं करता । प्रत्येक व्यक्ति को प्रवेश का समान अधिकार प्राप्त है ।
6. **प्रत्येक कार्यालय के स्पष्टत: परिभाषित कार्य (Clearly Defined work of Each office):** विधिक रूप से प्रत्येक पद के कार्यो को परिभाषित और मर्यादित कर दिया जाता है जिससे की कोई किसी के कार्यो में हस्तक्षेप न कर सके ।
7. **तकनीकी योग्यताओं के आधार पर प्रत्याशियों का चयन (Candidates are selected on the Basis of Technical Qualifications) :** नौकरशाही संगठन के कर्मचारी निर्वाचित नहीं होते वरन् योग्यता परीक्षाओं द्वारा उनकी तकनीकी योग्यता जाँचने तथा आवश्यक प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रमाण-पत्र देखने के बाद उनकी नियुक्ति की जाती है । संगठन के कर्मचारियों को स्वेच्छापूर्वक हटाने के विरूद्ध सुरक्षाएँ प्रदान की जाती है । नौकरशाही सेवा एक आजीवन व्यवसाय बन जाती है । इसमें पदोन्नति वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर की जाती है । इसके साथ-साथ कर्मचारीगण संगठन के साथ एकरूपता स्थापित करके उसके लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अधिक सजग (जागरूक) रहते हैं ।
8. **व्यावसायिक प्रशिक्षण (Occupational Training) :** चूँकि नियमों का उपयोग एक विवेकपूर्ण प्रक्रिया है, प्राधिकारी व्यक्तियों को अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ बनाने के लिए विशेषीकृत प्रशिक्षण आवश्यक है । अत: कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के तीन उद्देश्य हैं -

   (i) उनके ज्ञान में वृद्धि करना,

   (ii) उनकी योग्यता व कार्य कुशलता में वृद्धि करना, एवं

   (iii) उनके दृष्टिकोण को बदलना ।
9. **नकद वेतन एवं पेन्शन अधिकार Monthly Salary and Pension Rights) :** नौकरशाही संगठन में संगठन की आय के आधार पर कर्मचारी का वेतन तय नहीं किया जाता, वरन् पदसोपान में उसका स्तर, पद के दायित्व, सामाजिक स्थिति आदि बातों का ध्यान रखकर ही वेतन एवं पेन्शन का निर्धारण किया जाता है ।

10. **आजीवन व्यवसाय (Career Service) :** नौकरशाही संगठन में सेवा मुख्य व्यवसाय मानी जाती है । संगठन का प्रत्येक कर्मचारी अपने पद को आजीवन मानता है । वरिष्ठता एवं कार्य सम्पन्नता के आधार पर उसकी पदोन्नति होती रहती है ।

11. **पूर्णकालीन पदाधिकारी (Official Post is the Sole Occupation):** नौकरशाही संगठन का प्रत्येक कर्मचारी अपने कार्यालय को अपना पूरा समय प्रदान करता है । अवैतनिक रूप से अथवा आंशिक समय में काम करने वाले कर्मचारी द्वितीय स्तर के माने जाते हैं ।

12. **अधिकारीगण प्रशासन के साधनों का स्वामित्व नहीं करते (Officials are separated from ownership of Means of administration) :** नौकरशाही संगठन का प्रत्येक पदाधिकारी प्रशासन के साधनों के स्वामित्व से अलग रहता है । वह अपनी पद-स्थिति का विनियोग नहीं कर सकता । कार्यालय को व्यक्तिगत आवास स्थल से पृथक रखा जाता है । अधिकारी 'पद' का दुरूपयोग अपने हित के लिए नहीं कर सकते ।

13. **औपचारिक निर्वैयक्तिकता की भावना (A Sprit of Formalistic Impersonality) :** वेबर के मतानुसार, नौकरशाही संगठन का एक आदर्श अधिकारी अपने कार्यालय का संचालन औपचारिक निर्वैयक्तिकता की भावना से करता है । तद्नुसार वह न तो किसी के प्रति घृणा या दुर्भाव रखता है और न ही किसी के प्रति लगाव या उत्साह प्रकट करता है । यह दृष्टिकोण अधिकारियों को सभी व्यक्तियों के प्रति समान आचरण करने को प्रोत्साहित करता है । फलत: संगठन के कार्य निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण बन पाते हैं ।

14. **कठोर एवं व्यवस्थित अनुशासन तथा नियंत्रण (Strict and Systematic Descipline and Control):** नौकरशाही संगठन के किसी भी पदाधिकारी को अनियंत्रित अथवा स्वछन्द नहीं होने दिया जाता है । इसमें नियंत्रण तथा अनुशासन की उपयुक्त व्यवस्था की जाती है । इसमें शक्ति वितरण किया जाता है तथा उत्तरदायित्व एक से अधिक निकायों के बीच बाँट दिये जाते हैं । नौकरशाही पर कार्यपालिका व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के समुचित नियंत्रण की व्यवस्था की जाती है ।

15. **अधिकतम कार्यकुशलता (Maximum Efficiency) :** मैक्स वेबर के कथनानुसार अनुभव से ज्ञात होता है कि विशुद्ध नौकरशाही प्रकार का संगठन तकनीकी दृष्टि से अधिकतम कार्यकुशलता प्राप्त करने में समर्थ है । कार्यकुशलता एवं कार्य की गति की दृष्टि से एक नौकरशाही संगठन तथा गैर नौकरशाही संगठन में वही अंतर है जो मशीनी उत्पादन तथा हाथ से किये जाने वाले उत्पादन के बीच में होता है । यह कार्य-कुशलता कई कारणों का परिणाम है जैसे - प्रत्येक कर्मचारी अपने कार्य का विशेषज्ञ होता है, वह पक्षपातहीन रूप से कार्य करता है, उसके कार्यो में उचित समन्वय तथा नियंत्रण रहता है, कार्यो में यांत्रिकता एवं पहल का अभाव होने के कारण ये द्रुतगामी बन जाते हैं, आदि ।

16. **लिखित नियम (Written Rules):** अधिकारी तंत्र के प्रशासन में भली प्रकार से संचालन के लिए नियम, कानून आदि बनाये जाते हैं । जो लिखित होते हैं, अधिकारी तंत्र को इनके अनुसार कार्य करना होता है । इससे वस्तुनिष्ठता आती है ।

17. लिखित अभिलेख (Written records): पूर्व निर्णयों के लिखित अभिलेख रखे जाते हैं कि निर्णय किन नियमों के आधार पर लिए गए । उन निर्णयों की वैधता तार्किक होती है । इन अभिलेखों से कर्मचारियों के बारे मे जानकारी प्राप्त करने में सुविधा रहती है । लिखित दस्तावेज सम्पूर्ण अधिकारी तंत्रीय प्रक्रिया का केन्द्र है, क्योंकि सभी निर्णय लिखित होते हैं ।

18. अन्य विशेषतायें (Other Characteristics)

(1) यह कर्मचारी पर आदेशात्मक नियंत्रण करने का सर्वाधिक विवेकपूर्ण साधन है ।

(2) तकनीकी ज्ञान की श्रेष्ठता का प्रमुख स्रोत होता है ।

(3) विद्‌यमान अधिकारी तंत्रीय प्राधिकार किसी अन्य अधिकारी-तंत्रीय प्राधिकार के स्थापित होने पर ही किया जा सकता है ।

(4) अधिकारी तंत्रीकरण का एक मुख्य स्रोत पूँजीवाद रहा है ।

(5) अधिकारी तंत्र का विकास सामाजिक स्तरीकरण को बढ़ावा देता है और सामाजिक स्तरीकरण अधिकारी तंत्र का समर्थन करता है । (योग्यता के आधार पर नियुक्ति) ।

वेबर ने आदर्श नौकरशाही प्रतिमान' की उक्त विशेषताओं के साथ-साथ यह भी स्पष्ट किया कि वैधता व विवेक संरचनात्मक विशेषताओं को प्रभावित करते हैं, जिससे दक्षता बढ़ती है ।

चित्र 5

वेबर के मतानुसार प्रोटेस्टेन्ट नैतिकता शासन कर्मनिष्ठता पर बल देता है, जिससे पूँजीवाद का विकास हुआ । पूँजीवाद से बड़े-बड़े संगठन बरते हैं, इसे अधिकारी तंत्र कहते हैं ।

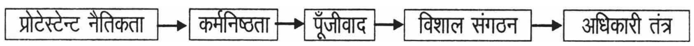

इस प्रकार उपरोक्त विषेशताओं के अलावा वेबर ने चार अन्य महत्त्वपूर्ण बातें अधिकारी तंत्र की बताई हैं

(i) अधिकारी तंत्र में खुली प्रक्रिया होने से सभी वर्ग के लोगों को प्रवेश का अधिकार मिलता है। इससे पक्षपात की सम्भावना नहीं होती तथा निर्णय भी वस्तुनिष्ठ होते हैं ।

(ii) अधिकारी तंत्र समाज में समता उत्पन्न करता है ।

(iii) अधिकारी तंत्र समाज का सेवक और राज्य का अंग है । राज्य की नीतियों व निर्णयों को लागू करने की जिम्मेदारी अधिकारी तंत्र की होती है ।

(iv) अधिकारी तंत्र सर्वाधिक विवेकपूर्ण प्रशासनिक तंत्र है । उच्चतम दक्षता प्राप्त यह ऐसी संस्था है जिसमें विवेक है । इस प्रकार से अधिकारी तंत्र विशेषतापूर्ण है । इसका अपना महत्व है ।

8.6 नौकरशाही का उदय

वेबर के अनुसार, ' सभी क्षेत्रों में व्यवसाय समूहों के संगठनों के आधुनिक रूपों का विकास अधिकारी तंत्र के विकास और निरन्तर विस्तार का समवर्ती है । यह तथ्य चर्च और राज्य, सेना और राजनीतिक दल, आर्थिक उद्‌यम, सभी स्तर के कारकों को बढ़ावा देने वाले, संगठनों, निजी संघों, क्लबों तथा ऐसे अनेक संगठनों के लिए बिल्कुल सच है । " इसका विकास आधुनिक पश्चिमी राज्यों की

सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है । वेबर का मानना है कि पूँजीवाद के उदय ने नौकरशाही के 'उद्भव एवं विकास को सरल एवं सुगम बनाया है । उन्होंने कहा है कि, ' वर्तमान समय मे मुख्यत: बाजार आधारित अर्थव्यवस्था की यह माँग है कि प्रशासन का अधिक से अधिक काम सूक्ष्मता और यथातथ्यता के बिना किसी द्विअर्थीपन के पूरे लगन के साथ और जहाँ तक सम्भव हो सके उतनी शीघ्रता से निपटाया जाये। " वेबर की दृष्टि में, ' 'आधुनिक बड़े पूँजीवादी उद्यम सतर्क नौकरशाही पर आधारित संगठनों के अद्वितीय आदर्श साबित हए हैं । "

8.7 नौकरशाही पर नियंत्रण

वेबर ने कभी भी नौकरशाही को एक स्वतंत्र इकाई नहीं माना है । वे इसे एक मशीन मानते हुए कहते हैं कि ' 'नौकरशाहों पर नियंत्रण रखने के लिए वह मशीन की भाँति कोई भी कार्य कर सकती है । " वेबर नौकरशाही के प्रभाव को कम करने के लिए कुछ नियंत्रण लगाना ठीक समझते हैं । यथा - प्रशासकीय भेदों को दूर करना, प्रभावी नियंत्रण की स्थिति आदि । वेबर के अनुसार, ' 'नौकरशाही स्वभावत: एक कमजोर और कम सूचनाएँ और जानकारी रखने वाली संसद का स्वागत करती है क्योंकि यह अज्ञानता किसी न किसी तरह से नौकरशाही के हितों की सुरक्षा में काम आती है । " मार्टिन एल्ब्रो ने अनुसार, ' वेबर ने सत्ता तंत्र के प्रभाव क्षेत्र को सामान्यतया सीमित रखने और विशेषकर नौकरशाही के शक्ति संचय पर अंकुश लगाने के लिए अनेक प्रकार के उपायों और व्यवस्थाओं पर विचार किया है । " एल्ब्रो का कहना है कि वेबर ने इस तरह के पाँच उपाय स्पष्ट किए हैं -

(i) सहयोजना (निर्णयन प्रक्रिया में एक से अधिक व्यक्तियों को शामिल किया जाये) ।

(ii) शक्तियों का पृथक्करण (एक ही कार्य के लिए दो या अधिक संस्थाओं में जिम्मेदारी को बाँटना)।

(iii) अव्यवसायी प्रशासन (यह विशेषता विषेशज्ञों की माँगो पर पूरी खरी नहीं उतर सकती, जो आधुनिक समाजों में की जाती है) ।

(iv) प्रत्यक्ष जनतंत्र ।

(v) प्रतिनिधित्व ।

8.8 नौकरशाही बनाम प्रजातंत्र

वेबर के मतानुसार प्रजातंत्र में अधिकारी तंत्र (नौकरशाही) को अपने निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों के अधीन रहना चाहिये । लेकिन वेबर इस बात से भी चिन्तित रहते थे कि अधिकारी तंत्र के पदासीन अधिकारी ही कहीं राज्य के स्वामी न बन जायें । इसके साथ-साथ वेबर के चिन्तित रहने का एक और कारण था कि नौकरशाही का वह गुण जो आधुनिक समाज के लिए आवश्यक माना जाता है, वही आधुनिक प्रजातंत्र के लिए खतरा सिद्ध हुआ है ।

8.9 मैक्स वेबर के विचारों की आलोचनाएँ

नौकरशाही के अध्ययन तथा विवेचन में मैक्स वेबर का योगदान पथ-प्रदर्शक का रहा है । लोक प्रशासन के अध्ययन में कोई अन्य ऐसा प्रतिमान नहीं है जो विस्तार, स्पष्टता और परिशुद्ध विश्लेषण में वेबर के आदर्श रूप प्रतिमान के समान हो । वेबर के प्रतिमान में विस्तृता और अपेक्षाकृत सरलता के गुण पाये जाते हैं । फिर भी कई आलोचकों का कहना है कि प्रतिमान में कई कमियाँ हैं क्योंकि

यह प्रतिमान वेबर की परिकल्पना पर आ धारित है । अत: वास्तविकता के धरातल पर खरा नहीं उतरता। वेबर की मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं - कार्ल फ्रेडरिक के अनुसार, ' 'वेबर के प्रतिमान में अनुभवमूलक आधार की कमी है, क्योंकि वेबर अपनी आदर्श रूप निर्मितियों को मानसिक निर्मितियों की तरह प्रस्तुत करता है, जो न तो उच्चतर विचार से निगमनात्मक तार्किक प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की गई हैं, न अनुभवमूलक सामग्री की व्याख्या से तैयार की गई हैं और न ही इस प्रकार की सामग्री पर आधारित कार्यात्मक परिकल्पना के रूप में की गई है.

वेबर का प्रतिमान अधिकारी की तकनीकी क्षमता के आधार पर 'नियुक्ति' और 'वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा का पालन' इन दो आवश्यकताओं के बीच सम्भावित द्वन्द्व पर ध्यान नहीं देता, तकनीकी दृष्टि से विशेषज्ञ एक नवागन्तुक कर्मचारी केवल वरिष्ठता के कारण पदसोपान में उच्च पदासीन अधिकारी के आदेश का पालन नहीं कर सकेगा । इस प्रकार फ्रेडरिक का कहना है कि वेबर के मॉडल में द्वन्द्व स्वाभाविक अन्तर्निहित है । जैसे - पदसोपान व विशिष्टीकरण दोनों एक साथ उपयोग में नहीं लाए जा सकते ।

फ्रेडरिक का यह भी कहना है कि वेबर ने नौकरशाही के पूर्णत: औपचारिक रूप का अध्ययन किया है तथा सामाजिक घटनाओं या अनौपचारिक सम्बन्धों को केवल प्रसंगवश मान कर छोड़ दिया है । जबकि तथ्य यह है कि अनौपचारिक कार्य एवं संबंध औपचारिक संगठन के सुचारू कार्य संचालन के लिए अति आवश्यक हैं ।

पीटर ब्लाउ ने अपनी पुस्तक ' 'डायनामिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी' ' में तार्किक नौकरशाही का वर्णन किया है । ब्लाउ का कहना है कि तार्किकता परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है एवं मुख्य बात है 'प्रयोजन की प्राप्ति', अर्थात् ब्लाउ ने 'साधन' के बजाय 'साध्य' को अधिक महत्त्व दिया है । उनका कहना है कि हमारा प्रयोजन (साध्य) है ' 'दक्षता की उपलब्धि' । अत: वेबर द्वारा दिए गए सभी सिद्धान्तों को शुद्ध रूप से न अपनाकर परिस्थिति के अनुसार उनका समंजन किया जाना चाहिये । अत: ब्लाउ का कहना है वेबर का आदर्श रूप अधिकारी तंत्र दक्षता के 'उच्चतम' रूप को उपलब्ध करने में सक्षम नहीं है ।

रिग्ज का कहना है कि वेबर के अधिकारी तंत्र के विश्लेषण में दो परस्पर विरोधी विचारों का आभास मिलता है । एक और तो वेबर का मन्तव्य है कि बहुत से पारम्परिक एवं आधुनिक समाजों में लगभग समान लक्षण युक्त अधिकारी तंत्र का जन्म हुआ, तो दूसरी ओर उसके अनुसार अधिकारी तंत्र अपने आदर्श रूप में केवल ऐतिहासिक उदाहरणों में ही स्थूल रूप से प्रकट हुआ । वेबर ने आधुनिक विकास में पूर्ण 'अधिकारी तंत्रीकरण की प्रवृत्ति की भविष्यवाणी भी की है ।

राबर्ट मर्टन ने अपने लेख “Bureaucratic Structure and Personality” में बताया है कि वेबर ने नौकरशाही के केवल सुकार्य ही बताए हैं, विकार्य नहीं बताए, लेकिन वास्तव में वेबर द्वारा बताये गये सुकार्य ही विकार्य बन जाते है, जैसे - जरूरी नहीं कि अत्यधिक प्रशिक्षण सदैव कार्यकुशलता बढ़ाने में सहायक हो, यह बाधक भी हो सकता है क्योंकि एक ही प्रकार का प्रशिक्षण पाने के बाद नौकरशाह बदली हुई परिस्थितियों में काम नहीं कर पाता, जिससे कार्यकुशलता घटती है । इस प्रकार उसका कहना है कि नियमों व कानूनों का कठोरता से पालन करने वाले नौकरशाह संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति की अवहेलना करके भी नियमों व कानूनों का कट्टरता से पालन करते हैं, जिसे मर्टन ने 'डिस्प्लेसमेंट ऑफ

गोल्स कहा है । इससे 'भी संगठन के उद्देश्य प्राप्ति में रूकावट आती है, अत: वेबर द्वारा बताये गये सुकार्य ही विकार्य बन जाते हैं ।

जेकब का कहना है कि वेबर का आदर्श रूप पहले तो ठीक था लेकिन आज के बदलते हुए परिवेश में विकासशील देशों में यह सही नहीं बैठता, क्योंकि यह 'आदर्श व सिद्धान्तों' पर आधारित है ।

गोल्डन के अनुसार वेबर अपने मॉडल में बिल्कुल सही नहीं है । उसने एक लेख लिखा 'सामाजिक समस्या के रूप में लालफीताशाही" और कहा कि वेबर ने नौकरशाही की विशेषताओं में उसका कहीं भी वर्णन नहीं किया, जो कि एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है ।

इस प्रकार वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही के 'आदर्श रूप' की आलोचनाओं से साहित्य भरा हुआ है । लेकिन उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद वेबर का'आदर्श रूप' नौकरशाही प्रतिमान विद्वानों के लिए सदैव मार्गदर्शन का काम करेगा ।

8.10 सारांश

नौकरशाही के अध्ययन तथा विवेचन में मैक्स वेबर का योगदान एक पथ-प्रदर्शक का रहा है। नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा के जनक जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक ' 'द थ्योरी ऑफ सोश्यल एण्ड इकोनोमिक ऑर्गेनाइजेशन ' में प्रशासन की तर्क पूर्ण व्यवस्था का विवेचन किया है । जब वेबर ने यह मॉडल बनाया था, तब पर्यावरण की स्थिरता को औद्योगिक विकास में सहायक माना जाता था और उस समय विश्व के मानचित्र पर विकासशील देशों का उदय बहुत कम मात्रा में हुआ था । अत वेबर ने अपना मॉडल परिवर्तित वातावरण के सदंर्भ में नहीं जाँचा । लेकिन इतने पर भी नौकरशाही के अध्ययन में वेबर का अद्वितीय स्थान है । इनके कटु आलोचक फ्रेडरिक ने उनकी प्रतिभा को स्वीकार करते हुए उसे अध्ययन की महत्त्वपूर्ण दिशाएँ खोलने वाला बताया है । नौकरशाही का स्वरूप प्रत्येक राष्ट्र में भिन्न होता है क्योंकि यह वहाँ के समाज की संस्थाओं तथा मूल्यों को अभिव्यक्त करती है । मैक्स वेबर ने बड़े आकार के संगठन का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । नौकरशाही की एक सामान्य विशेषता यह है कि यह परिवर्तन का विरोध और शक्ति की कामना करती है । 'आदर्श रूप' प्रतिमान अनुसंधान का एक प्रभावशाली साधन है तथा नौकरशाही का विश्लेषण प्रारम्भ करने का स्थल है । नौकरशाही के वर्तमान विद्यार्थियों के लिए वेबर प्रेरणा के स्रोत हैं और कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि वह भविष्य के विद्यार्थियों को भी प्रेरणा दे ।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा की समीक्षा कीजिये ।
2. वेबर की सत्ता की अवधारणा की व्याख्या कीजिये ।
3. वेबर के योगदान की समीक्षा कीजिये ।

8.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. आर. पी. जोशी एवं अंजु पारीक, प्रशासनिक विचारक, रावत पब्लिकेसन्स जयपुर, 2005
2. प्रसाद, प्रसाद एवं सतनारायना एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली,

3. सिंह आर. एम., मेनेजमेंट. थोट एण्ड थिंकर सुलतान चन्द, नई दिल्ली, 1984
4. सप्रू आर. के., एडमिनिस्ट्रेटिव थ्यौरीज एण्ड मेनेजमेंट थोट आर. एच. आई, नई दिल्ली, 2008

इकाई - 09

मेक्स वेबर - II

इकाई; की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 वेबर : संक्षिप्त जीवनी एवं बौद्धिक यात्रा
9.3 वेबर का समाजशास्त्रीय योगदान
9.3.1 वस्तुपरकता और मूल्य-तटस्थता'
9.3.2 आदर्श. प्रारूप
9.3.3 प्रभाविता और तार्किकता
9.4 प्राधिकार
9.4.1 परंपरागत प्राधिकार
9.4.2 करिश्माई प्राधिकार
9.4.3 तार्किक-वैध प्राधिकार
9.5 ब्यूरोक्रेसी : दफ्तरशाही या कार्यालय तंत्र
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्न
9.9 सन्दर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मेक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित संबोधो को समझ सकेंगे ।
- मेक्स वेबर के अधिकारी तंत्र संबंधी विचार स्पष्ट कर सकेंगे ।
- मेक्स वेबर के समाजशास्त्रीय योगदान पर चर्चा कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

मेक्स वेबर का नाम समाज विज्ञान के प्रमुख संस्थापकों में गिना जाता है । समाज के विभिन्न पक्षों का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने की दिशा में उनके द्वारा किये गए प्रयासों ने नींव के पत्थर का काम किया है । उन्होंने अपने देश और समाज तक ही अपनी अध्ययन को सीमित नहीं रखा और एक ऐसे सैद्धान्तिक धरातल की रचना की जिसके माध्यम से विश्व स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन किये जा सकें और समाज संबंधी सार्वभौमिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा सके । उनकी जीवन-यात्रा इतिहास और अर्थ व्यवस्था के अध्ययन से प्रारम्भ हुई उन्होंने समाजशास्त्र के नये विषय की आधारशिला रखने की चेष्टा की और इस प्रकार समाज विज्ञान के सर्वागीण विकास को उन्होंने गति दी । उनका योगदान

लोक प्रशासन के अध्येताओं के लिए भी महत्वपूर्ण है । ब्यूरोक्रेसी के अध्ययन के लिये जो आदर्श प्रारूप की वेबर ने प्रस्तावना दी उसके आधार पर ढेरों शोध पत्र और ग्रंथ प्रकाश में आए । यहाँ हम उनका संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके सामाजिक विज्ञान को दिये योगदान का उल्लेख करेंगे और उसके उपरान्त वेबर के कतिपय संबोधो (Concepts) और ब्यूरोक्रेसी पर उनके योगदान को समझने की चेष्टा करेंगे।

9.2 वेबर की संक्षिप्त जीवनी और बौद्धिक यात्रा

समाज शास्त्र के इतिहास में मेक्स वेबर का नाम कार्ल मार्क्स (1818- 1983) और एमिल दुर्खाइम (1658 -1917) के साथ समाजशास्त्र के स्थापकों मैं बड़े आदर के साथ लिया जाता है । कार्ल मार्क्स का जन्म वेबर के जन्म से 46 वर्ष पूर्व हु आ था और वे जर्मनी के बौद्धिक जगत में अपनी जगह बना चुके थे । अपने क्रान्तिकारी विचारों और अपनी प्रस्तावित साम्यवादी विचारधारा के कारण मार्क्स को जर्मनी छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा था । किन्तु उनके बाद की पीढ़ियों के विद्वानों ने उनके लेखन का विषद विवेचन किया । कई थे जो उनके विचारों के समर्थक और उनकी विचारधारा के प्रचारक बने । अन्य ऐसे थे जो उस महान लेखक से प्रभावित तो हु ए किन्तु उनकी विचारधारा से सहमत नहीं थे । मेक्स वेबर उनमें से एक थे । उनकी राय में समाजशास्त्रीय विवेचन के लिए यह आवश्यक है कि विवेचक विचारधारा से अप्रभावित रहे और विज्ञान की भांति' मूल्य-तटस्थता (Value Neutrality) और वस्तुपरकता को अंगीकार करें । विज्ञान के इन दबे मूल्यों का पालन करते हु ए वेबर ने समाजशास्त्र की स्थापना में महत्वपूर्ण योग दिया ।

वेबर का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हु आ था । उनके पिता-जिनका नाम भी मेक्स वेबर ही था--एक उद्योगपति थे । वे बिस्मार्क की नेशनल लिबरल पार्टी के सदस्य बने और प्रशियन हाउस ऑफ डेपुटीज के लिए निर्वाचित हु ए ।

अठारह वर्ष की आयु में वेबर हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय में भर्ती हु ए । अपने अध्ययन काल में ही एक वर्ष के लिए मिलिटरी सेवा में उन्हें जाना पड़ा । स्ट्रासबर्ग में--मिलिटरी सेवा के दौरान--वेबर अपनी मौसी के परिवार के निकट सम्पर्क में आए और अपने मौसा हर्मन बॉमगार्टन की विद्वता से अत्यंत प्रभावित हु ए । चूंकि वेबर के पिता के विचार बॉमगार्टन से मेल नहीं खाते थे, उन्होंने वेबर को ' उनसे दूर रहने की राय दी और बर्लिन में ही उनकी आगे की पढ़ाई के लिए प्रबंध किये । अपने पिता पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर होने के कारण उन्हें बर्लिन में ही रहना पड़ा ।

1893 में उनकी मौसेरी बहिन की लड़की मेरिअन श्निटगर से विवाह के बाद बर्लिन विश्वविद्यालय में हो उन्होंने असिस्टेन्ट की नौकरी मिल गई । पर उस नियुक्ति के एक वर्ष बाद ही उन्हें फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय में पॉलिटिकल इकानामी के प्रोफ्रेसर पद पर नियुक्त कर लिया गया । किन्तु वहां से वे एक वर्ष बाद 1896 में हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय चले गये । प्राचीन रोम के भूमि संबंधी इतिहास (एग्रेरियन हिस्ट्री) पर लिखे अपने शोध-प्रबंधों की रचना के उपरान्त वेबर ने पूर्वी जर्मनी की कृषि संबंधी समस्याओं का समाविष्ट विश्लेषण प्रस्तुत किया । अपने फ्रीबर्ग के प्राध्यापक पदीन उद्घाटन भाषण में इस विश्लेषण को प्रस्तुत करते हु ए उन्होंने तत्कालीन जंकर एरिस्टोक्रेसी (अभिजात तंत्र) की जम कर आलोचना की और उसे वर्त्तमान के संदर्भ में अव्यवहारिक बताया । इसके प्रतिस्थापन के रूप में उन्होंने लिबरल इम्पीरियलिज्म (मुआ साम्राज्यवाद) की विचारधारा को प्रस्तावित किया ।

1897 में उनके पिता की मृत्यु के बाद वेबर मानसिक रोगों से ग्रसित हो गए । पूरे पांच वर्षा तक वे अपनी बीमारी के कारण कोई भी बौद्धिक कार्य नहीं कर सके । उन्होंने हाइडलवर्ग विश्वविद्‌यालय के पद से इस्तीफा दे दिया । 1903 में उनकी तबियत- कुछ ठीक हु ई और वे फिर शोध कार्य में जुट गए यद्‌यपि वे नौकरी छोड़ चुके थे । प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर वे फिर पड़ाने लगे । परन्तु 1920 में ही उनकी मृत्यु हो गई ।

यह महत्वपूर्ण है कि अपने जीवन के अंतिम पन्द्रह-सत्रह वर्षो में बीमारी से जूझते हु ए भी वेबर अपने अध्ययन-लेखन में लगे रहे । इरा बीच वे अमरीका भी गए और वहां की पूंजीवादी व्यवस्था से अवगत हु ए । विभिन्न समाजों की अर्थव्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन की प्रेरणा भी उनके विदेश पर्यटन से मिली, और इन अनुभवों और अन्य समाजों के विषय में ज्ञान प्राप्ति के आधार पर ही वेबर कार्ल मार्क्स की अवधारणाओं को चुनौती देने में सक्षम हु ए । मार्क्स की यह मान्यता थी कि किसी भी समाज की आधारशिला उसकी अर्थ व्यवस्था होती है । और उसी पर समाज एवं संस्कृति के विभिन्न उपांगों की रचना होती है । वेबर की एक महत्वपूर्ण कृति द प्रोटेस्टेन्ट एथिक एण्ड द स्पिरिट आफ केपिटलिज्म में इसका जबरदस्त तोड़ प्रस्तुत किया गया है । पूंजीवादी उद्‌यमों की सफलता और प्रोटेस्टेन्ट संप्रदाय (ईसाई धर्म की एक शाखा) के बीच में सांख्यिकी सह संबंध स्थापित करते हु ए उन्होंने कहा कि धन अर्जन और उपार्जन की मनोवृत्ति का धार्मिक आधार होता है । कालिन और उनके अनुयायियों ने प्रोटेस्टेन्ट धर्म में पूर्व-नियति (प्री डेस्टिनेशन) की धारणा का जो विषद विवेचन प्रस्तुत किया है उसी के आधार पर वेबर ने पूंजीवाद की भावना को धर्म की एक परिणति माना है । धर्म और अर्थव्यवस्था के इस संबंध की सर्वव्यापी सैद्धान्तिक पुष्टि हेतु वेबर ने भारत के हिन्दू धर्म और चीन की धार्मिक परम्परा का भी अध्ययन प्रस्तुत किया ।

वेबर के अथक प्रयासों का फल था कि जर्मनी में सामाजिक विज्ञानों की नींव पड़ी । उन्नीसवी शताब्दी में जर्मनी का बौद्धिक जगत विचारधाराओं के दंगल में जुटा था । कार्ल मार्क्स और नीत्जे के बीच विचारधारा के भारी मतभेद थे । वेबर और उनके सहकर्मियों ने वैज्ञानिक और वस्तुपरक ढंग से समाज के विभिन्न पक्षों के अध्ययन की परम्परा डाली । इसके लिए वेबर ने समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति को विकसित करने में भारी योगदान दिया । साथ ही उन्होंने समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य भी तैयार किया । इसके लिये नये संबोधो की रचना और उनका विभिन्न सामाजिक पक्षों के अध्ययन में प्रयोग करना उनकी बौद्धिक यात्रा का एक महत्वपूर्ण कर्म हो गया । इस दृष्टि से उन्होंने जर्मनी के समाज-विज्ञान को राष्ट्रीय समस्याओं के विवेचन से ऊपर उठा कर सार्वभौमिक बनाने की दिशा में आगे बढ़ाया । उनका योगदान धर्म के समाजशास्त्र, राजनीतिक दलों के समाजशास्त्र, लघु-समूहों के व्यवहार के अध्ययन तथा इतिहास के दर्शन आदि विषयों में रहा है । जब उनके मूलत: जर्मन भाषा में लिखे लेखों और ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद हु आ तो उनका प्रभाव पश्चिम के अन्य देशों पर भी पड़ा । समाजशास्त्र का जो आज स्वरूप है उसकी आधार भित्तियां मूलत: वेबर के योगदान की ही है । उनका सबसे अधिक प्रभाव अमरीकी समाजशास्त्र पर देखा जा सकता है । लोक प्रशासन की समाजशास्त्रीय व्याख्या में वेबर का ब्यूरोक्रेसी (अफसर तंत्र या दफ्तरशाही) पर किया गया कार्य आज भी समीचीन और संगत है ।

9.3 वेबर का समाजशास्त्रीय योगदान

हम अब वेबर द्‌वारा प्रतिपादित कतिपय संबंधों और विश्लेषणों का लेखा-जोखा ले । मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि वेबर के लेखन में तीन विषयों की प्रधानता रही है । वे है: प्रभाविता

(डोमिनेशन) की प्रकृति; तार्किकता (रेशनेलिटी) की व्याख्या; और धार्मिक विचारों और आर्थिक गतिविधियों की पारस्परिकता

इन विषयों पर मनन करने के बाद वेबर ने जो समाजशास्त्रीय शोध पद्धति विकसित की है उसके तीन पक्षों पर हम अब चर्चा करेंगें, ये हैं :

1. वस्तुपरकता और मूल्यतटस्थता
2. आदर्श प्रारूप
3. प्रभाविता और तार्किकता

9.3.1 वस्तुपरकता और मूल्य-तटस्थता (ऑब्जेक्टिविटी और वेल्यू न्यूट्रेलिटी)

इन विषयों की विवेचना के लिए वेबर ने यह आवश्यक माना है कि समाज वैज्ञानिक मूल्य-निरपेक्ष या तटस्थ रहे। दूसरे शब्दों में वस्तुपरक विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि विश्लेषक अपने व्यक्तिगत विचारों या मूल्यों को अपने विश्लेषण में आरोपित न करे। वैज्ञानिक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह जिस व्यवस्था का अध्ययन कर रहा है उस व्यवस्था के मूल्यों को स्वीकारे या कि उन मूल्यों की आलोचना इसलिये करे कि वे उसके स्वयं के मूल्यों से मेल नहीं खाते हैं। हिन्दू धर्म का, उदाहरण के तौर पर, अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अध्येता भी हिन्दू ही हो। कोई ईसाई या मुस्लिम अपने धर्म के मूल्यों में श्रद्धा रखते हुए भी हिन्दू धर्म का अध्ययन कर सकता है। उसे यह ध्यान रखना होगा कि वह अपने धर्म के मूल्यों की कसौटी पर अन्य धर्मों को परखने की चेष्टा न करे। इस दृष्टि से मूल्यों अथवा विचारों का अध्ययन समाजशास्त्रीय परिधि में आता है, बशर्ते कि वह विश्लेषक व्यक्तिगत मूल्यों से अप्रभावित रहे।

9.3.2 आदर्श प्रारूप (आइडियूल टाइप)

वेबर का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान है "आदर्श प्रारूप ' या 'आइडियल टाइप का संबोध। आदर्श प्रारूप एक प्रकार का मॉडल है। जिसे मापदंड मानकर वास्तविक परिस्थिति का आकलन या उसका तुलनात्मक विवेचन किया जाता है। यहाँ आदर्श का अर्थ वांछनीय नहीं है। आदर्श प्रारूप उन विशिष्ट गुणों का समायोजन है जिससे किसी पद, संस्था, सामाजिक व्यवस्था आदि को परिभाषित किया जाता है। इस संबोध में यह निहित है कि कोई भी वास्तविक जगत की परिस्थिति आदर्श प्रारूप का हू-ब-हू संस्करण नहीं हो सकती। विश्लेषक आदर्श प्रारूप के मानदण्ड पर वास्तविक परिस्थिति का परीक्षण करता है और वस्तुपरक ढंग से यह देखता है कि वास्तविक परिस्थिति आदर्श प्रारूप के कितनी निकट है, या उससे कितनी दूर है। उदाहरण के लिए, प्रजातंत्र को ही ले। इस संबोध की गुणात्मक परिभाषा दी जा सकती है और उस परिभाषा के आलोक में विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं को देखा जा सकता है और उन्हें परिभाषा के अनुरूप होने के मानदण्ड पर अंकित किया जा सकता है। इसके विपरीत किसी एक देश में प्रचलित प्रजातांत्रिक व्यवस्था को आदर्श मानकर अन्य प्रजातंत्रों की तुलना करना वेबर की पद्धति के अनुकूल नहीं है।

एक आदर्श प्रारूप इस अर्थ में एक अमूर्त कृति (एब्स्ट्रेक्ट कंस्ट्रक्ट) है जिसको रचते समय यह ध्यान में रखा जाता है कि उसके' विभिन्न पक्ष ठीक से समायोजित हों। यह एक यूटोपिया की भाँति है जिसमें यथार्थ जगत के कतिपय तत्वों को अतिशयोक्त किया जाता है। आदर्श प्रारूप से मिलती

जुलती व्यवस्था को जब इस संदर्भ में देखा जाता है तो शोधकर्ता को उसके विवरण के लिए उपयुक्ता बिन्दु मिल जाते हैं । आदर्श प्रारूप प्राक्कल्पना या हाइपोथिसिस भी नहीं है, पर प्राक्कल्पनाएँ प्रस्तावित करने में आदर्श प्रारूप सहायक होता है । उदाहरण के लिए, ' 'नगर अर्थ व्यवस्था विभिन्न शहरों में पाए जाने वाले आर्थिक ढांचों का औसत नहीं है । वेबर के शब्दों में कहे तो एक आदर्श प्रारूप को एक या एक से अधिक दृष्टिकोणों के एक पक्षीय अतिशयोक्तिकरण (एक्सेन्चुएशन) द्वारा, तथा अन्य कई बिखरे, विविक्त (डिस्क्रीट), ठोस घटनाओं की प्राय: उपस्थिति, अथवा उनकी यदाकदा अनुपस्थिति, के सामंजस्य द्वारा निर्मित किया जाता है और उन सब को एक पक्षीय महत्ता देकर इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि वे एक समेकित विश्लेषणीय कृति के रूप में उभर जाए । इस जटिल वाक्य को सरलीकृत कर इस प्रकार कहा जा सकता है ।

1. आदर्श प्रारूप,' प्रकार एक समेकित विश्लेषणीय कृति है ।
2. इसमें एक या अधिक दृष्टिकोणों को एक पक्षीय अतिशयोक्ति दी जाती है । अर्थात् उन्हें चरम स्थिति में प्रस्तुत किया जाता है ।
3. वस्तु जगत में इस प्रकार की जहाँ-जहाँ अभिव्यक्ति पाई जाती है वहाँ-वहाँ से उसके उल्लेखनीय पक्षों को एकत्र कर तार्किक ढंग से एक सूत्र में पिरोया जाता है ।
4. परिणामत: एक सुनियोजित, तर्कसंगत गुण-क्रम बनता है जिसका यथार्थ जगत में पाया जाना असंभव होता है । वास्तविक रूप में जो प्रकार मिलते हैं वे आदर्श के काफी निकट हो सकते हैं या उसके विपरीत छोर के निकट । जैसे ग्राम और नगर के दो आदर्श प्रारूप तैयार किए जा सकते हैं जो निरंतरता के दो चरम हो सकते हैं । इनके आधार पर किसी भी आबादी के विशिष्ट गुणों को देख कर यह कहा जा सकता है कि वह आबादी नगर के अधिक निकट है या ग्राम समुदाय के समीप ।

आदर्श प्रारूप मात्र एक संबोध नहीं है । इसे समाजशास्त्रीय विवेचन की एक पद्धति कहा जा सकता है । किसी भी सामाजिक संस्था या व्यवहार का अध्ययन करने के लिए वेबर यह आवश्यक मानते हैं कि उस संस्था अथवा व्यवहार का एक तर्कसंगत आदर्श प्रारूप तैयार किया जाए और तदुपरान्त उस प्रारूप के आलोक में किसी स्थान या स्थिति विशेष में पाई जाने वाली संस्था का विवरण प्रस्तुत किया जाए और उसकी आदर्श प्रारूप से तुलना की जाए । आदर्श शब्द का अर्थ वांछित या अभिप्रेत से नहीं है । आदर्श का अर्थ, इस संदर्भ में, गुणों या विशेषताओं का तर्क संगत अतिवादी संकुल है जो किसी भी वास्तविक स्थिति में अप्राप्य है । यदि हम प्रजातंत्र का कोई आदर्श प्रारूप तैयार करें तो वह भी ऐसा ही अतिवादी संकुल होना चाहिये । इस दृष्टि से किसी भी देश में प्रचलित प्रजातांत्रिक व्यवस्था को आदर्श प्रजातंत्र नहीं माना जा सकता । प्रजातंत्र का आदर्श न तो अमरीका का प्रजातंत्र है न भारत का । किन्तु दोनों ही देशों के प्रजातंत्र उसके आदर्श प्रारूप के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से देखे जा सकते हैं । हम सब जानते है कि स्वतंत्र भारतीय गणतंत्र का जब संविधान तैयार किया गया तो हमारे संविधान निर्माताओं ने विभिन्न देशों के प्रजातांत्रिक संविधानों का अध्ययन किया और उनमें से उन तत्वों को हमारे संविधान में सम्मिलित किया जो इस देश की आकांक्षाओं, सामाजिक संगठन, और संस्कृति के अनुकूल थे । इसीलिए भारतीय संविधान किसी अन्य देश के संविधान की प्रतिलिपि नहीं है । हमारे देश की वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था की तुलना इस दृष्टि से तीन तरह से की जा सकती है:

1. संविधान में दी गई व्यवस्थाओं और वर्तमान की प्रजातांत्रिक व्यवस्था में कितने अन्तर आए हैं। यह स्वाभाविक है कि जब संयोजित आदर्शों का अनुपालन किया जाता है तो समयानुसार हमें कई समझौते करने पड़ते हैं और परिस्थितियों से निपटने के लिए कई समंजन (एडजस्टमेन्ट) किये जाते हैं । हमारे संविधान में बार-बार किये जाने वाले संशोधन इसी का परिणाम हैं । इसलिए आज संविधान की समीक्षा की मांग की जाने लगी है । इस मांग का अर्थ यह है कि संविधान के आदर्श (वांछनीय--वेबर द्वारा प्रयुक्त आदर्श नहीं) से यथार्थ की स्थिति में कितनी दूरी बढ़ी है ।
2. हम अपने प्रजातंत्र की किसी अन्य देश के प्रजातंत्र से तुलना कर सकते हैं ।
3. वेबर द्वारा प्रस्तावित आदर्श प्रारूप की तुलना में हम हमारे प्रचलित प्रजातंत्र की तुलना कर सकते हैं । यह तीसरी प्रकार की तुलना ही वेबर की समाजशास्त्रीय विधि के अन्तर्गत आती है ।

9.3.3 प्रभाविता और तार्किकता

वेबर का महत्वपूर्ण योगदान सामाजिक व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने वाले कारकों और उन्हें क्रियान्वित करने वाली प्रक्रियाओं पर रहा है । इस दिशा में उन्होंने वर्ग (क्लास), पद (स्टेटस) और दल (पार्टी) के संबोधो की व्याख्या की है । इस संबंध में उन्होंने शक्ति (पावर) के संबोध को भी निखारा है । मार्क्स से भिन्नता जताते हुए वेबर ने इस बात पर जोर दिया है कि शक्ति के कई स्रोत हैं । शक्ति को आर्थिक प्रभाविता का पर्याय नहीं माना जा सकता है । व्यक्ति का समाज में व्यवहार केवल आर्थिक तर्क संगतता से निर्धारित नहीं होता । सामाजिक व्यवहार कुछ परिस्थितियों में तर्क संगत हो सकता है, किन्तु अन्य परिस्थितियों में आर्थिक दृष्टि से अतार्किक होते हुए भी व्यक्ति सामाजिक दबावों या अपनी भावनाओं के वशीभूत कार्य करता है । इस दृष्टि से शक्ति न तो आर्थिक प्रभुता मात्र से प्राप्त होती है और न ही सरकारी अथवा राजनीतिक संस्थाओं पर नियंत्रण होने से प्राप्त होती है । सत्ता तभी शक्तिवान होती है जब उसका वैधकरण (लेजिटिमेशन) हो जाता है । वेबर की दृष्टि से प्रभाविता (डॉमिनेशन) का निर्धारण इस बात पर होता है कि उसके आदेशों के पालन की कितनी संभाविता है । यदि ऐसा न होता तो सत्ता का तख्ता उलटना संभव ही नहीं होता । अर्थात् जब सत्ता अपनी प्रभाविता खो देती है, उसके आदेशों की पालना की संभाविता कम हो जाती है तो सत्ता की शक्ति क्षीण हो जाती है, उसकी वैधता समाप्त प्राय: हो जाती है ।

वेबर की मार्क्स से इस बात पर सहमति है कि वर्ग का आधार आर्थिक है और वर्ग भेद के साथ शक्ति-भेद भी होता है । किन्तु वेबर का मानना है कि किसी भी समाज का स्तृत-विभाजन केवल वर्गों के आधार पर ही नहीं होता । व्यक्ति का पद, अर्थात् उसकी सामाजिक स्थिति (सोसियल स्टेटस) भी स्तृत-विभाजन का एक अन्य आधार है और किसी के पद का मूल्यांकन उससे जुड़े सम्मान और प्रतिष्ठा पर आधारित होता है । इस प्रकार किसी भी व्यक्ति का वर्ग और पद मिलकर दूसरों पर अपनी शक्ति प्रदर्शित करने की योग्यता को प्रभावित करते हैं । जाति व्यवस्था में, उदाहरणार्थ, एक निम्न स्तर की जाति वाले व्यक्ति के पास उच्च स्तरीय व्यक्ति से अधिक संपदा हो सकती है किन्तु फिर भी उच्च जाति वाले की प्रतिष्ठा अधिक होती है ।

वर्ग और पद से भिन्न राजनीतिक दल हैं जो स्वैच्छिक समितियाँ हैं । ये राज्य की नीति को प्रभावित करते हैं किन्तु राज्य के वैध. अधिकार क्षेत्र को चुनौती नहीं देते ।

9.4 प्राधिकार / प्राधिकरण (Authority - ऑथोरिटी)

वेबर के अनुसार राज्य का शासन प्राधिकरण के उपयोग से संभव होता है । वैधता प्राप्त राज्य को ही व्यवस्था बनाये रखने के लिए सैन्य शक्ति के उपयोग का एकाधिकार होता है । यह प्राधिकार तीन प्रकार का होता है :

1. परम्परागत प्राधिकार
2. करिश्माई प्राधिकार तथा
3. तार्किक-विधिगत प्राधिकार ।

वेबर ने समाज का वर्गीकरण तकनीकी विकास अथवा उत्पादन के ढंग के आधार पर करने के स्थान पर इस आधार पर किया कि वे दुनिया को किस नजरिये से देखते हैं । देखने का ढंग परम्परागत हो सकता हैं या फिर तर्क संगत ।

9.4.1 परंपरागत प्राधिकार

समाज की वर्षो से चली आ रही परम्पराएँ, रीति-रिवाज, और कार्य-विधियाँ लोगों के विश्वासों और व्यवहार को प्रभावित करती हैं । समाज के लोग इन रूढ़ियों और प्रथाओं को वंशानुगत विरासत के रूप में पाते हैं और इन पर बिना कोई प्रश्न उठाए स्वीकारते हैं । इन परम्पराओं का अधिकांश तो धार्मिक होता है, और उसकी बराबर पुष्टि होती रहती है । ये धारणाएँ तर्क-संगत भी हो सकती हैं और कुतर्क पूर्ण भी । कुछ ऐसी भी जो अतार्किक (नॉन रेशनल) की श्रेणी में आती है । अत: परम्पराओं को अतार्किक या कुतार्किक कहना सही नहीं है, क्योंकि उनमें से कुछ तार्किक भी हो सकती है । मूल बात यह है कि परम्पराओं का स्वीकरण करते समय तर्क-संगति की कसौटी का उपयोग नहीं किया जाता । बिना कोई प्रश्न उठाये परम्पराओं का स्वीकरण होता है । निष्ठा और आस्था उसका आधार होता है ।

9.4.2 करिश्माई प्राधिकार

संकट की परिस्थितियों में समाज में यकायक ऐसा नेतृत्व प्रकट होता है जो चमत्कारी होता है । लोग उसमें देवत्व के गुण देखते हैं । आम आदमी से भिन्न उस नेता का व्यक्तित्व उसके अनुयायियों को मोहित करता है । उसकी गरिमा का प्रभाव लोगों पर छा जाता है । वे उसके अधिकार को मान्यता देते हैं । उसके आदेश का बिना प्रश्न उठाये पालन करते हैं । वह आन्दोलन को दिशा देता है जिससे पुरानी व्यवस्था को ध्वस्त करने की प्रेरणा मिलती है, और एक नयी व्यवस्था की कल्पना को सामाजिक स्वीकृति मिलती है । किन्तु करिश्मा की विशेषता है कि वह अल्पकालिक होता है । वेबर इसीलिए करिश्मा के नित्यकरण (रूटिनाइजेशन) की बात करते हैं - अर्थात् करिश्मा का नित्यकर्म में अनुवाद । वे यह भी कहते हैं कि व्यक्ति का करिश्मा शनैःशनै: उसके पद में स्थानान्तरित हो जाता है । करिश्माई नेता के चले जाने पर जो भी व्यक्ति उस पद को धारण करता है उसमें उस पद के माध्यम से करिश्मा प्रविष्ट हो जाता है । तिब्बत का दलाई लामा इसका ज्वलंत उदाहरण है । जो भी व्यक्ति दलाई लामा का उत्तराधिकारी बनेगा उसमें 'उस पद के कारण करिश्माई विशिष्टताएँ जागत हो जाएगी । इस दृष्टि से करिश्माई प्राधिकार का संबोध पारम्परिक और तार्किक वैधिक प्राधिकारों के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है ।

9.4.3 तार्किक-वैध प्राधिकार

समाज जब परम्पराओं से उठकर व्यापक होने लगते हैं, और जब बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ संगठनों की जटिलताएँ पनपने लगती हैं तब उन संगठनों की व्यवस्थाएँ अपने नियमन के लिए तार्किक आधार मांगने लगती हैं ताकि वे सुचारू रूप से चल सके और पदाधिकारियों के बदल जाने पर भी उनके क्रियाकलाप पर मूलत: प्रभाव नहीं पड़े। एक पदाधिकारी होने के नाते एक व्यक्ति के अधिकार और कर्त्तव्य परिभाषित होते हैं और उसी से उसे सत्ता के प्राधिकार प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से नियम और कार्यशैली निर्वैयक्तिक होते हैं और उनका पालन असंपृक्त. भाव से किया जाता है। इन प्राधिकारियों का उदाहरण ब्यूरोक्रेसी है जिसे ' 'अफसरशाही' ' या ' 'कार्यालय तंत्र' ' कहा जा सकता है।

लोक प्रशासन की दृष्टि से कार्यालय तंत्र या ब्यूरोक्रेसी का अध्ययन महत्वपूर्ण है। इस इकाई में हम अब वेबर द्वारा विवेचित ' 'ब्यूरोक्रेसी' ' की चर्चा विस्तार से करेंगे।

9.5 ब्यूरोक्रेसी : दफ्तरशाही का कार्यालय तंत्र

अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्द ब्यूरोक्रेसी में ब्यूरो का अर्थ दफ्तर, या कार्यालय, या ऑफिस होता है। इस प्रकार जब कार्यालय का राज्य हो, अर्थात् उसके अफसरों का राज्य हो तो उसे ब्यूरोक्रेसी कहा जाता है। वेबर ने इसे एक आदर्श प्रारूप माना है। ऐसा प्रारूप जिसमें इस तंत्र की विशेषताएँ सूचीबद्ध हो। इस दृष्टि से यह प्रारूप अच्छाइयों का कोष हो यह आवश्यक नहीं। हिन्दी में जब हम इस शब्द को नौकरशाही या अफसरशाही के रूप में अनूदित करते हैं तो उसमें आलोचना का पुट होता है, आम व्यक्ति भी जब अंग्रेजी में इस शब्द का प्रयोग करता है या फिर अफसर को ब्यूरोक्रेट कह कर पुकारता है तो यही संदेश देने की चेष्टा करता है कि यह व्यवस्था और इसके वाहक सहूलियत प्रदान करने के स्थान पर रोड़े अटकाते हैं। किन्तु वेबर का अभिप्राय इससे भिन्न था। परम्परागत प्राधिकार के ठीक विपरीत की अतिवादी व्यवस्था के रूप में वेबर ने तर्क संगत व्यवस्था को प्रस्तुत किया है और इस बात पर बल दिया है कि वस्तुजगत में इस आदर्श प्रारूप के अनुरूप तंत्र कहीं भी नहीं पाया जाता। किन्तु वास्तविक जगत में पाई जाने वाली व्यवस्थाओं की इस आदर्श प्रारूप से तुलना अवश्य की जा सकती है।

वेबर का यह मानना है कि तार्किकता या तर्कसंगत व्यवहार ने ही औद्योगिक क्रान्ति को सफल बनाया और पूंजीवाद को प्रगत किया। कई प्रकार के सामाजिक संगठनों को देखने और उनके अध्ययन करने के उपरान्त वेबर ने एक तर्कसंगत सामाजिक संगठन की सात विशेषताएँ चिन्हित की हैं:

1. **विशिष्ट सामाजिक संस्थाएँ**

लघु समुदायों में लोगों की आवश्यकताओं और प्रकृति के प्रदानों में संतुलन पाया जाता है और इस कारण इच्छाओं की पूर्ति में अधिक कठिनाई नहीं होती। किन्तु ज्यों-ज्यों समाजों का विस्तार होता है और जनसंख्या बढ़ने लगती है त्यों-त्यों प्राकृतिक और पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ने लगता है और तब समाज में तरह-तरह की संस्थाएँ बनती हैं जो व्यवस्था को बनाए रखती हैं। उदाहरण के लिए, समुद्र के किनारे रहने वाले छोटे समुदाय के लिए अपने उपभोग की मछलियाँ आसानी से ही मिल जाती हैं, पर यदि समुद्र से दूर रहने वाले समुदायों को भी मछलियाँ देनी हो तो फिर तट से दूर गहरे समुद्र में जाना होगा। उसके लिए नौका बनाना, नौका चलाना, बड़ी मछलियों को जाल में फंसाने की कला आदि कई ऐसे कार्य कौशल जुड़ जाते हैं। इस सबके लिये श्रम विभाजन आवश्यक हो जाता है। फिर

लेन देन में विनिमय की प्रणाली विकसित होती है और इस प्रकार एक सरल अर्थ-व्यवस्था जटिल होती जाती है। कार्य विभाजन के कारण बच्चों के सामाजीकरण, बड़े-बूढ़ों की देखरेख, आवास-व्यवस्था आदि पर भी असर पड़ता है। जहाँ पहले सारे कार्य एक परिवार के भीतर ही पूरे कर लिये जाते थे, वहाँ विभिन्न कार्यो के लिए विभिन्न विशेषीकृत संस्थाओं की स्थापना करनी पड़ती है। स्कूल, मंदिर, अस्पताल, बाजार आदि संस्थाओं का पनपना इसी प्रक्रिया का परिणाम है। मानवीय आवश्यकताओं की कुशलतापूर्वक पूर्ति के लिये विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का बनना इसी कारण तर्क संगत हो जाता है।

2. **बड़े पैमाने के सामाजिक संगठनों का उदय**

वृहद समाजों में सामाजिक संगठन भी बड़े होने लगते हैं। छोटे समाजों में सारी गतिविधियों छोटे परिवार तक या संयुक्त परिवार तक ही केन्द्रित रहती हैं। किन्तु बड़े समाजों में विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकता पूर्ति के लिए संगठनों के आकार भी बड़े होने लगते हैं और उनका संचालन करने के लिए तर्क संगत योजना एवं नियम बनाने पड़ते हैं।

3. **कार्यगत कौशल का विकास**

बड़े समाजों में यह संभव नहीं होता कि हर व्यक्ति हर कार्य में निपुण हो। कार्य की दृष्टि से विशेषज्ञता बढ़ती जाती है। एक अच्छा रसोइया रसोई का ही काम कर सकता है। पर समाज में हमें डाक्टर, ड्राइवर, शिक्षक, शोध कर्मी, पुलिस, सेना और जाने किन-किन योग्यताओं वाले व्यक्तियों की जरूरत पड़ती है। विशेषज्ञों का प्रशिक्षण भी तार्किकता की ओर बढ़ने का संकेत है। छोटे समाज में एक व्यक्ति पीर, बावर्ची, मिस्त्री, खर सभी हो सकता है। पर ऐसा हरफन मौला व्यक्तित्व बड़े सामाजिक संगठनों के लिए उपयुक्त नहीं होता।

4. **स्वयं पर अनुशासन**

समाज में सफल होने, कुशलता प्राप्त करने और ऊँचा उठने के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है। केवल जन्मजात गुणों या परिवार की स्थिति के आधार पर ही व्यक्ति का सामाजिक स्तर ऊपर नहीं उठ सकता। उसे मेहनत करनी होती है और जो श्रम से जी चुराते हैं, या अपने को अनुशासित नहीं करते उन्हें तार्किक समाज पीछे छोड़ देता है।

5. **समय की पाबंदी का महत्व**

जब व्यक्ति को अपना कार्य कौशल दूसरों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपयोग में लेना होता है तब समय का महत्व बढ़ जाता है। औद्योगिक युग में मशीनीकरण के कारण समय का महत्व और भी बढ़ गया है। मशीन के चलने की प्रक्रिया समय- निर्धारित होती है और यदि इसका ध्यान न रखा जाए तो मशीन ठप्प भी हो सकती है या फिर असावधानी के कारण मशीन पर काम करने वाले व्यक्ति को चोट भी लग सकती है। परिवहन के क्षेत्र में समय की पाबंदी का महत्व हम जानते हैं। रेल गाड़ी का समय पर छूटना और पहुँचना इसीलिए आवश्यक है। यह यात्रियों की व्यक्तिगत मंशाओं पर निर्भर नहीं करता। समय भी धन है, और उसका अपव्यय नहीं किया जा सकता।

6. **तकनीकी योग्यता**

आधुनिकीकरण और मशीनीकरण के साथ-साथ यह आवश्यक हो गया है कि' समाज के सदस्य नयी तकनीकी के प्रयोग को सीखे। कार्य-क्षेत्र में लोगों की नियुक्ति का आधार उनकी तकनीकी योग्यता होता है।

7. **निर्वैयक्तिकता**

संस्थाओं के संचालन निर्वैयक्तिक होते हैं । व्यक्तियों का चयन आपसी संबंधों पर आधारित न होकर उनकी योग्यता के अनुसार होता है । परीक्षा द्वारा या फिर भेंटवार्ता द्वारा आवेदक की योग्यता की जाँच होती है और उसमें सफल होने पर ही नियुक्ति होती है । और नियुक्ति होने के पश्चात् भी यदि व्यक्ति का कार्य अपेक्षा के अनुकूल नहीं है तो उसकी छुट्टी हो जाती है । इसी प्रकार किसी उद्योग के घाटे में चलने पर लोगों की छँटनी भी कर दी जाती है ।

विभिन्न समाजों के इतिहासों का अध्ययन यह बताता है कि धीरे-धीरे सभी समाजों में उपरोक्त विशेषताएँ प्रवेश करने लगीं और वे परम्पराओं को प्रतिस्थापित करने लगीं । किन्तु कई समाज परम्परा के वशीभूत रहकर परिवर्तनों का प्रतिरोध करते रहे । औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात ही सही अर्थो में तार्किक संगठन कहे जा सकने वाली संस्थाओं का उदय हु आ । वेबर की राय में ब्यूरोक्रेसी या अधिकारीतंत्र ही ऐसी संस्था है जो आदर्श प्रारूप की दृष्टि से पूरी तरह परम्परा मुआ है ।

ब्यूरोक्रेसी कुशलतापूर्वक कार्य को संपादित करने के लिए तर्क संगत सूझबूझ से तैयार किया गया एक संगठनात्मक मॉडल है । वेबर इस मॉडल की छः विशेषताएँ बताते हैं :

1. **विशेषीकरण**

संगठन का अपना सुपरिभाषित कार्य क्षेत्र होता है और उसमें लोगों की नियुक्ति विशिष्ट कार्यो के सम्पादन के लिए की जाती है ।

2. **पदों की सोपानिका**

संगठन में विभिन्न पदाधिकारियों की स्थिति निर्धारित होती है । यह सोपानिका दर्शाती है कि कौन सा पद शीर्ष पर है, कौन सा मध्य में, आर कौन सा नीचे । आदेशों की अनुपालना के लिये यह आवश्यक होता है कि आदेश ऊपर से आए और आदेशदाता के मातहत काम करने वाले सभी -व्यक्ति उनका पालन करें ।

3. **नियम और विनियम (रूल्स तथा रेगुलेशन)**

कार्यालय तंत्र का समस्त कार्य नियम और विनियमों से संचालित होता है । हरेक चीज नियम से बद्ध होती है ताकि तंत्र की प्रतिक्रिया का पहले से अंदाज लगाया जा सके । कार्यालय तंत्र मे कोई भी चीज नियम के विरूद्ध नहीं हो सकती । यह अधिकारी का दायित्व है कि वह नियमानुसार कार्यवाही करे । करिश्माई प्राधिकार से इसकी भिन्नता इसी दृष्टि से लक्षित होती है । करिश्माई नेता नियमों का मोहताज नहीं होता, वह नियम गढ़ता है; स्थापित नियमों को चुनौती देता है, और जिन क्षेत्रों का नियामन नहीं हु आ है वहां के लिए प्रावधान बनाता है । ऐसे ही बनाये गये नियमों का जब नित्य प्रति उपयोग होने लगता है तो उसे ' रूटिनाइजेशन' ' कहा जाता है और इस प्रकार करिश्माई नेता की सत्ता नियमों में प्रवेश कर जाती है ।

4. **तकनीकी योग्यता**

नियमानुसार तथा निश्चित कार्य प्रणाली के अनुसार कार्य करने के लिए कार्यालय तंत्र के अधिकारियों का ठीक से प्रशिक्षित होना आवश्यक है । यदि तंत्र मशीनीकृत है तो उसमें प्रशिक्षण की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है । आज जब ' 'ई-गवर्नेस' ' की बात की जाती है तो उसमें अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए कम्प्यूटर का संज्ञान और उसका उचित प्रयोग करना सीखना एक अनिवार्यता हो गया है ।

5. **निर्वैयक्तिकता (इम्पर्सनेलिटी)**

कार्यालय तंत्र में व्यक्ति नहीं नियम सर्वोपरि होते हैं । किसी भी कार्यालय में विभिन्न पदों पर लोगों की नियुक्ति या तबादले होते रहते हैं । किन्तु लोगों के आने-जाने से कार्यालय के काम में अंतर नहीं आता क्योंकि वह नियमों से निर्धारित होता है न कि किसी व्यक्ति की निजी मर्जी पर ।

6. **औपचारिक और लिखित संचार**

कार्यालय का काम लिखित होता है ताकि जो भी निर्णय लिये जाए उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया संभाल कर रखी जा सके और पदाधिकारी के बदल जाने पर भी नये पदाधिकारी द्वारा उस पर यथोचित कार्यवाही की जा सके । इसी कारण ब्यूरोक्रेसी की आलोचना करने वाले इस प्रक्रिया को कागजी कार्यवाही कहते आये हैं ।

यदि उपरोक्त गुणों से युक्त वेबर द्वारा निर्मित ब्यूरोक्रेसी के आदर्श प्रारूप को मानदण्ड मानकर हम किसी भी कार्यालय तंत्र को देखें तो हमें कमोबेश इन सभी तत्वों की उनमें उपस्थिति का आभास होगा । किन्तु जिन विद्वानों ने कार्यालय तंत्रों का अध्ययन किया है उन सभी ने यह आक्षेप लगाया है कि कार्य कुशलता की दृष्टि से सभी कार्यालय तंत्रों में खामियाँ पाई जाती हैं और इसलिए अधिकांश लोग ब्यूरोक्रेसी शब्द का प्रयोग नकारात्मक ढंग से करते हैं । किन्तु ऐसा करते समय वे कार्यालय तंत्र की मूल धारणाओं को गलत नहीं मानते । वे उसकी कार्य-प्रणाली में सुधार की मांग करते हैं । अधिकांश आलोचनाएँ तो इस बात की की जाती हैं कि कार्यालयों के बहुधा निर्णय व्यक्तिगत या दलगत स्वार्थों के आधार पर लिये जाते हैं और इस दृष्टि से नियमों को तोड़-मरोड़ लिया जाता है । यह भी कहा जाता है कि भिन्न-भिन्न लोग एक ही नियम के अलग-अलग अर्थ लगाते हैं । कुछ का यह मानना है कि नियम लक्ष्य पूर्ति का एक माध्यम है । किन्तु जब लक्ष्य को ताक में रखकर केवल नियम की पालना की जाती है तो इसे ' 'डिसप्लेसमेन्ट ऑफ गोल्स ' अथवा लक्ष्यों का विस्थापन कहा जाता है।

ब्यूरोक्रेसी की ये सारी आलोचनाएँ वेबर की आदर्श प्रारूप की उपादेयता को ही सिद्ध करती हैं। आलोचक उपरोक्त गुणों की उपस्थिति या अनुपस्थिति की ही बात करते हैं और ब्यूरोक्रेसी में सुधार भी उन्हीं बिन्दुओं पर प्रस्तावित करते हैं ।

लोक प्रशासन के अध्ययन की दृष्टि से वेबर का ब्यूरोक्रेसी का संबोध अत्यंत महत्वपूर्ण और उपादेय है । इस देश में इस संबोध का उपयोग कर कार्यालय तंत्रों की शोध की आवश्यकता आज भी है ।

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने मेक्स वेबर के समाजशास्त्रीय योगदान पर चर्चा की है । उनके द्वारा प्रतिपादित अनेक संबोधो जैसे मूल्य तटस्थता, आदर्श प्रारूप, प्रभाविता, और प्राधिकरण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । उन्होंने तीन प्रकार के प्राधिकरणों की वर्णन किया है:' परम्परागत, करिश्माई, तथा तार्किक विधिगत प्राधिकरण । अधिकारी तंत्र का संबंध तृतीय प्रकार के प्राधिकरण से है । अधिकारीतंत्र तथा तर्कसंगत संगठन की प्रमुख विशेषताओं का भी यहाँ उल्लेख किया गया है ।

9.7 शब्दावली

संबोध – Concept
करिश्मा – Charisma

प्राधिकार	–	Authority
तार्किकता	–	Rationality
प्रभाविता	–	Domination
आदर्श प्रारूप	–	Ideal Type
कार्यालय तंत्र / दफ्तरशाही	–	Bureaucracy
निर्वेयाक्तिकता	–	Impersonality
मूल्य तटस्थता-	–	Value-Neutratiry
वस्तुपरकता	–	Objectivity
परम्परा	–	Tradition

9.8 अभ्यास प्रश्न

1) मेक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित प्रभाविता का वर्णन कीजिए ।
2) प्राधिकरण क्या है? वेबर के विभिन्न प्राधिकरणों का आलोचनात्मक परिक्षण कीजिए ।
3) ब्यूरोक्रेसी की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए ।

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. Weber,Max,The Protestant Ethics and the Rise of Capitalism, translated by Talcott Parsons, New York; Scribners Sons, 1958.
2. Weber,Max,The Theory of Social Organisation, Edited with an Introduction by Tolcott Parsons; New York : The Free Press, 1947
3. Weber,Max,The Methodology of Social Science, translated and edited by Edward A Shills and Henry A Finch ; Glencoe, Free Press, 1949.
4. Bendix, Reinhard Max Weber; An Intellectual Portrait, Garden City, New York; Doubleday and Co.,1962.
5. Gerth, H.H. and Mills, Wright; From Max Weber: Essays in Sociology; New York, Oxford University Press, 1946.

इकाई-10

नौकरशाही : समाजशास्त्रीय इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाषा
10.3 नौकरशाही के तत्व
10.4 नौकरशाही की विशेषताऐं
10.5 नौकरशाही के सामाजिक परिणाम
10.6 नौकरशाही पर नियन्त्रण के उपाय
10.7 नौकरशाही के उत्पत्ति के कारण
10.8 नौकरशाही का आलोचनात्मक मूल्यांकन
10.9 सारांश
10.10 मुख्य शब्दावली
10.11 अभ्यास प्रश्न
10.12 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन द्वारा निम्न उद्देश्यों की स्पष्टता होगी ।

- इसके द्वारा वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही अवधारणा का स्पष्टीकरण किया जायेगा तथा इसको परिभाषित किया जायेगा ।
- प्रस्तुत इकाई में नौकरशाही की विशेषताओं का विवेचन किया जाएगा ।
- प्रस्तुत इकाई में वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या की जायेगी ।
- नौकरशाही के सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणामों की विवेचना करना ।
- नौकरशाही पर नियंत्रण करने के उपायों की समीक्षा करना ।
- वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना ।
- नौकरशाही की अवधारणा वर्तमान सन्दर्भ में कितनी उपयोगी है यह इस इकाई के सारांश के रूप में प्रस्तुत किया जाना ।

10.1 प्रस्तावना

अमेरिकी समाजशास्त्री अमीताई ऐजिआनी (Amitai Etzioni) के शब्दों में 'हमारा समाज संगठनात्मक समाज है ।" यह आधुनिक सामाजिक संगठन की ही देन है कि अब लोग अस्पताल में पैदा होते हैं, स्कूल में शिक्षित होते हैं, व्यापारिक प्रतिष्ठानों एवं सरकारी संस्थाओं में कार्यरत होते हैं, हम श्रम संघों एवं व्यावसायिक संघों से जुड़ते हैं ओर बीमारी एवं अवकाश के लिए चर्चों में जाते हैं।

आधुनिक औद्योगिक समाज निरन्तर संगठनात्मक स्वरूप में परिवर्तित हो रहा है । मेक्स वेबर (1864-1930) का विश्वास था कि नौकरशाही संगठन औद्योगिक समाज की प्रमुख संस्थाऐं रही हैं। वर्तमान समाज की प्रकृति को समझते हुए वेबर ने नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया को समझने पर बल दिया है । मार्क्स के मत में पूंजीवादी एवं समाजवादी औद्योगिक समाजों में मूलभूत अन्तर है किन्तु वेबर की दृष्टि में नौकरशाही संगठनों की समानता को देखते हुए यह अन्तर मामूली है । इसीलिए यहां यह बताना आवश्यक है कि वेबर की नौकरशाही की अवधारणा को उनके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक क्रिया के सामान्य सिद्धांत के सन्दर्भ में समझना आवश्यक है । इसलिए वेबर ने नौकरशाही संगठन की उनके द्वारा बताये क्रियाओं के प्रकारों में से ही एक तार्किक क्रिया (Rational Action) के संदर्भ में एक आदर्श प्रारूप (Ideal type) के रूप में व्याख्या प्रस्तुत की है ।

10.2 नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाषा:

वेबर ने नौकरशाही की अवधारणा को नियंत्रण की एक व्यवस्था के रूप में समझा है । उनके अनुसार यह एक संस्तरणात्मक संगठन है जिसमे अधीनस्तों द्वारा किये जाने वाले क्रियाकलापों का सख्ती से नियंत्रण करना एवं अनुशासित करना है । यह एक विशेष प्रकार की संरचना का बोद्ध कराती है जिसके अन्तर्गत तर्कसंगत रूप में समन्वित असमानों का एक विशिष्ट प्रकार का संगठन होता है । वेबर का मानना है कि वर्तमान आधुनिक समाजों में नौकरशाही तंत्र का होना अपरिहार्य बन चुका है ।

मैक्स वेबर के अनुसार ' 'नौकरशाही तार्किक एवं विवेकशील नियमों पर आधारित होती है । इसके अन्तर्गत अधिकार, सत्ता तथा उत्तरदायित्वों का संस्तराणात्मक विभाजन पाया जाता है । जिसका उद्देश्य किसी औद्योगिक, व्यापारिक, राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षिक अथवा किसी भी अन्य प्रकार के संगठन के उद्देश्यों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त करने के लिए किया जाता है । इसमें लिखित नियम होते हैं तथा इसमें विभिन्न व्यक्तियों से कार्यों का समन्वय स्थापित किया जाता है । " 1 नौकरशाही को वेबर ने तार्किक क्रिया का विशुद्ध रूप से एक सही उदाहरण माना है । जहाँ प्रशासनिक निर्णय तार्किक आधार पर लिये जाते हैं । वेबर का विश्वास है कि आधुनिक औद्योगिक समाजों में तार्किक क्रिया कार्यप्रणाली का एक अहम् तरीका बन गई है ।

पीटर ब्लाऊ (Peter Blau) ने नौकरशाही को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ' 'कोई भी ऐसा संगठन जो विस्तृत आधार पर प्रशासकीय कार्यो को क्रमबद्ध रूप में चलाने के लिए बहुत से व्यक्तियों के कार्यों के द्वारा समन्वित होता है, नौकरशाही (Bureaucracy) कहलाता है ।

एक अन्य विचारक बर्नार्ड शाह (Bernard Shah) के अनुसार सत्ता के उपासक उच्च पदाधिकारियों की सामन्त शाही का दूसरा नाम नौकरशाही है । "

10.3 नौकरशाही के तत्व (Elements of Bureaucracy)

मैक्स वेबर ने अपने सिद्धान्त द्वारा नौकरशाही में अग्रलिखित तत्व बताये हैं :-

(1) संगठन के उद्देश्य के लिए आवश्यक नियमित क्रियाओं को पदानुसार कर्त्तव्यों के रूप में वितरित किया जाता है ।

(2) पदों के संगठन में संस्तरण का सिद्धान्त अपनाया जाता है अर्थात् हर निचला पद अपने से ऊँचे पद के नियंत्रण एवं निरीक्षण में रहता है ।

(3) नौकरशाही के कार्यक्लापों का संचालन पूर्व परिभाषित व स्पष्ट नियमों के अनुसार होता है और जो भी मूर्त मामला सामने आता है उनका निपटारा इन नियमों के आधार पर किया जाता है ।

(4) एक आदर्श पदाधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन औपचारात्मक अवैयक्तिकता से करता है ।

(5) पदाधिकारियों की नियुक्ति उनकी तकनीकी योग्यता एवं एक विशेषज्ञ के रूप में उनके ज्ञान के आधार पर की जाती है । वे पूरे समय के लिए कर्मचारी हो हैं, जिनका निश्चित वेतन क्रम आदि होता है । यह नौकरी ही उनके जीवन-व्यवसाय (career) होता है । इसलिए उनकी उन्नति और समृद्धि अपने पद के कुशल संचालन में निहित है ।

(6) नौकरशाही व्यक्तिगत जीवन और दफ्तरी जीवन को बिल्कुल पृथक कर देती है । अधिकारी निजी लाभ के लिए अपने पद का प्रयोग नहीं कर सकता । संगठन के किसी भी भाग पर उसका निजी स्वामित्व नहीं होता है । इसीलिए वेबर ने कहा है कि ' 'नौकरशाही अधिकारिक गतिविधि को व्यक्तिगत जीवन के क्षेत्र से अलग कर देती है । '

राइनहार्ड बैण्डिक्स नौकरशाही के तत्वों को एक वाक्य में समेटते हुए लिखते हैं कि " (1) सरकारी कार्य की निरन्तरता, (2) निश्चित नियमों के द्वारा सत्ता की सीमितता, (3) इसके कार्यान्वयन का निरीक्षण, एवं (4) पद और पदाधिकारी का भेद, तथा (5) सरकारी कार्य के प्रलेखीय आधार के बिना इस प्रकार की वैधानिक सत्ता की प्रणाली नहीं बन सकती जिसमें सत्ता का कार्यान्वयन अधिनियमित मानकों के आधार पर आधारित हो । '

वास्तव में आज के युग में नौकरशाही सार्वजनिक व निजी दोनों ही क्षेत्रों में पाई जाती है । सार्वजनिक क्षेत्र में इसे 'नौकरशाही प्रशासन' कहते हैं, जबकि निजी क्षेत्र में इसे 'नौकरशाही प्रबन्ध कहा जाता है । कॉलेज, विश्वविद्यालय, चिकित्सालय, सैनिक संगठन, यहाँ तक कि धार्मिक संगठनों में भी यही पदक्रम वाली दफ्तरी व्यवस्था पाई जाती है । इसलिए वेबर ने इसे आधुनिक समाज में घटित परिवर्तन की प्रक्रिया भी कहा है ।

10.4 नौकरशाही की विशेषताएं (Characteristics of Bureaucracy)

'मैक्स वेबर का मत है कि ऐसा कोई भी संगठन जिसमें नौकरशाही भी शामिल है जो तार्किक नियमों की व्यवस्था को स्वीकार करते हैं । उनके पीछे वैधानिकता मान्यता भी होनी चाहिए और इसी क्रम में वेबर ने वैधानिक के तीन प्रकार बताये हैं जो तीन प्रकार की क्रियाओं से पनपती है भावनात्मक, परम्परागत तथा तार्किक इनमें से प्रत्येक आज्ञा पालन (Obidience) की युक्ति प्रदान करती है । वह युक्ति जो भावना प्रथा एवं तार्किकता पर आधारित है । ये वैधानिक नियंत्रण के प्रकार ही वेबर के मत में सत्ता के प्रकार होते हैं जो क्रमश: चमत्कारिक सत्ता, परम्परागत सत्ता तथा तार्किक या वैधानिक सत्ता है । इनमें से प्रत्येक संगठनात्मक संरचना के एक विशेष स्वरूप को ग्रहण करती है। मैक्स वेबर ने प्रत्येक प्रकार की सत्ता के प्रतिनिधित्व के लिए प्रारूपों का निर्माण किया है जो 'आदर्श प्रारूप' (Ideal Types) कहलाते हैं ।

मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही की अवधारणा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं ।

1. **संगठन के लिए नियमित कार्यो का बंटवारा शासकीय कर्त्तव्यों के रूप में वह -** प्रत्येक प्रशासकीय अधिकारी का कार्यक्षेत्र एक परिभाषित जिम्मेदारी में आता है । जटिल कार्यों को विशेषीकृत अधिकारियों के बीच प्रबन्धनीय रूप में बांटा जाता है । उदाहरण के रूप में राज्य प्रशासन को शिक्षा, रक्षा, एवं पर्यावरण जैसे अनेक विभागों में विभक्त किया जाता है । प्रत्येक विभाग के लिए एक प्रशासकीय अधिकारी को उत्तरदायित्व प्रदान किया जाता है । जो अपने क्षमता के अनुरूप स्पष्ट रूप से परिभाषित शासकीय कार्यों का निष्पादन करता है ।
2. **कार्यालय संगठन द्वारा संस्तरण के सिद्धान्त की पालना की जाती है -** प्रत्येक कनिष्ठ कार्यालय अथवा अधिकारी अपने से श्रेष्ठ कार्यालय अथवा अधिकारी के नियंत्रण अथवा निर्देशन में कार्य करता है । इस प्रकार कनिष्ठ एवं श्रेष्ठ (उच्च) अधिकारी के बीच आदेशों एवं उत्तरदायित्वों की एक श्रृंखला (Chain) स्थापित हो जाती है । जिसके अन्तर्गत प्रत्येक अधिकारी अपने स्वयं के प्रशासकीय दायित्वों एवं अपने अधीन कार्य करने वालों के लिए अपने निकटस्थ उच्च अधिकारी के प्रति जवाबदेही है ।
3. **अमूर्त नियमों एवं उनकी कार्यान्विति अथवा प्रशासकीय नियम -** एक प्रशासकीय संरचना में अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कार्यक्षेत्र निश्चित तरीके से विभाजित कर दिये जाते हैं और सामान्यत: यह विभाजन प्रशासकीय नियमों के अनुरूप पूर्ण किये जाते हैं । प्रशासकीय तन्त्र के लिए अनिवार्य नियमित-कार्यकलापों को एक निश्चित ढंग से राजकीय-कर्त्तव्यों के रूप में परिभाषित किया जाता है अर्थात् कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्य करने के प्रत्येक अधिकारी के कार्यकलाप राजकीय कर्त्तव्यों के रूप में विभक्त होते हैं । उपरोक्त निर्धारित कार्यों के निष्पादन के लिए अधिकारी को आवश्यक सत्ता अथवा अधिकार (वैधानिक अधिकार) प्रदान किये जाते हैं अर्थात एक अधिकारी की सत्ता नियमों द्वारा परिलक्षित होती है कि वह किस सीमा तक बल प्रयोग आदि उपायों द्वारा आवश्यक निर्देशों की परिकल्पना करा सकता है । उपरोक्त कर्त्तव्यों के निरन्तर एवं नियमित रूप से पालना के लिए एक उचित व्यवस्था होती है और जो व्यक्ति कार्य करने की आवश्यकतानुसार योग्यता रखते हैं, उन्हीं को नौकरी में रखा जाता है । इसी व्यवस्था द्वारा नौकरशाही सत्ता का निर्माण होता है । ऐसी व्यवस्था केवल आधुनिक विकसित समाजों में ही देखी जा सकती है ।
4. **कार्य निष्पादन के साधन (Means of Execution) -** एक संगठन में कार्यरत सभी अधिकारी अपने कार्यों के निष्पादन के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले साधनों मालिक स्वयं नहीं होते हैं । सरकारी तन्त्र द्वारा उन्हें साधन उपलब्ध कराये जाते हैं । जिनका नियमानुसार प्रयोग किया जा सकता है ।
5. **व्यक्तिगत आय एवं सरकारी आय अलग-अलग -** नौकरशाही तंत्र द्वारा व्यक्तिगत एवं सरकारी आय के बीच स्पष्ट विभाजन होता है । सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी नौकरशाही तंत्र का कोई भी भाग जिसके लिए वह कार्य कर सकता है । अपने स्वामित्व में नहीं रख सकता न ही वह अपनी सरकारी प्रस्थिति को व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयोग कर सकता है । वेबर के शब्दों में ' 'नौकरशाही तंत्र सरकारी कार्य को व्यक्तिगत जीवन से अलग करके मानती हैं । "
6. **लिखित दस्तावेज (Written Records) -** नौकरशाही तंत्र में कार्यालयों का कार्य संचालन फाइलों तथा लिखित दस्तावेजों के माध्यम से किया जाता है जिन्हें पूर्णतया संभालकर रखा जाता हैं । इन कार्यो को करने के लिए तथा आवश्यक फाइलों एवं दस्तावेजों को सुरक्षित रखने के लिए क्लर्क,

फाइल-कीपर आदि की नियुक्ति की जाती है तथा विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अलग-अलग फाइलें बनाई जाती है । इनको कार्य विशेष की महत्ता के अनुसार 'आज ही (Out Today) अतिआवश्यक (Most Urgent), आवश्यक (Urgent) अतिगोपनीय (Most Confidential) वर्गीकृत करके इनके उपर उपरोक्त श्रेणीयों के टैग लगा कर उच्च अधिकारियों के पास निष्पादन के लिए भिजवा दिये जाते हैं ।

7. **अधिकारियों एवं कर्मचारियों का प्रशिक्षण (Training of Bureaucrates) -** आधुनिक नौकरशाही तंत्र में कार्यालयों में कार्य विशेषीकृत रूप में होता है । अर्थात किसी विशेषकार्य के लिए विशेष प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त अधिकारी अथवा कर्मचारी को नियुक्त किया जाता है । सेवा अवधि के समय में भी समय समय पर इनको प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है । ताकि प्रशासन चुस्त-दुरस्त रहे ।

8. **अधिकारियों की विशेष प्रस्थिति (Special status of officers) -** बड़े-बड़े संगठनों में कार्य को पूरा करने के लिए कर्मचारियों को अधिकाधिक कार्य करना पड़ता है, चाहे उनके कार्य करने की अवधि निश्चित ही क्यों ना हो । यही कारण है कि उच्च अधिकारी अपने कार्यालय समय के समाप्त होने के उपरान्त भी दिये गये कार्य को पूरा करने के लिए कार्यालय में बैठे रहते हैं । कई बार कर्मचारी को पदोन्नति प्राप्त करने के लिए अपने से उच्च अधिकारी को खुश करने के लिए भी अतिरिक्त समय तक कार्य करना पड़ता है ।

वेबर का मानना है कि कार्यालयों में एवं बड़े-बड़े संगठनों में कार्य करने वाले अधिकारियों के लिए कार्य एक पेशे की तरह होता है, जिसके लिए वे विशेषरूप से प्रशिक्षण प्राप्त होते हैं । वे समय-समय पर होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं को पास कर पदोन्नति प्राप्त करते हैं । वेबर के मत में नौकरशाही तंत्र में कार्य करने का अर्थ सुरक्षित जीवन के बदले में ईमानदारी के साथ प्रबन्ध के उतरदायित्व को ग्रहण करना है अर्थात इसमें व्यक्ति अपने कार्य के प्रति ईमानदार होता है ।

इसी प्रकार से नौकरशाही में कार्य करने वाले कर्मचारियों की साधारण लोगों की तुलना में सामाजिक प्रतिष्ठा ऊंची होती है । ये कर्मचारी स्थायी अथवा अस्थायी दोनों प्रकार के हो सकते हैं । इनका एक स्थान से दूसरे स्थान को या एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरण किया जा सकता है । इनको राज्य द्वारा पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जाती है । नौकरशाही में कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को एक निश्चित अवधि प्राय: एक माह की सेवा समाप्ति पर (प्रत्येक माह) एक निश्चित धनराशि सेवा के बदले प्रदान की जाती है । सेवानिवृत्ति के उपरान्त एक निश्चित राशि पेन्शन के रूप में दी जाती है । प्रत्येक कर्मचारी को वेतन उसके पद के अनुरूप प्रदान किया जाता है । प्रत्येक कर्मचारी अपने सेवा काल में अपनी योग्यता एवं अनुभव के द्वारा निम्न पद से उच्च पद व वेतन प्राप्त कर सकता है । प्रत्येक कर्मचारी को सेवा अवधि में अच्छे कार्य के लिए पुरस्कृत तथा असंतोषजनक कार्य के लिए आर्थिक रूप से दण्डित किया जाता है ।

9. **प्रशासनिक साधनों का केन्द्रीयकरण (Centralization of Administrative) -** वेबर का मानना है कि नौकरशाही में केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया को केन्द्रीय स्तर के संगठनों जैसे विश्वविद्यालय सरकार, सेना एवं अन्य राजनैतिक संगठनों में क्रियाशील बताया है । जैसे ही उक्त संगठनों का आकार बढ़ता जाता है इनको अच्छी तरह से संचालित करने के लिए स्वतंत्र व्यक्तियों

के हाथों से छीनकर सत्ताधारी वर्ग के हाथों में सौंप दिया जाता है । ऐसा वित्तीय कारणों से भी हुआ है ।

10. **नौकरशाही में अवैयक्तिकता को प्राथमिकता (Impersonality is Preferred in Bureaucracy)-** आधुनिक समाजों में अधिकारियों द्वारा किसी विषय विशेष पर निर्णय लेते समय अपने व्यक्तिगत हितों को भुलाकर अवैयक्तिक सामान्य लक्षणों को प्राथमिकता दी जाती है । अधिकारी अपनी शक्ति को बनाये रखने के साथ-साथ उसे बढ़ाने के प्रति भी सदैव सचेत रहते हैं ।

11. **नौकरशाही में तकनीकी श्रेष्ठता (Technically Superiority in Bureaucracy) -** नौकरशाही की यह विशेषता होती है कि यह संगठन तकनीकी रूप से श्रेष्ठ होता है जिसके अन्तर्गत लिखित प्रलेखों का ज्ञान, निरन्तरता, तार्किकता, कार्य संचालन की सार्वभौमिकता आदि अन्य प्रशासनिक तरीकों से श्रेष्ठ होते हैं इसीलिए इसे एक सफल संगठन कहा जाता है ।

12. **एक स्थायी नौकरशाही संगठन (A stable Bureaucratic Organization) -** नौकरशाही संगठन को वेबर ने व्यावहारिक दृष्टि से एक स्थायी अथवा टिकाऊ संगठन माना है जिसके अर्न्तगत अधिकारी अपने साथियों के साथ इस तरह से सम्बन्ध रहते है कि नौकरशाही संगठन की निरन्तरता बनी रहती है । संगठन में अधिकारी एवं कर्मचारी सेवानिवृत्त होते रहते हैं, नई नियुक्तियाँ होती रहती है किन्तु संगठन की निरन्तरता अविनाशी रहती है ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि नौकरशाही तन्त्र में प्रशासनिक नियम होते हैं । कार्यो का एवं सत्ता का विभाजन होता है, उन्हें वैधानिक सत्ता प्राप्त होती है जो तार्किक आधार पर अवैयक्तिक रूप से सामान्य लक्षणों को ध्यान में रख कर प्रशासनिक निर्णय लेते हैं, हर कार्य लिखित फाइलों द्वारा होता है, अधिकारी एवं कर्मचारियों को समय-समय पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है कानून के अनुसार कार्यो का निष्पादन किया जाता है, निम्न अधिकारी अपने से उच्च अधिकारियों के प्रति वफादार एवं जवाबदेह होते हैं, अच्छे कर्मठ कर्मचारियों को पुरस्कृत किया जाता है तथा निकम्मों एव आलसियों को दण्डित किया जाता है । कर्मचारी एवं अधिकारी अपनी योग्यता एव अनुभव द्वारा पदोन्नत होते रहते हैं ।

10.5 नौकरशाही के सामाजिक परिणाम (Social Consequences of Bureaucracy)

वेबर ने कर्मचारीतन्त्र का विश्लेषण इसके सामाजिक परिणामों की दृष्टि से भी किया । उनकी गहन एवं पैनी दृष्टि ने इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों पर विचार किया । इन्हीं दोनों पक्षों पर वेबर के विचारों को निम्नांकित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :-

(अ) नौकरशाही के सकारात्मक परिणाम

वेबर के अनुसार नौकरशाही ने निम्नलिखित रूप से समाज की प्रगति में योगदान दिया है:-

(1) प्रशासन को प्राविधिक 'श्रेष्ठता प्रदान करना : नौकरशाही संगठन के किसी भी अन्य स्वरूप की तुलना प्राविधिक दृष्टि से श्रेष्ठ है । अवैयक्ति नियमों द्वारा निर्दिष्ट होने के कारण नौकरशाही कार्यवाही की सामान्य विश्वसनीयता एवं गण्यता को बढ़ा देती है । इसी प्रणाली के अन्तर्गत कार्य

अधिक सूक्ष्मता से, तेजी से, मितव्ययिता से तथा बिना अनावश्यक विवाद के सम्पन्न होता है। नौकरशाही के युग का आदर्श विशेषज्ञ है, न कि एक परिशीलित व्यक्ति ।

(2) प्रजातन्त्र के लिए अनिवार्य : मैक्स वेबर का उचित ही कहना है कि ज्यों - ज्यों प्रजातन्त्र का विस्तार होता है, नौकरशाही पर आधारित प्रशासन व्यवस्था की अपरिहार्यता भी बढ़ती जाती है । प्रजातन्त्र स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रशासन के स्थान पर कानून द्वारा स्थापित सरकारी सेवाओं में लगे अधिकारियों द्वारा स्थापित होता जाता है । मैक्स वेबर की इन्हीं भावनाओं को जूलियन फ्रायड ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है ' 'यह सामान्यत: स्वीकार कर लिया गया है कि प्रजातन्त्रीकरण और नौकरशाही साथ-साथ चलते हैं । '

(3) प्रशासन एवं राजनीतिक नियन्त्रण की पृथकता संभव : नौकरशाही एक ऐसी प्रशासनिक संगठन की मशीन है जो स्वचालित है । इसके द्वारा यह सम्भव हो जाता है कि राजनीतिक नेतृत्व व्यवस्थापिका एवं नीति निर्माण के कार्यों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर सके । साथ ही, कर्मचारीतन्त्र पर भी राजनीतिक नेतृत्व अपना नियन्त्रण रख सकता है ताकि वह मनमानी पर न उतर आये । ऐसा होना इसलिए भी सम्भव है क्योंकि नौकरशाही प्रशासन को स्थायित्व एवं निरन्तरता प्रदान कर देती है । यह व्यक्ति विशेष पर आधारित नहीं है । राजनीतिक नेतृत्व को बदल भी सकता है, पर तु यह संगठन अपना कार्य निरन्तर करता रहता है ।

(4) शिक्षा के महत्व एवं विभेदीकरण को प्रोत्साहन : नौकरशाही की आवश्यकताओं ने शिक्षा के स्वरूप को भी प्रभावित किया है । स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विभिन्न क्षेत्रो, में कर्मचारियों को मांगों को देखते हु ए शिक्षण के पाठ्यक्रम व प्रशिक्षण के तरीके बदलने पड़े । डिप्लोमा, डिग्री तथा सर्टिफिकेट्स आदि का महत्व बढ़ गया है । कर्मचारी के चयन के लिए ये बड़े सहायक सिद्ध होने लगे हैं तथा नये-नये विषय विश्वविद्यालयों में पढाये जाने लगे हैं ।

(5) एक नई तार्किक. वैज्ञानिक व अवैयक्तिक संस्कृति का उदय : प्रतियोगी परीक्षाओं पर आधारित नियमों की औपचारिकता द्वारा निर्दिष्ट, मानवीय भावनाओं से तटस्थ, दफ्तरी कार्यप्रणाली एक नई संस्कृति को विकसित कर रही है । यह सेवा को एक जीवन भर का व्यवसाय बनाती है । इस भाँति व्यवसायियों का एक नया वर्ग समाज में बन जाता है । समय सारणी में आबाद, औपचारिक एवं लिखित नियमों की प्रतिष्ठा से विभूषित, योजनाबद्ध जीवन शैली का विकास होता है । प्रत्येक कदम लागत और लाभ के विश्लेषण के आधार पर उठाया जाने लगता है ।

(6) प्रशासन के साधनों का एकीकरण : ज्यों-ज्यों नौकरशाही संगठनों का विस्तार होता जाता है । त्यों-त्यों इनको चलाने के साधनों की स्वतंत्रता व्यक्तियों और समूहों से ले ली जाती है और इसे शासन करने वाले अल्पसंख्यक समूह के अधिकार में दे दिया जाता है । सच तो यह है कि शासन के आधुनिक साधन व्यक्तियों की आर्थिक क्षमता से बाहर हैं । राइनहार्ड बैण्डिक्स के शब्दों में ' एक समय का जब उत्पादन, प्रशासन एवं विद्वता के साधन घर के अभिन्न अंग थे, पर ज्यों ही एकत्रीकरण की प्रक्रिया बढ़ी, ' ये घर से अलग हो गये । फलत: आधुनिक नौकरशाही प्रशासन की विशेषता परिवार से व्यापार, पदाधिकारो से पद और विद्वान से गवेषणा की सुविधाओं को अलग करने पर निर्भर है । ' इस तरह नौकरशाही प्रशासन के साधनों के एकत्रीकरण को प्रोत्साहित करती है ।

(7) आर्थिक सामाजिक अन्तरों को पाटना : नौकरशाही एक ऐसी प्रणाली है जो आर्थिक और सामाजिक भेदों को दूर कर सामाजिक समतलीकरण करती है । वस्तुनिष्ठ शैक्षिक प्रमाणपत्रों व औपचारिक परीक्षा के आधार पर विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ की जाती हैं । परिवार, वंश या आर्थिक सम्पन्नता ऐसी नियुक्तियों को प्रभावित नहीं करती । जो भी व्यक्ति योग्यता के आधार पर किसी पद पर आसीन होता है उसके अधीन सभी कर्मचारी उसके निर्णय मानेगें । इस प्रकार, नौकरशाही सामाजिक अन्तरों को पाटती है ।

इस भाँति मैक्स वेबर ' ने नौकरशाही के प्रकाशमान पक्ष का वर्णन किया और यह बताया कि ज्यों-ज्यों समाज में औद्योगिकरण का विकास हो रहा है और राज्य की सार्वजनिक क्रियाओं का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों नौकरशाही संगठन की आवश्यकता बढ़ती जा रही है । मैक्स वेबर के शब्दों में ' यह बात चर्च, राज्य, सेना, राजनीतिक दल, आर्थिक संस्थान यहाँ तक कि ऐच्छिक समितियों एवं क्लबों 'के लिए भी उतनी ही सत्य है । चाहे लोग नौकरशाही के अभिशापों के सम्बन्ध में कितनी भी शिकायत क्यों न करें । क्षणभर के लिए यह सोचना केवल भ्रम मात्र होगा कि दफ्तरों में कार्यरत अधिकारियों को माध्यम बनाए बिना किसी भी क्षेत्र में निरन्तर प्रशासनात्मक कार्य किया जा सकता है ।

लेकिन मैक्स वेबर नौकरशाही के खतरों के प्रति भी बेखबर नहीं थे । वे प्रशासन की इस व्यवस्था में अन्तर्निहित अवगुणों के प्रति भी जागरूक थे । उन्होंने उसके उन परिणामों का भी वर्णन किया है जो सामाजिक व्यवस्था में' 'अकार्य के रूप में घटित हो रहे हैं । इन नकारात्मक परिणामों के विश्लेषण में वेबर ने अपनी प्रखर मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है ।

(ब) नौकरशाही के नकारात्मक परिणाम : वेबर ने नौकरशाही के अग्रलिखित अवगुणों का भी वर्णन किया है जिनके कारण इसके सामाजिक व्यवस्था के लिए नकारात्मक परिणम हो सकते हैं :-

(1) रचनात्मक निजी पहल में बाधक : औपचारिक नियमों का कठोरता से दायित्वों तक ही स्वयं को सीमित रखने का अभ्यास व्यक्तिगत स्वतंत्रता का गला घोंट सकता है । इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति की स्वत: स्फूर्ति सूझ-बूझ, रचनात्मकता और पहल करने के साहस जैसी शक्तियों का विकास अवरूद्ध हो जाता है । व्यक्ति की कर्मचारी के रूप में केवल अपनी नौकरी को सुरक्षित रखने की इच्छा बलवती हो जाती है । निर्णय कें --साथ दायित्व आता है अत: वह विचाराधीन मामले को टालता जाता है । कर्मचारी एक नीरस और उबाऊ दिनचर्या में फंसा रहता है ।

(2) आत्मविहीन विशेषज्ञों का उदय : नियमों एवं विधियों की अवैयक्तिकता ऐसे विशेषज्ञों को उत्पन्न कर सकती है जो अपने सीमित कार्यक्षेत्र में सिमटते समय संगठन के लक्ष्यों को भूल जाएं । यह भी संभावना हो सकती हैं कि नियमावली व प्रक्रिया ही साध्य बन जाए । वेबर ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि दफ्तरी आचरण की अवैयक्तिकता की प्रवृत्ति आत्मविहीन विशेषज्ञों को जन्म देने की होती है ।

(3) भीरू अधिकारी आपातकालीन संकट के समय असमर्थ : नौकरशाही में अधिकारीगण जनता से दूर विशाल भवन में कायदे से काम करने के आदी हो जाते हैं । सरकारी गोपनीयता का नियम भी उनकी सुरक्षा की भावना को बढ़ा देता है । सभी व्यक्ति (कर्मचारी) शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा की आवश्यकता के आदी हो जाते हैं । वेबर के शब्दों में "हम जानबूझकर ऐसे व्यक्ति बनते हैं जिन्हें व्यवस्था या शान्ति की आवश्यकता है और केवल व्यवस्था की आवश्यकता है और यदि

एक क्षण के लिए भी यह व्यवस्था नष्ट हो जाती है तो हम घबरा जाते हैं और कायर हो जाते हैं और यदि इस व्यवस्था के अंग नहीं बन पाते तो निस्सहाय हो जाते हैं । "

(4) परम्परात्मक मूल्यों का हास : वेबर कहते हैं कि वास्तव में, मुक्तिकरण जिसकी एक प्रमुख अभिव्यक्ति नौकरशाही है, वस्तुतः अतार्किक है । तार्किकता हमें उन परम्परागत मूल्यों से अलग कर देती है जो मानव जीवन को अर्थ और लक्ष्य प्रदान करते हैं ।

इस प्रकार, हम वेबर की नौकरशाही के प्रति आशंका से भी परिचित होते हैं । उनकी आशंकाएँ सर्वदा निर्मूल साबित नहीं हुई । वास्तव में, वह नौकरशाही के अन्धपुजारी नहीं थे, जैसा कि कुछ लोग उन्हें समझने की भूल करते हैं । वे महान चिन्तक नौकरशाही, जो आज के युग की एक सर्वग्राही प्रक्रिया है, के प्रति पूर्णतः आश्वस्त नहीं थे । उन्होंने यह भी प्रयास किया कि वह तरीका खोजा जाये जिसके द्वारा नौकरशाही से होने वाले दुष्परिणामों की रोकथाम की जा सके अथवा उन्हें न्यूनतम किया जा सके । जब नौकरशाही अपरिहार्य बन गई है, तब उसके नियन्त्रण के उपाय खोज लेने में ही बुद्धिमानी है ।

10.6 नौकरशाही पर नियंत्रण के उपाय : (Measure for control over Bureaucracy)

वेबर के अनुसार नौकरशाही सदैव शक्ति का एक यन्त्र रहा है और आज भी है । इसलिए जो इस वृहद् यन्त्र पर शासन स्थापित कर सकता है, वह शक्ति पर भी काबू पा जाता है । शक्ति पर इस प्रकार आधिपत्य में निम्नलिखित दो खतरे निहित हैं -

(1) आपातकाल अथवा आपत्तिकाल में नौकरशाही नेतृत्व शीघ्र काम नहीं कर पाता । दफ्तरी प्रक्रिया शीघ्र निर्णय के मार्ग में बाधा है और विपत्ति के समय तुरन्त निर्णय लेने ही पड़ते हैं ।

(2) पूँजीवादी व्यवस्थाओं में यह भी खतरा है कि पूँजीवादी व्यवस्थाओं में यह भी खतरा है कि पूँजीपति नौकरशाही की इस वृहद् मशीन पर आधिपत्य करके उसका प्रयोग अपने हितों के लिए कर सकते हैं ।

इसलिए वेबर ने नौकरशाही पर नियन्त्रण को अत्यन्त आवश्यक बताया है । वेबर का इस समस्या के हल के लिए यह सुझाव था कि सरकारी नौकरशाही पर संसद का नियंत्रण होना चाहिए । राजनेता जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं । यही नहीं, उनके कार्यकलाप जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं । यही नहीं, उनके कार्यकलाप जन-नेत्रों से किसी भी क्षण ओझल नहीं होते । राजनेता जन आलोचना के विषय भी बनाये जा सकते हैं । इन सभी तर्कों के आधार पर यही जान पड़ता है कि नौकरशाही राजनीतिक नेताओं के निर्देशन में कार्य करें । इस भाँति, वेबर ने सरकारी क्षेत्र में दोहरी प्रशासन पद्धति की सिफारिश की । फिर भी, वेबर के मन में यह आशंका बनी रही कि राजनीतिक नेता जन सम्पर्क के तो कुशल और अनुभवी व्यक्ति होते हैं परन्तु उन्हें विशिष्ट क्षेत्रों का इतना अधिक और तकनीकी ज्ञान नहीं होता जितना नौकरशाही को होता है । वेबर के ही शब्दों में ' 'राजनीतिक नेता और प्रशिक्षित अधिकारी जिस समय आमने-सामने होते हैं, उस समय प्रायः राजनेता अधिकारी के सम्मुख एक

नौसखिया ही प्रतीत होता है । " ऐसी स्थिति में यह सम्भावना हो सकती है कि राजनीतिक नेता ही नौकरशाही के द्वारा निर्देशित फोन लगे ।

10.7 नौकरशाही के उत्पत्ति के कारण
(Causes of origin of Bureaucracy)

वेबर का मानना है कि नौकरशाही की उत्पत्ति किन्हीं परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप हुई है जिसके मुख्य कारण निम्न बताये गये है-

1. वस्तु विनिमय आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था का विकास नौकरशाही के विकास के लिए उत्तरदायी है । जिसमें अधिकारी एवं कर्मचारियों को सेवा के बदले वस्तुओं के रूप में भुगतान के स्थान पर अब मुद्रा के रूप में वेतन दिया जाने लगा ।
2. प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के विकास एवं बड़े-बड़े औद्योगिक संगठनों की स्थापना (अर्थात औद्योगिकीकरण) के कारण भी नौकरशाहीतंत्र का विकास हुआ ।
3. प्रशासनिक कार्यो की जटिलता के कारण प्रशिक्षित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता ने नौकरशाही को जन्म दिया ।
4. आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था का भी नौकरशाही के जन्म में बड़ा हाथ रहा है ।

10.8 नौकरशाही की आलोचनाएं (Critics of Bureaucracy)

1. यद्यपि वेबर ने नौकरशाही के तकनीकी लाभों को सराहा है (प्रशंसा की है) किन्तु वे इसके दोषों के प्रति भी सावचेत थे । वे नौकरशाही में अधिकारियों द्वारा विशेष कार्यो पर सख्त नियंत्रण को मानवीय स्वतंत्रता के विरूद्ध मानते हैं ।
2. फ्रांसिस अब्राहम ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मिल्क का मानना है कि नौकरशाही संगठन में अन्ततः सत्ता से हेराफेरी (Manipulation) की अवधि में शक्ति का मूर्त से अमूर्तता की अर्थात् जानकार से अनजान (Unknown) की और प्रवाह होने लगता है और भौतिक स्तर की वृद्धि के साथ ही शौषण मनोवैज्ञानिक की तुलना में कम भौतिक रह जाता है ।
3. हेरा लेम्बोज के अनुसार वेबर का मानना है कि तार्किकीकरण की प्रक्रिया जिसका कि नौकरशाही एक प्रमुख हिस्सा है ही अतार्किक है ।' यह अन्ततः उद्देश्यविहीन है क्योंकि इसके द्वारा उन जीवन मूल्यों का ह्रास होता है जो मानव जीवन को अर्थ एवं ध्येय प्रदान करते हैं । किन्तु इस सीमाओं के बावजूद वृहद उद्योगिक समाजों में संगठन के संचालन के लिए नौकरशाही अति आवश्यक है।
4. मार्क्स के अनुसार नौकरशाही संगठन को केवल उत्पादन की शक्तियों के संदर्भ में ही समझा जा सकता है । उनका मानना है कि पूँजीवादी -समाज में जहाँ उत्पादन की शक्तियाँ कुछ ही लोगों के हाथों में होती है जिसे शासक वर्ग कहा जाता है, राज्य नौकरशाही द्वारा इसी वर्ग (शासक वर्ग) के हितों का संरक्षण करने की प्रवृत्ति पायी जाती है । वेबर भी मानते है कि इसको केवल एक प्रजातांत्रिक नियंत्रण वाली नौकरशाही ही नियंत्रण कर सकती है ।

   इसी संदर्भ में लेनिन ने कहा कि पश्चिमी संसदें (parliaments) केवल बातूनी दुकानें ' (Talking shops) है जबकि सरकार का वास्तविक कार्य तो राज्य नौकरशाही द्वारा बन्द दरवाजों

(Closed doors) में किये जाते हैं । मार्क्स का मानना है कि शासक वर्ग के नौकरशाही पर नियंत्रण को उत्पादन शक्तियों पर सामूहिक स्वामित्व के द्वारा ही हटाया जा सकता है ।

5. इटली के समाजशास्त्री रार्बट माइकल्स (Robert Michels)[7] ने कहा है कि हालांकि प्रजातंत्र बिना संगठन के जीवित नहीं रह सकता । वृहद् एवं जटिल समाजों में प्रभावपूर्ण तरीके से अपनी आवाज को उठाकर अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं । यही खासतौर पर शक्तिहीन मजदूरवर्ग के लिए सत्य है ।
6. रार्बट मर्टन (Robert Merton)[8] का मानना है कि नौकरशाही प्रक्रिया के कुछ तत्त्व संगठन के लिए अप्रकार्य या अपकार्य (Dysfunctional) हो सकते हैं । विशेषतौर से ये ऐसे व्यवहार को प्रेरित कर सकते हैं जो संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में बाधक हैं । मर्टन के अनुसार नौकरशाही तंत्र द्वारा लचीलेपन का अभाव, उद्देश्यविहीनता, लालफीताशाही (Red- tapisom), तथा अधिकारियों एवं कर्मचारियों के बीच मनमुटाव पैदा कर सकती है ।
7. इसी प्रकार से नौकरशाही संगठन की आलोचना इस बात को लेकर भी की जाती है कि अधिकारी वर्ग नियमों से इस सीमा तक बंध जाते हैं कि जो नियम किसी कार्य के निष्पादन के लिए साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं वे ही कुछ समय बाद स्वयं लक्ष्य या साध्य बन जाते हैं अर्थात् साधन ही साध्य बन जाते
8. वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की अवधारणा का कोई सुस्पष्ट आधार नहीं ज्ञात होता । यह उनकी कोरी प्राक्कल्पना मात्र प्रतीत होती है । वेबर द्वारा प्रस्तुत आदर्श प्रारूप के रूप में नौकरशाही आधुनिक युग में सम्भव ही नहीं है ।

10.9 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की अवधारणा उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्श प्रारूपों का ही एक स्वरूप है जिसका आधार विवेक है और उनके विशेषीकरण के सम्प्रत्यय का महत्त्वपूर्ण प्रयोग भी नौकरशाही व्यवस्था में देखने को मिलता है । नौकरशाही वेबर की तार्किक क्रिया (Rational Action) का सर्वोत्तम उदाहरण है जिसके अन्तर्गत साधन, साध्य, नियम एवं तथ्य होते है इसी से तीन प्रकार की सत्ता का निमार्ण होता है क्रमश: तार्किक या वैधानिक, परम्परागत तथा चमत्कारिक सत्ता । अत: हम कह सकते है कि नौकरशाही में प्रशासनिक नियम होते हैं, सत्ता का विभाजन होता है, लिखित फाइलें होती हैं, अधिकारियों कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है कानून के अनुसार कार्य होता है और अधिकारी कर्मचारी अपने योग्यता एव अनुभव के आधार पर निम्न पद से उच्च पद को प्राप्त करने के अवसर पा सकते हैं, जिनका एक स्थान से दूसरे स्थान, एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरण होता रहता हैं एवं वे अपनी पूरी क्षमता से कार्य करते है । किन्तु वेबर की नौकरशाही संगठन की विभिन्न समाजशास्त्रीयों द्वारा इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह पूँजीवादी एवं औद्योगिक समाज की देन है जिसमें प्रशिक्षित अयोग्यता, लालफीताशाही, अत्यधिक औपचरिकता तथा कर्मचारीतंत्र द्वारा यंत्रवत कार्य करने की प्रवृत्ति का निमार्ण होता है ।

10.10 मुख्य शब्दावली

नौकरशाही (Bureaucracy) कोई भी ऐसा संगठन जो विस्तृत आधार पर प्रशासकीय कार्यो को क्रमबद्ध रूप में चलाने के लिए बहु त से व्यक्तियों के कार्यो के द्वारा समन्वित होता है, नौकरशाही कहलाता है ।

तार्किकता (Rationality): किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यवस्थित तरीके से विभिन्न साधनों का आकलन कर उचित साधनों का चुनाव करना ।

आदर्श प्रारूप (Ideal Type) : अपेक्षित व्यवहार अथवा क्रिया जिसके द्वारा सामाजिक यर्थाथ अथवा वास्तविकता को समझा जा सकता है ।

सत्ता (Authority): वह जिसके पीछे कानून पद अथवा कोई वैधानिक आधार हो, सत्ता कहलाती है इन वैधानिक अधिकारों
या शक्ति के द्वारा वह अन्य व्यक्तियों अथवा संगठन को नियंत्रित करता है ।

10.11 अभ्यास प्रश्न

1. वेबर द्वारा प्रस्तुत ' 'नौकरशाही' ' अवधारणा की व्याख्या कीजिए ।
2. नौकरशाही की अवधारणा को परिभाषित कीजिए एवं इसकी विशेषताएं बताइए ।
3. नौकरशाही अवधारणा को परिभाषित करते हु ए इसकी आलोचनात्मक विवेचना कीजिए ।
4. सत्ता किसे कहते 'हैं? वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता के प्रकार बताइए ।

10.12 संदर्भ ग्रंथ

1. मैक्स वेबर दा थ्योरी ऑफ सोसियल एण्ड इकोनॉमिक ऑरगनाइजेशन
2. पीटर ब्लाउ एक्सचेन्ज एण्ड पावर इन सोसियल लाइफ, 1964 न्यूर्याक
3. हेरालेम्बोज एवं आर. एम. हेल्ड : सोसियोलॉजी: थीम्स एण्ड परस्पेक्टिव, 1980, ऑक्सफोर्ड, देहली।
4. फ्रान्सिस अब्राहम : मार्डन सोसियोलॉजिकल थ्योरी. एन इन्ट्रोडक्सन, 1982, ऑक्सफोर्ड, देहली

इकाई - 11

वैज्ञानिक प्रबंध : फ्रेडरिक विन्सलों टेलर तथा फेयोल का योगदान

इकाई की रूप रेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 वैज्ञानिक प्रबन्ध -आशय एवं परिभाषाएँ

11.3 वैज्ञानिक प्रबन्ध- लक्षण अथवा विशेषताएँ एवं मूलाधार

11.4 वैज्ञानिक प्रबन्ध- उद्देश्य एवं महत्त्व

11.5 वैज्ञानिक प्रबन्ध का विकास फ्रेडरिक टेलर का योगदान

11.5.1 टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

11.5.2 टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीके

11.5.3 टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल तत्व मानसिक क्रान्ति

11.6 हेनरी फेयोल का योगदान

11.7 वैज्ञानिक प्रबन्ध में टेलर के अनुयायिओं का योगदान

11.8 वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना और विरोध

11.9 सारांश

11.10 शब्दावली

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.12 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ्ने के बाद आप

- वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन कर सकेगें,
- वैज्ञानिक प्रबन्ध की विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे,
- वैज्ञानिक प्रबन्ध के उद्देश्य एवं महत्त्व को स्पष्ट कर सकेंगे,
- वैज्ञानिक प्रबन्ध के विकास में टेलर के योगदान की विवेचना कर सकेंगे,,
- टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं तकनीकें जान सकेंगे,
- टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल तत्व मानसिक क्रान्ति की विवेचना कर सकेंगे
- टेलर के अनुयायियों के योगदान का वर्णन कर सकेंगे,
- वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

परम्परागत प्रबन्ध का दृष्टिकोण समस्याओं के उत्पन्न होने पर उनको सुलझाना था । समस्याओं के प्रति अग्रिम रूप से कोई व्यवस्था नहीं की जाती थी । उसे एक कला के रूप में देखा

जाता था । जिसके लिए 'जन्मजात योग्यता को महत्त्वपूर्ण माना जाता था । 18 वीं और 19 वीं शताब्दी में प्रबन्ध की परम्परागत पद्धति (Rule of thump Method) 20 वीं शताब्दी की औद्योगिक प्रणाली की समस्याओं को हल करने में असमर्थ थी । वर्तमान औद्योगिक प्रणाली की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई जटिलता व विविधता ने 20 वीं शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन को जन्म दिया फैक्टरी प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाने लगा, जिससे उत्पादन के विभिन्न घटकों में समन्वय स्थापित करने तथा प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समुचित हल निकालने के लिए प्रबन्ध में विज्ञान का विकास हुआ । 20 वीं शताब्दी में यह माना जाने लगा कि उद्यम का कुशल एवं उचित प्रबन्ध करने के लिए परम्परागत प्रबन्ध विधियों के स्थान पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित प्रबन्ध पद्धति को अपनाना आवश्यक हैं । 20 वीं शताब्दी के पहले दशक में टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्धन का प्रतिपादन किया ।

11.2 वैज्ञानिक प्रबन्ध- आशय एवं परिभाषाएं

वैज्ञानिक प्रबन्ध दो शब्दों के संयोग से बना है - वैज्ञानिक + प्रबन्ध । वैज्ञानिक से तात्पर्य है - विज्ञान सम्बन्धी और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट जानकारी अथवा ज्ञान की अभिवृद्धि । 'प्रबन्ध' से आशय किसी कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने से है । इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ है कि विशिष्ट ज्ञान से किसी कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से करना ।

अनुभव द्वारा सुधार व विकास करने के परम्परागत सिद्वान्त 'गलती करो और सुधारो' के स्थान पर निश्चित सिद्धान्तों एवं नियमों के आधारो पर प्रबन्ध का संचालन करना वैज्ञानिक प्रबन्ध है ।

एफ. डबल्यू. टेलर के मतानुसार ' 'यह जानने की कला है कि तुम व्यक्तियों से क्या कराना चाहते हो तथा यह देखना कि वे सबसे उचित व सस्ते ढंग से कार्य करते हैं, वैज्ञानिक प्रबन्ध कहलाता हैं ।'

जोन्स के अनुसार, ' वैज्ञानिक प्रबन्ध उत्पादन के नियन्त्रण एवं विधियों में एक नवीन अनुशासन प्राप्त करने के लिए नियमों का एक समूह है । "

एच. एल.पर्सन के मतानुसार, ' वैज्ञानिक प्रबन्ध का आशय ऐसे संगठन तथा प्रणालियों से है जो उद्देश्य युक्त सामूहिक प्रयासों से पूर्ण हैं तथा जिनका निर्माण वैज्ञानिक अनुसंधान और विश्लेषण के आधार पर हुआ हो, न कि मनमाने तौर पर अथवा परम्परागत त्रुटि सुधार (Trail and Error) प्रणाली के आधार पर । "

एच. पी. केण्डाल ने प्रबन्ध का कुशलता के आधार पर वर्गीकरण करते हुए तीन प्रकार के प्रबन्ध बताए हैं -

1. अव्यवस्थित प्रबन्ध (Unsystematised Management)
2. व्यवस्थित प्रबन्ध (Systematised Management)
3. वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)

अव्यवस्थित प्रबन्ध में कार्य करने की पद्धति दोषपूर्ण होती है । व्यवस्थित प्रबन्ध में समस्त क्रियाएँ नियमित ढंग से की जाती है । पहली पद्धति की भाँति व्यवस्थित प्रबन्ध में श्रमिकों एव कर्मचारियों में शिथिलता नहीं रहती है । परन्तु व्यवस्थित प्रबन्ध में नियोजन एवं नियन्त्रण का

केन्द्रीकरण नहीं होता है श्रमिकों की कार्यक्षमता का माप नहीं किया जाता तथा प्रबन्धक यह जानने की चेष्टा नहीं करते कि श्रमिक पूर्ण क्षमता से कार्य कर रहें हैं अथवा नहीं या श्रमिक जिस कार्य को कर रहे हैं, उसको करने की उनमें उचित क्षमता है या नहीं । ' वैज्ञानिक प्रबन्ध' ' इस दृष्टि से भी दोषरहित रहता है । इसमें नियोजन तथा नियन्त्रण का केन्द्रीकरण होता है । श्रमिकों की कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए तथा अधिकतम उत्पादन के लिए विभिन्न उत्पादन क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है तथा पूर्व अनुसन्धान तथा प्रयोगों के परिणामों के अनुसार उनमें परिवर्तन किया जाता है । संक्षेप में लगातार अन्वेक्षण के द्वारा प्रबन्ध को प्रभावशाली बनाने को वैज्ञानिक प्रबन्ध कहते हैं ।

संक्षेप में, वैज्ञानिक प्रबन्ध में आयोजन, अनुसन्धान, विश्लेषण, प्रयोग, विवेक, आदि बातों को अधिकतम महत्त्व दिया जाता है । वैज्ञानिक प्रबन्ध स्पष्टत: प्रबन्ध की वैज्ञानिक विधि है जिसके द्वारा साधनों का आदर्शतम समन्वय करके न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके ।

11.3 वैज्ञानिक प्रबन्ध - लक्षण अथवा विशेषताएँ एवं मूलाधार

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर वैज्ञानिक प्रबन्ध की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. निश्चित लक्ष्य एवं योजना

   वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत लक्ष्यों की एक रूपरेखा तैयार की जाती है । यह निश्चित कर दिया जाता है कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक साधन किस प्रकार जुटाए जायेंगे और उन्हें किस प्रकार उपयोग किया जाएगा । न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करने के लिए कौन-कौन सी विधियाँ अपनायी जा सकती हैं । इन सबको निश्चित योजना का रूप दे दिया जाता है ।

2. वैज्ञानिक विश्लेषण तथा प्रयोग -

   वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रत्येक कार्य के लिए तथ्यों पर आधारित एक योजना होती है । वास्तव में, तथ्यों का विश्लेषण करना तथा विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षो का प्रयोग करके उनके गुण-दोष जांचना वैज्ञानिक प्रणाली है । वैज्ञानिक प्रबन्ध में योजना का प्रायोगिक महत्व, उपयोगिता तथा उपलब्ध परिस्थितियों में उसकी उपयुक्ता जांचने के बाद ही योजना लागू की जाती है ।

3. नियमावली -

   विश्लेषण तथा प्रयोग के आधार पर उपयुक्त ठहराए गये निष्कर्षो को क्रियान्वित करने के लिए नियम बनाये जाते हैं । नियमों का पालन प्रत्येक कर्मचारी के लिए आवश्यक होता है ताकि प्रबन्धकीय अनुशासन बना रहे ।

4. वैज्ञानिक कार्यविधि

   योजना के क्रियान्वयन के लिए वैज्ञानिक कार्यविधि अपनायी जाती है । श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य के लिए वैज्ञानिक कार्यविधि विकसित की जाती है और इसके द्वारा प्राचीन परम्परागत पद्धतियों को प्रतिस्थापित किया जाता है ।

   वैज्ञानिक प्रबन्ध परम्परा (Tradition) अन्र्तज्ञान (Intuition) अन्धविश्वास (Superstituion) पर आधारित न होकर विज्ञान पर आधारित है । डा. टेलर के अनुसार. ' वैज्ञानिक प्रबन्ध 75 प्रतिशत विश्लेषण तथा 25 प्रतिशत सामान्य बुद्धि है । "

5. मितव्ययिता -

वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधार है। हर प्रकार के अपव्यय को दूर करने तथा उत्पादन के गैर- आवश्यक तत्वों को खत्म करने के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं जिससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन हो सके ।

6. शोध में निरन्तरता -

वैज्ञानिक प्रबन्ध सुधरी हुई क्रियाओं का प्रबन्ध में प्रयोग है । अतः इसे जीवित रखने के लिए आवश्यक है कि समयानुसार अध्ययन किया जाता रहे। अनुसन्धान और शोध की निरन्तरता के बिना वैज्ञानिक प्रबन्ध सफल नहीं हो सकता ।

7. गतिशील प्रकृति -

वैज्ञानिक प्रबन्ध एक प्रगतिशील व परिवर्तनशील विचार है जिसमें 'विकास एवं परिवर्तन' के सिद्वान्त को सर्वोपरि माना जाता है । निरन्तर सुधार एवं परिवर्तन के लिए जो प्रबन्ध तैयार नहीं है, वह आज के वैज्ञानिक युग में जीवित नहीं रह सकता ।

8. कार्यक्षमता में वृद्धि -

वैज्ञानिक प्रबन्ध का मुख्य लक्षण कार्यक्षमता में वृद्धि है । समय बचाने, लागत कम करने तथा शीघ्र कार्य सम्पन्न करने वाली प्रणालियों के निरन्तर प्रयोग से कार्यक्षमता में वृद्धि स्वाभाविक है ।

9. टीम भावना -

सामूहिक हित के लिए सामूहिक प्रयास वैज्ञानिक प्रबन्ध का लक्ष्य है। वैज्ञानिक प्रबध के अर्न्तगत प्रबन्ध का कार्य सभी कर्मचारियों में टीम भावना (Team Spirit) उत्पन्न करना है तथा उन्हें लक्ष्य प्राप्ति के लिए सामूहिक रूप से प्रेरित करना है ।

10. उत्तरदायित्व का निर्धारण

वैज्ञानिक प्रबन्ध में कार्य प्रभाव निश्चित होते है तथा निष्पादन का समय, लागत, किस्म, अपव्यय आदि सभी पूर्व आयोजित होते है, अत: उत्तरदायित्व का निर्धारण अधिक निश्चिततापूर्वक किया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध में कोई व्यक्ति अपना उत्तरदायित्व किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं टाल सकता तथा किसी को उसकी कार्यभार सीमा से अधिक उत्तरदायित्व नहीं संभाला जा सकता।

11. प्रभावकारी नियन्त्रण

योजनाबद्ध ढंग से तथा पूर्ण निश्चित नियमों के अनुसार कार्य करने से नियन्त्रण प्रभावी हो जाता है। कुशल नियन्त्रण वैज्ञानिक प्रबन्धक का एक प्रमुख लक्षण है। फेयोल के अनुसार, ' 'नियन्त्रण से' आशय यह देखना है कि हर चीज नियम तथा दिए गए आदेश के अनुकूल ही होती है ।"

12. आत्मीयता का भाव -

जब तक उद्योग में आत्मीयता का भाव उत्पन्न नहीं होता है, उत्तदायित्वपूर्ण ढंग से सारी व्यवस्था का संचालन सम्मव नहीं है । वैज्ञानिक प्रबन्ध में श्रमिकों व नियोक्ताओं के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है, जिससे कि वे अपने को एक दूसरे का विरोधी समझने के बजाय सहयोग समझे । वे अपने को एक पथ के दो सहयात्री समझें ।

11.4 वैज्ञानिक प्रबन्ध - उद्देश्य एवं महत्व

न्यूनतम व्यय पर अधिकतम लाभ प्राप्त करने की इच्छा ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को जन्म दिया है । इसका मुख्य उद्देश्य श्रम लागत को यथासम्भव कम करना तथा यन्त्रों के अधिकतम प्रयोग को सम्भव बनाना है । कुमारी मैरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार, ' 'वैज्ञानिक प्रबन्ध मानवीय एवं भौतिक शक्ति तथा समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करके सहकर्मियों तथा समाज के मध्य सन्तुष्टि प्रदान करके सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति करता है । ' 'टेलर के अनुसार, " वैज्ञानिक प्रबन्ध इस मान्यता पर आधारित है कि श्रमिक तथा नियोक्ता दोनों के हित (स्वार्थ) एक हैं और दीर्घकाल में नियोक्ता की समृद्धि के बिना कर्मचारी की समृद्धि नहीं हो सकती है । श्रमिकों को इच्छित अधिक मजदूरी तथा नियोक्ता को सस्ता श्रम वैज्ञानिक प्रबन्ध से ही सम्भव है । "

डी. जोन्स के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. कार्य की सभी शाखाओं में अधिक दक्षता की दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध करना ।
2. उपकरण, कच्चा माल, कार्यविधि तथा कार्यदक्षता में सुधार और प्रमापीकरण करना ।
3. कार्य विन्यास, मार्ग निर्धारण, समय क्रम निर्धारण, उत्पादकीय सामग्री का आयोजन, क्रम भण्डारण तथा लेखा विधियों में सुधार करना ।
4. संस्थाओं तथा शाखाओं में समन्वय के अधिक अवसर उपलब्ध करना और उन पर पर्याप्त नियन्त्रण रखना जिससे कार्य विलम्ब, त्रुटियों, दुर्घटनाओं तथा कार्य के प्रति उपेक्षा की मात्रा कम हो सके।
5. सामयिक शिक्षण, निरन्तर मार्गदर्शन और तत्काल पुरस्कार की व्यवस्था करना ।
6. अनुमान और पूर्व धारणाओं के आधार पर बने हु ए नियमों के बदले तथ्यों तथा विश्लेषण के आधार पर नियम बनाना ।
7. विशेषज्ञ तथा सलाहकार व्यवस्था द्वारा व्यक्तिगत निर्णय के क्षेत्र को सीमित करना ।
8. श्रमिकों को अत्यधिक कार्यभार, थकान अथवा दुर्घटनापूर्ण कार्यो से सुरक्षित रखना ।
9. श्रमिकों की योग्यता के अनुसार काम उपलब्ध, उन्हें प्रशिक्षण द्वारा उन्नति के अवसर प्रदान करना और कार्यक्षमता में वृद्धि करना ।
10. श्रम और पूँजी में समन्वय स्थापित करना ।

टेलर के अनुसार उत्पादन में कमी के दो कारण हैं

1. श्रमिकों में स्वभावत: काम करने की प्रवृत्ति अर्थात् स्वाभाविक ढिलाई (Natural Soldering)
2. दोषपूर्ण संगठन से कम काम होता है अर्थात् व्यवस्थित ढिलाई (Systematic Soldering) उन्होने प्रबन्ध की अकुशलता के भी दो कारण बताये हैं
   (1) कार्य कितने समय में होना चाहिए इसका उन्हें ज्ञान नहीं ।
   (2) वैज्ञानिक विधि का ज्ञान न होना । वैज्ञानिक प्रबन्ध से ये सभी दोष एवं अपव्यय समाप्त हो जाते है और न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन होता है ।

11.5 वैज्ञानिक प्रबन्ध का विकास फ्रेडरिक टेलर का योगदान

उदय और विकास :

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में वैज्ञानिक प्रबन्धन का प्रतिपादन किया । यह प्रशासन का पहला सामंजस्यपूर्ण सिंद्वात है । लेकिन इस सिद्वांत की शुरूआत करने वाले टेलर नहीं थे । उनके पहले चार्ल्स बावेज हेनरी आर. टाउन, फ्रेडरिक हॉल्सी और हेनरी मेटकाफ वैज्ञानिक प्रबंधन की कुछ पद्धतियाँ और तकनीक विकसित कर चुके थे । हालांकि "वैज्ञानिक प्रबंधन' नामक शब्द को पहली बार लुई ब्रेंडीज ने प्रयोग किया था, मगर टेलर ने सांगठनिक कुशलता और वित्त को बढावा देने की पूर्ण क्रमबद्व व्याख्या के लिए किया ।

वैज्ञानिक प्रबंधन 'टेलरइज्म' के रूप में भी जाना जाता है ।

वैज्ञानिक प्रबंधन में टेलर के योगदान उनकी रचनाओं (1) ए पीस रेट सिस्टम (1895) (2) शॉप मैनेजमेंट (1903) (3) आर्ट ऑफ कटिंग मेटल्स (1906), और (4) प्रिंसिपल्स ऑफ साइंटिफिक मैनेजमेंट (1911) में शामिल है।

टेलर के बाद वैज्ञानिक प्रबंधन के विकास में कई प्रबंधन चिंतकों ने योगदान किया । उनमें प्रमुख हैं- एच.एल.गांट, एचं इमर्सन, एफ.बी. गिल्ब्रेथ, एल.एम. गिलब्रेथ, सी.जी बार्थ, एस.ई. थॉम्सन, एम.एल.कूक और एच. के. हैथवे ।

औद्योगिक और सरकारी दोनों ही संगठनों के प्रशासनिक विचार और प्रणाली पर वैज्ञानिक प्रबंधन आंदोलन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है । अमेरिका से यह सोवियत संघ पहुँचा जहाँ 1 920-1940 के बीच इसने स्ताखानोवाश्ट आदोलन का रूप लिया । इसके साथ ही यह अन्य देशों में फैला ।

मूल विषय वस्तु - (Basic Theme)

टेलर के अनुसार, प्रबंधन सच्चा विज्ञान है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से निर्धारित कानूनों, नियमों और सिद्वान्तों पर आधारित है और हर प्रकार के संगठन में सार्वभौमिक रूप से लागू होता है । उनके शब्दों में, "एक ही सिद्वान्त का प्रयोग सभी सामाजिक गतिविधियों में समान बल के साथ किया जा सकता है - हमारे घरों, हमारे खेतों, छोटे और बड़े व्यापारियों के कारोबार के प्रबंधन में, हमारे चर्चो लोकोपकारी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और सरकारी विभागों के प्रबंधन में ।"

वैज्ञानिक प्रबंधन का सरोकार औद्योगिक संगठनों की प्रबंधकीय प्रथाओं और उत्पादन प्रक्रियाओं में वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग से था । इसने संगठन के निम्नतम स्तर पर ध्यान केंद्रित किया । इसका लक्ष्य काम की भौतिक प्रकृति और कर्मचारियों की शारीरिक प्रकृति के बीच संबंध का अध्ययन करना था । इसने सांगठनिक कुशलता और वित्त में सुधार के लिए विशिष्टीकरण, पूर्वसूचनीयता, तकनीकी क्षमता और तर्कसंगत होने पर बल दिया ।

औद्योगिक संगठनों में अपने प्रयोगों के दौरान टेलर का सामना कामचोरी की परिघटना से हुआ, जिसमें मजदूर की प्रवृत्ति उत्पादन को बाधित करने की होती है । उन्होने इस परिघटना को दो भागों में विभाजित किया- प्राकृतिक कामचोरी और व्यवस्थित कामचोरी । पहली कामचोरी व्यक्तिगत कारकों जैसे - आराम से काम करने, ज्यादा परिश्रम न करने व इसी प्रकार की आदतों का नतीजा है । जबकि दूसरी कामचोरी सांगठनिक और सामाजिक कारकों का परिणाम है । उन्हें लगा कि संगठन की कुशलता बढाने का बुनियादी तरीका वैज्ञानिक तकनीक से 'कामचोरी' कम करने में है ।

टेलर ने अपने वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्धान्त को तीन कल्पनाओं पर आधारित किया -

(1) वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से सांगठनिक कार्यप्रणाली उन्नत की जा सकती है ।

(2) एक अच्छा मजदूर काम को शुरू करने वाला नहीं बल्कि प्रबंधन के निर्देशों का मानने वाला मजदूर है ।

(3) हर मनुष्य एक 'आर्थिक मनुष्य' है यानी, वह आर्थिक कारकों से ही प्रेरित होता है ।

11.5.1 टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंधन के चार सिद्धान्त दिए हैं -

(1) मानव कार्य के प्रत्येक संघटन के लिए विज्ञान विकसित करना, जो पुरानी 'व्यवहार' (Rule of thumb) पद्धति की जगह लेगा ।

(2) वैज्ञानिक तरीके से मजदूरों का चयन और फिर उन्हें शिक्षित, प्रशिक्षित और विकसित करना । (जबकि पहले मजदूर खुद अपने काम का चयन करते थे और जहाँ तक हो सके, खुद को प्रशिक्षित करते थे।)

(3) इस लक्ष्य के लिए विकसित वैज्ञानिक सिद्धातों के अनुसार ही काम हो रहा है, यह सुनिश्चित करने के लिए प्रबंधन मजदूरों का पूरी तरह सहयोग करें ।

(4) प्रबन्धन और मजदूरों के बीच कामों का समान बटँवारा जरूरी है । प्रबंधन हर वह काम ले जिसके लिए वह पूरी तरह उपयुक्त हो । पहले सारे कामों और जिम्मेदारियों का बड़ा हिस्सा मजदूरों पर लाद दिया जाता था ।

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंधन के निम्न लक्षणों को पहचाना, जो उपर्युक्त चार सिद्धान्तों का समाहार करते है-

(क) व्यवहार (Rule of thumb) नहीं, विज्ञान,

(ख) विसंगति नहीं, सामंजस्य

(ग) व्यक्तिवाद नहीं, सहयोग,

(घ) बाधित उत्पादन की जगह अधिकतम उत्पादन,

(ङ) प्रत्येक मनुष्य को अत्याधिक कुशल और उन्नत बनाना ।

टेलर के अनुसार 'वैज्ञानिक प्रबंधन' में मजदूरों के लिए उनके कर्तव्यों, कामों, सहकर्मियों और उनके मालिकों के प्रति एक पूर्ण बौद्धिक क्रान्ति शामिल है । प्रबंधकों के लिए उनके मजदूरों और उनकी समस्याओं के प्रति एक सम्पूर्ण बौद्धिक क्रान्ति है । इस तरह (मजदूर और प्रबंधक) दोनों ही पात्रों की ओर से 'बौद्धिक क्रान्ति' इस योजना की माँग करती है कि उनके पारस्परिक हित असंगत नहीं है और दोनों सहयोग से ही उन्नति कर सकते हैं न कि टकराव से यही वैज्ञानिक प्रबंधन का सार है ।

टेलर के अनुसार, प्रबंधन का लक्ष्य मालिकों की अधिकतम समृद्धि और साथ ही कर्मचारी की अधिकतम समृद्धि हासिल करना होना चाहिए ।

रीनहार्ड बेंडिक्स ने अपनी रचना 'वर्क एण्ड अथॉरिटी इन इंडस्ट्री' में कहा है कि "हर मजदूर की उत्पादक क्षमता को अधिकतम बढाकर वैज्ञानिक प्रबंधन मजदूर और मालिक दोनों की ही आय को अधिकतम बनाएगा । इसलिए पूँजी और श्रम के बीच के सारे संघर्षो का समाधान इस विज्ञान के परिणामों से ही हो जाएगा ।"

11.5.2 टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंधन की तकनीकें

वैज्ञानिक प्रबंधन के उपर्युक्त सिद्धांतों को लागू करने में वैज्ञानिक प्रबंधन की तकनीकें (क्रियाविधि या पद्धतियाँ) मदद करती हैं । वे हैं -

कार्यात्मक फोरमैनशिप - टेलर ने कार्यात्मक फोरमैनशिप की अवधारणा का समर्थन किया जिसके अन्तर्गत एक मजदूर आठ कार्यात्मक फोरमैनों द्वारा पर्यवेक्षित और मार्गदर्शित किया जाता है (पानी विशेष पर्यवेक्षकों द्वारा) । इस तरह उन्होंने एक पर्यवेक्षक की व्यवस्था को बारिज किया (जो निर्देशों में एकता, एकरेखीय पद्धति या सैन्य संगठन के रूप में भी जानी जाती है ।) जिसमें एक मजदूर को सिर्फ एक श्रेष्ठतर से आदेश प्राप्त होते हैं । इन आठ कार्यात्मक फोरमैनों में से चार योजना के लिए जिम्मेदार होते है और योजना कक्ष में बैठते हैं । वे है -

(1) कार्यक्रम व रूट-क्लर्क, (2) निर्देश-कार्ड क्लर्क,

(3) समय-व-लागत-क्लर्क, (4) कारखाना अनुशासक ।

अन्य चार कार्यात्मक फोरमैन कारखाना स्थल पर कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार होते हैं । वे है (1) टोली बॉस (2) गति बॉस (3) निरीक्षक, व (4) मरम्मत बॉस ।

असल में हर मजदूर के आठ कार्यात्मक बॉस होगें । इस प्रकार यह विशिष्टीकरण में सहायक होगा और साथ ही योजना को कार्यान्वयन से अलग करेगा । हिक्स व गुलेट की राय है, "टेलर का कार्यात्मक विशेषज्ञों का विचार तो जीवित है, मगर उनके द्वारा परिकल्पित लाइन अफसरों के रूप में नहीं, बल्कि स्टाफ विशेषज्ञों के रूप में ।"

गति अध्ययन - यह कार्य पद्धतियों के मानकीकरण की एक तकनीक है । इसमें किसी कार्य विशेष में समाहित सभी गतियों का अवलोकन और फिर गतियों के सर्वश्रेष्ठ समुच्चय का निर्धारण शामिल है । इस प्रकार यह औजारों और साधनों, कच्चे माल, हस्त व शरीर गति इत्यादि पर विचार के साथ बेहतर काम को निर्धारित करने के लिए बनाया गया है । संक्षेप में, यह काम करने के 'एक सर्वश्रेष्ठ रास्ते की तलाश के लिए बना था ।

समय अध्ययन - यह काम खत्म होने के मानक समय को निर्धारित करने के लिए प्रयुक्त होता है । यह रोजाना के विशाल काम के नियोजन में मदद करता है और गति अध्ययन के बाद आता है । इस तकनीक के लिए स्टॉप वॉच का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।

अंतरीय पीस रेट योजना - टेलर के गति और समय अध्ययनों द्वारा निर्धारित मानकों के आधार पर पीस रेट द्वारा भुगतान का सुझाव दिया । इसलिए इस भुगतान योजना को अंतरीय पीस रेट योजना कहा जाता है । इस योजना के तहत मजदूरों को मानक तक निम्न पीस रेट मानक पर एक बडे बोनस और मानक से ऊपर ऊँचे पीस रेट का भुगतान किया जाता है । निश्चित है, भुगतान की यह योजना मजदूरों को अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करने के लिए प्रेरित करेगी । टेलर ने कहा कि मजदूरों को प्रेरित करने के लिए पीस रेट प्रत्यक्ष और तेज होने की वजह से मुनाफा साझेदारी योजना से ज्यादा प्रभावी हैं । टेलर ने सुझाव दिया कि जो मजदूर (वैज्ञानिक चुनाव, प्रशिक्षण और विकास के बाद) मानक के अनुसार उत्पादन करने में अक्षम या अनिच्छुक हो, उसे निकाल दिया जाना चाहिए ।

अपवाद सिद्धान्त - इसके अनुसार प्रबंधन हर दिन के काम का निर्धारण करेगा और निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति पर पुरस्कार और असफलता पर दंड देगा । टेलर ने सुझाया कि जिन वस्तुओं का उत्पादन मानक के अनुसार हो रहा हो, उसमें प्रबंधकों को ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिए, बल्कि उनका सरोकार उन अपवाद-स्वरूप वस्तुओं से होना चाहिए जिनका उत्पादन मानकों के अनुसार नहीं हो रहा हैं ।

अन्य तकनीकें - उपर्युक्त तकनीकों के अलावा, टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंधन के अपने सिद्वांत की पुष्टि के लिए निम्न तकनीकों का भी विकास किया -

(1) व्यापार में प्रयोग किए जाने वाले औजार और साधनों के साथ ही मजदूरों की कार्यवाहियों और गतियों का मानकीकरण।

(2) मैन्युफैक्चर उत्पाद और साथ ही मैन्युफैक्चर में इस्तेमाल किए गए साधनों के वर्गीकरण के लिए स्मरण-विषयक यंत्र ।

(3) अलग योजना सेल या विभाग की स्थापना ।

(4) समय बचाने के साधनों जैसे स्लाइड रूल का प्रयोग ।

(5) आधुनिक लागत यंत्र ।

(6) एक पथ निर्देशन तंत्र ।

(7) मजदूरों के लिए निर्देश कार्ड ।

11.5.3 टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंधन का मूल तत्व: मानसिक क्रान्ति

टेलर के अनुसार मानसिक क्रान्ति दो शब्दों का संयोजन है जिसमें मानसिक से तात्पर्य है' मस्तिष्क से सम्बन्धित अर्थात् सोचना-विचारना और क्रान्ति से तात्पर्य है सोचने विचारने में तीव्र परिवर्तन मानसिक क्रान्ति वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधारभूत सिद्वान्त है । इसका आशय श्रमिकों एवं प्रबन्धकों की मान्यताओं, पूर्व-धारणाओं एवं विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना है ।

टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंध का उद्देश्य श्रम व्यय को घटाना तथा यन्त्रों का अधिकतम उपयोग कर न्यूनतम लागत पर अच्छा एवं अधिक उत्पादन करना होता है । इसके लिए अनेक उपाय किये जाने है, जैसे, श्रमिकों का वैज्ञानिक चुनाव एवं प्रशिक्षण, वस्तुओं व यन्त्रों की उचित व्यवस्था, कार्य का समूचित वितरण, प्रेरणात्मक मजदूरी का प्रयोग, प्रभावी संगठन एवं कारखाने का स्वास्थ्यपूर्ण वातावरण । इन सब उपायों के उपरान्त भी श्रम प्रबन्ध के पारस्परिक सहयोग एवं मधुर संबंधों के अभाव में वैज्ञानिक प्रबंध के उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । श्रम प्रबंध में सहयोगपूर्ण संबंध दोनों पक्षों में पूर्ण मानसिक क्रान्ति होने पर ही सम्भव है । श्रम एवं प्रबन्ध के मध्य बढ़ते हुए विरोध को दूर करने के लिए दोनों में मानसिक क्रान्ति आवश्यक है । श्रमिक प्रबन्धकर्ता को अपना विरोधी न मानकर अपना हितैषी मानने लगें और इसी प्रकार प्रबन्ध वर्ग भी श्रमिकों के प्रति शोषण की प्रवृति न रखते हुए उनके समुचित विकास के सम्बन्ध में सोचे और कार्य करें । श्रमिक वर्ग के कार्य के प्रति तथा प्रबन्ध वर्ग के प्रति अपने कर्तव्यों का उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा । प्रबन्धकों को ऐसा वातावरण बनाना होगा जिसमें सबके प्रति सद्व्यवहार हो, सबकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान हो और सबके प्रति न्याय हो और उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि आधुनिक उद्योगो के विकास में निर्णायक तत्व मुद्रा नहीं, मनुष्य होते हैं ।

11.6 हेनरी फेयोल (184-1025) का योगदान

फेयोल का जन्म सन् 1641 में फ्रांस में हुआ। उसने इन्जीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की और कोयले के उद्योग में वह सामान्य प्रबन्धक के पद पर पदोन्नत किया गया। उसने वहाँ 22 वर्ष तक कार्य किया। जब फेयोल इस उद्योग में गया था तो कम्पनी की हालत अत्यधिक खराब थी, किन्तु जब वे रिटायर हुए तो कम्पनी की दशा बहुत अच्छी थी। फेयोल नेअपने अनुभवों के आधार पर 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट' नामक पुस्तक की रचना की जो सन् 1918 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में फेयोल ने इस बात पर जोर दिया है कि प्रबन्ध का कार्य भी प्राविधिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। फेयोल के प्रमुख विचार निम्न प्रकार हैं :-

(1) क्रियाओं का विभाजन - फेयोल ने औद्योगिक उपक्रमों की सम्पूर्ण क्रियाओं को निम्न 6 भागों मे, बाँटा:-

(अ) तकनीकी - उत्पादन, निर्माण, अनुकूलन ।

(आ) वाणिज्यिक - क्रय, विक्रय, विनिमय ।

(इ) वित्तीय - पूँजी की प्राप्ति एवं उसका अनुकूलतम उपयोग

(ई) सुरक्षा - व्यक्ति एवं सम्पति का संरक्षण ।

(उ) लेखांकन - स्टॉफ परीक्षण, चिट्ठा, लागतें, आंकडें ।

(ऊ) प्रबन्धकीय - नियोजन, संगठन, निदेशन, समन्वय व नियन्त्रण ।

फेयोल के अनुसार सभी प्रकार के उपक्रमों में से क्रियाएं आवश्यक रूप से विधमान रहती हैं। फेयोल ने इन छ: क्रियाओं में से प्रबन्धकीय क्रियाओं को सबसे महत्वपूर्ण माना है ।

(2) विभिन्न गुणों का महत्व - फेयोल के अनुसार प्रत्येक कार्य के निष्पादन में विशेष योग्यता एवं गुणों की आवश्यकता होती है । किसी भी उपक्रम में की जाने वाली क्रियाओं के लिए आवश्यक गुणों एवं योग्यताओं को फेयोल ने निम्न छ: श्रेणियों में विभक्त किया है :-

(अ) शारीरिक गुण - स्वास्थ्य, शक्ति, दक्षता ।

(आ) मानसिक गुण - समझने और सीखने की योग्यता ।

(इ) नैतिक गुण - ऊर्जा, दृढ़ता, दायित्व स्वीकृति, पहल, वफादारी कौशल ।

(ई) सामान्य शिक्षा - विभिन्न मामलों की सामान्य जानकारी ।

(उ) विशेष ज्ञान - उस विशिष्ट क्रिया के सम्बन्ध में विशिष्ट ज्ञान ।

(ऊ) अनुभव - कार्य विशिष्ट के निष्पादन से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ।

प्रत्येक उपक्रम में कार्य की प्रकृति एवं महत्व के आधार पर इन गुणों की आवश्यकता होती है ।

(3) प्रबन्धकीय प्रशिक्षण की आवश्यकता - हेनरी फेयोल पहले व्यक्ति थे जिन्होंने प्रबन्ध के सिद्धान्तों का व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण दिऐ जाने पर जोर दिया । प्रबन्धकीय योग्यता को विकसित करने के लिए उन्होंने स्कूल, कॉलेज व व्यावसायिक संस्थानों में प्रबन्ध विषय को पढ़ाए जाने का सुझाव रखा।

(4) प्रबन्ध के सामान्य सिद्वान्त - फेयोल ने प्रबन्ध के कतिपय सामान्य सिद्वान्त प्रतिपादित किए, जो इस प्रकार है:-

(1) कार्य, विभाजन, (2) अधिकार एवं दायित्व, (3) अनुशासन, (4) आदेश की एकता, (5) निदेशन की एकता, (6) व्यक्तिगत हित का सामान्य हित के अधीन होना, (7) कर्मचारियों का

पारिश्रमिक, (8) केन्द्रीकरण, (9) सोपान श्रृंखला, (10) व्यवस्था, (11) समता, (12) कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व (13) पहलपन, (14) सहयोग की भावना ।

(5) प्रबन्ध के तत्व - फेयोल के अनुसार प्रबन्ध के प्रमुख तत्व हैं- (1) नियोजन, (2) संगठन, (3) निदेशन, (4) समन्वय तथा (5) नियन्त्रण ।

संक्षेप में, फेयोल एवं टेलर का कार्य समकालीन था तथापि दोनों के दृष्टिकोणों में था । टेलर का कार्य कार्यशाला स्तर (Shoplevel) का था जबकि फेयोल ने उच्च प्रशासन प्रबन्ध की ओर अपने कार्य को केन्द्रीत किया था । टेलर के कार्य का मुख्य सम्बन्ध श्रमिक एवं उत्पादन के तकनीकी पहलुओं से था तथा उन्होंने प्रबन्ध में तकनीकी योग्यता पर विशेष बल दिया था । दूसरी और फेयोल ने उच्च स्तरीय प्रबन्ध पर कार्य किया था, तथा प्रबन्धकीय योग्यता एवं प्रबन्ध के सुद्वढ सिद्धान्तों व तकनीकों के प्रयोग पर जोर दिया था ।

11.7 वैज्ञानिक प्रबंधन में टेलर के अनुयायियों का योगदान

एच.एल. गांट - हेनरी एल गांट ने वैज्ञानिक प्रबंधन के विकास में निम्न योगदान किए

(1) उन्होंने प्रोत्साहन भुगतान के कार्य व बोनस तंत्र की शुरूआत की । इसके अनुसार किसी मजदूर को बोनस तब दिया जाएगा जब वह मानक को पूरा करेगा ।

(2) उन्होंने उद्योग की आदतों पर विशेष बल दिया । उन्होनें कहा कि संगठन काम करने के आदतन तरीकों को विकसित करते हैं । अत: प्रशासन की शुरूआती दौर में ही आदतें बनानी चाहिए ।

(3) उन्होंने एक चार्ट बनाया जिसमें समयानुसार कार्य प्रगति को लगातार दर्शाया जा सकेगा । यह 'गांट चार्ट' के नाम से जाना गया ।

गिल्ब्रेथ दंपत्ति, फ्रैंक व लिलियन गिल्ब्रेथ (दंपत्ति) ने भी वैज्ञानिक प्रबन्धन में कुछ अहम योगदान किए ।

(1) कार्यो में अनावश्यक कार्यवाहियों के उन्मूलन में मदद करने के लिए उन्होंने प्रवाह प्रक्रिया चार्ट का आविष्कार किया । तंत्र स्पीड वर्क कहलाया ।

(2) उन्होंने आधुनिक गति और समय अध्ययनों की तकनीकों की बुनियाद रखी । जैसा कि हिक्स व गुलेट का विचार है, "गिल्ब्रेथ दम्पत्ति ने एक सर्वश्रेष्ठ तरीके की अपनी खोज में गति व समय अध्ययन को एक ऊँचे स्तर तक विकसित किया । उन्होंने कार्य की मूल ईकाई के रूप में थर्बलिग्स (Therblish) (Gilbreths को उलटा लिखने पर) का आविष्कार किया ।

एच. इमरसन, हैरिंगटन इमरसन ने सही संगठन की उत्तम उत्पादकता पर जोर दिया और कुशलता के बारह सिद्धान्त प्रतिपादित किए । उनकी प्रचलित पुस्तके एफिशिएंसी और दि टवेल्व प्रिसिंपल ऑफ एफिशिएंसी हैं । उन्होंने वैज्ञानिक की जगह अपने तंत्र को कुशलता तंत्र कहना पसंद किया । वे बारह सिद्धान्त हैं -

(1) स्पष्टत: परिभाषित उद्देश्य

(2) सामान्य बोध

(3) योग्य परामर्श

(4) अनुशासन

(5) निष्पक्ष सौदा

(6) भरोसेमंद, तेज और उचित रिकॉर्ड

(7) मानक और शेड्यूल

(8) प्रेषण

(9) मानक स्थितियाँ

(10) मानक कार्यान्वयन

(11) लिखित मानक व्यवहार निर्देश

(12) कुशलता पुरस्कार

एम.एल. कुक : अन्य लोगों से भिन्न, मौरिस एल.कुक ने वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्वान्तों ओर तकनीकों को शासन के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू किया । वैज्ञानिक प्रबंधन को सार्वभौमिक रूप से लाग किया जा सकता है, यह उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया । एक दूसरे मायने में वह टेलर से भिन्न भी थे । जैसे काम के एक सर्वश्रेष्ठ तरीके की खोज में उन्होंने मजदूरों की भी भागीदारी की मांग की, जबकि टेलर के अनुसार एक सर्वश्रेष्ठ तरीके की खोज केवल कार्य विश्लेषण के विशेषज्ञ (न कि मजदूर) ही कर सकते हैं ।

11.8 वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना और विरोध

वैज्ञानिक प्रबंधन का कई वर्गो ने आलोचना और विरोध किया-

(1) कारखाना स्तर (जो निचला स्तर है) के कामकाज पर ध्यान केन्द्रण और उच्च स्तर की सांगठनिक प्रक्रियाओं की उपेक्षा के कारण इसकी आलोचना संगठन के एक अधूरे सिद्धांत के रूप में की गई ।

(2) संगठन के मानवीय पहलू की अनदेखी के कारण इसकी आलोचना संगठन के एक यांत्रिक सिंद्धात के रूप में भी की जाती है । दूसरे शब्दों में, इसने सांगठनिक कुशलता की व्याख्या केवल यांत्रिक अर्थो में की । यह मजदूर को यंत्र मानता है और उसे उतना ही कुशल बनाना चाहता है जितना कि यंत्र है । स्पष्टत: मजदूरों ने इसका विरोध किया ।

(3) मानवीय प्रेरणा को कम आँकने और अति सरल बनाने के कारण भी इसकी आलोचना की जाती है । मानवीय प्रेरणा की व्याख्या यह आर्थिक कारकों (भौतिक पुरस्कारों) के अर्थो में ही करता है और प्रेरणा के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलू को उपेक्षित कर देता है इसे प्रेरणा का एकलवादी सिद्धांत कहा जाता है । एकल मेयो के हॉथोर्न अध्ययनों ने खुलासा किया है कि संगठन के कार्य निर्धारण मजदूरों के व्यवहार की व्याख्या में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारक भी आर्थिक कारकों जितने महत्वपूर्ण हैं । एम. पी. फॉलेट, पीटर ड्रकर, ओलीवर शेल्डन, चैस्टर बर्नार्ड और क्रिस आर्निरिस जैसे अन्य मानवीय संबंध व व्यवहार विशेषज्ञों ने भी यही राय प्रकट की ।

(4) मजदूरी के उत्पादन से जुडे व्यवहार (यानी शारीरिक कारक) से ही सरोकार रखने के कारण मार्च व साइमन ने इसकी कल्पना शारीरिक प्रबधन विचार धारा के रूप में की है ।

(5) इसका सबसे अधिक विरोध मजदूर नेताओं (ट्रेड यूनियनों) ने किया । टेलर के सिद्वान्तों (बौद्धिक क्रान्ति) के अमल से मजदूरों और मालिकों के बीच से सभी अंतरविरोध खत्म हो -जाते हैं और उनके बीच एक प्रभावी सहकार स्थापित होता है इस प्रकार ट्रेड यूनियनें अनावश्यक हो जाती है

दूसरे शब्दों में टेलरवाद को न केवल उनकी भूमिका बल्कि ट्रेड आंदोलन और सामूहिक सौदेबाजी के सिद्धान्त के लिए खतरा माना गया । प्रो. रॉबर्ट हॉक्सी की जाँच पडताल ने तो यही तक बताया कि वैज्ञानिक प्रबंधन और मजदूर यूनियनवाद के सिद्धान्त आपस में मेल नहीं खाते ।

(6) दो कारणों से प्रबन्धक भी इसका विरोध करते हैं पहला, वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाने से उन्हें अपने निर्णय और स्वविवेक से हाथ धोना पडेगा । दूसरा, टेलरवाद के कारण उनके काम और जिम्मेदारियां बढ़ जाएंगी । फिर भी यह सही है कि टेलर ने प्रबन्ध के लिए वैज्ञानिक विधियों व दृष्टिकोणो को अपनाने का प्रबल समर्थन किया, जिससे प्रबन्ध-विचारों व व्यवहारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया ।

11.9 सारांश

वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन का जन्म 20 वीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध भाग में हुआ इस समय यह माना जाने लगा कि उधम का कुशल एवं उचित प्रबन्ध करने के लिए परम्परागत प्रंबध विधियों के स्थान पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित प्रबंध पद्धति को अपनाना आवश्यक है जिसके लिए टेलर द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबंध एक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में अमेरिका और पश्चिम के अन्य कई देशों में कई वर्षा तक जारी रहा । इससे कार्यशील दशाओं, कार्य करने के दृष्टिकोणों और कार्य की विधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आए । इस आन्दोलन के कारण श्रमिकों की उत्पादकता तथा पारिश्रमिक उल्लेखनीय सुधार हुआ । टेलर के अनुयायियों ने टेलर के विचारों तथा सिद्वान्तों को आगे बढ़ाया । उनके अनुयायियों ओर उनकी विचारधारा के मुख्य योगदान कर्ताओं में हेनरी गैण्ट, फ्रेंक गिल्ब्रेथ लिलियन गिल्ब्रेथ, हैरिगटन इमर्सन के नाम उल्लेखनीय हैं । इसी काल में अमेरिका में औद्योगिक अभियान्त्रिकी नामक एक नई वैज्ञानिक संस्कृति का श्री गणेश हुआ । इसमें समय व गति अध्ययन, कार्य मापन, मानकीकरण, उत्पादन नियोजन व नियन्त्रण की विधियों को वैज्ञानिक प्रबन्ध के साथ प्रयोग किया जाने लगा ।

टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त और व्यवहार इतने मोहक और आश्चर्यजनक थे कि कुछ ही समय में इस वैज्ञानिक प्रबन्ध की बाढ में समस्त औद्योगिक जगत डूब गया । किन्तु जितनी जल्दी वैज्ञानिक प्रबन्ध की बाढ़ आई, उतनी ही जल्दी उतर भी गई तथा अनेक विद्वानों और प्रबन्ध व्यवहारकर्ताओं ने आलोचनाएं की । इसके परिणामस्वरूप एल्टन मेयों इत्यादि के नेतृत्व में मानव सम्बन्धों का सिलसिला शुरू हुआ ।

11.10 शब्दावली

वैज्ञानिक प्रबन्ध - विशिष्ट ज्ञान से किसी कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से करना ।

टीम भावना - सामूहिक हित के लिए सामूहिक प्रयास ।

स्वाभाविक ढिलाई - श्रमिकों में स्वभावत: काम करने की प्रवृत्ति ।

व्यवस्थित ढिलाई - दोषपूर्ण संगठन से कम काम होना ।

टेलरइज्म - वैज्ञानिक प्रबंध को टेलरइज्म के रूप में भी जाना जाता है ।

कार्यात्मक फोरमैनशिप - टेलर द्वारा प्रतिपादित जिसके द्वारा एक मजदूर आठ कार्यात्मक अधिकारियों द्वारा पर्यवेक्षित और मार्गदर्शित किया जाता है ।

अपवाद सिद्वान्त - प्रबन्धकों को वहाँ दिलचस्पी लेनी चाहिए जहां उत्पादन मानकों से कम हो रहा हो ।

मानसिक क्रान्ति - सोचने विचारने में तीव्र परिवर्तन ।

11.11 अभ्यास प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबंध का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
2. वैज्ञानिक प्रबंध की विशेषताएं बताइये?
3. वैज्ञानिक प्रबंध के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए?
4. वैज्ञानिक प्रबंधन के विकास में टेलर के योगदान का विवेचन कीजिए?
5. टेलर द्वारा वर्णित वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धान्तों का वर्णन किजिए?
6. वैज्ञानिक प्रबंध की तकनीकों का विवेचन कीजिए?
7. मानसिक क्रान्ति क्या है । स्पष्ट कीजिए?
8. वैज्ञानिक प्रबंधन में टेलर के अनुयायियों के योगदान का संक्षिप्त विवेचन कीजिए?
9. वैज्ञानिक प्रबंधन की आलोचनाएं बताइये?

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आर. पी. जोशी एवं अंजु पारीक, प्रशासनिक विचारक. रावत पब्लिकेसन्स जयपुर, 2005
2. प्रसाद, प्रसाद एवं सतनारायना, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर. स्टर्लिग पब्लिशर्स, दिल्ली,
3. सिंह आर. एम., मेनेजमेंट. थोट एण्ड थिंकर सुलतान चन्द, नई दिल्ली, 1984
4. सप्रू आर. के., एडमिनिस्ट्रेटिव थ्यौरीज एण्ड मेनेजमेंट थोट, आर. एच. आई, नई दिल्ली, 2008

इकाई - 12

अब्राहम एच. मैस्लो

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 भूमिका
12.3 जीवन वृत्त एवं प्रमुख कृतियां
12.3.1 पुस्तकें
12.4 मैस्लों का योगदान
12.4.1 अभिप्रेरणा सिद्धान्त का प्रस्ताव
12.4.2 अभिप्रेरणा का 'आवश्यकता-सोपानिकता' सिद्धान्त
12.4.3 आत्म-सिद्ध व्यक्ति की विशेषताएँ
12.4.4 प्रबुद्ध प्रबन्ध
12.4.5 मैस्लों के आवश्यकताओं की क्रमबद्धता के सम्बन्ध में नए विचार
12.5 मैस्लों के अन्य विचार
12.6 मैस्लों के योगदान की आलोचना
12.7 सारांश
12.8 अभ्यास प्रश्न
12.9 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- मैस्लो के प्रशासकीय योगदान के बारे में ।
- मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त के बारे में ।
- मैस्लो के प्रबुद्ध प्रबन्ध की अवधारणा के बारे में ।

12.1 प्रस्तावना

"कर्मचारियों की आवश्यकता के स्तर को आंकने और संगठनात्मक प्रभावशीलता को बेहतर बनाने के लिए पुरस्कार और अवसरों के उपयुक्त प्रकारों को पहचानना उपयोगी है और यह मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त द्वारा ही सम्भव है ।" इूनहाम

अभिप्रेरणा को आधुनिक अर्थ में सर्वप्रथम मैस्लो ने ही प्रस्तुत किया था । मानव मनोविज्ञान के जन्मदाता (The Father of Psychology) तथा अमेरिकी मानववाद के जनक (The Father of American Humanism) के उपनामों से प्रसिद्ध मैस्लो का समस्त जीवन मनुष्य एवं अन्यजीव-जन्तुओं के व्यवहार को समझने में ही व्यतीत हुआ । निकोलस हेनरी के अनुसार, "मानव

सम्बन्धवादियों की अभिप्रेरणा और कार्य-संतुष्टि संबंधी शोध का लोक प्रशासन पर काफी प्रभाव है । इनमें से अधिकांश शोध अब्राहम एच. मैस्लो द्वारा विकसित मानव 'आवश्यकताओं का पदसोपान के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित हैं ।" मैस्लों ने गहनता से अध्ययन करके यह जानने का प्रयास किया कि वे कौन से प्रोत्साहन हैं जो व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं । इसी के तहत सन् 1943 में अपने नैदानिक अनुभवों के आधार पर कर्मचारियों की अभिप्रेरणा के समझने के लिए पाँच स्तरों वाले 'आवश्यकताओं की क्रमिकता के सिद्धान्त को विकसित किया । अभिप्रेरणा के सिद्धान्त पर कई योगदान देने वालों के बीच 'आवश्यकताओं की क्रमिकता' पर कई संगठनात्मक शोध की महत्वपूर्ण घटना है । जैसा मैस्लो स्वयं कहते हैं कि अभिप्रेरणा सिद्धान्त व्यवहार के केवल एक ही वर्ग की निर्धारिक हैं, जबकि व्यवहार करीब-करीब हमेशा प्रेरित होता है । वह हमेशा जैविक, सांस्कृतिक और पारिस्थिकीय कारणों से भी निर्धारित होता है । इस सिद्धान्त से न केवल मानव प्रेरणा को समझने में सहायता मिली वरन् अनेक मनोवैज्ञानिकों जैसे - लिकर्ट, हर्जबर्ग, मैकग्रेगर आदि को भी मानवीय व्यवहार का विश्लेषण करने में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ ।

12.3 जीवन वृत्त एवं प्रमुख कृतियां (Life Sketch and Main Publication)

अब्राहम एच. मैस्लो का जन्म 1 अप्रेल, 1908 को संयुक्त राज्य अमेरिका के ब्रूकलिन, न्यूयार्क में हुआ । मैस्लो के माता-पिता निरक्षर होने के बावजूद अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने तथा आधुनिक युग के अनुरूप बनाने के इच्छुक थे । मैस्लो ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा ब्रूकलिन में प्राप्त की तथा "सिटी कालेज ऑफ न्यूयार्क" में विधि की शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रवेश लिया । मनोविज्ञान में रूचि होने के कारण सन् 1930 में विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय से उन्होंने बी. ए. की उपाधि प्राप्त की । तत्पश्चात् इसी विषय से एम. ए. तथा 1934 में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की । मैस्लो ने सन् 1937 से 1951 तक ब्रूकलिन कॉलेज, न्यूयार्क में अध्यापन कार्य किया । अध्यापन के दौरान ही मैस्लो का प्रसिद्ध लेख 'A Theory of Human Motivation' प्रकाशित हुआ । उन्होंने सन् 1951 में ब्रूकलिन कॉलेज छोड़ ब्रैण्डीस विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग में अध्यक्ष पर ग्रहण किया । सन् 1954 में मैस्लो की प्रमुख कृति 'Motivation and Personality' प्रकाशित हुई । उसके पश्चात् सन् 1959 में मैस्लो ने ब्रैण्डीस विश्वविद्यालय भी छोड़ दिया तथा कैलिफोर्निया स्थित 'Laughlin Institute' में Resident Fellow बनकर रहने लगे । 8 जुलाई, 1970 में हृदय गति रूक जाने के कारण मैस्लो का निधन हो गया ।

12.3.1 पुस्तकें (Books)

यद्यपि मैस्लो ने अपनी पुस्तकों में कई महत्वपूर्ण अवधारणाओं और विचारों का उल्लेख किया है, तथापि वर्तमान प्रयोजन की दृष्टि से अभिप्रेरणा के क्षेत्र में दिया गया उनका योगदान ही उल्लेखनिय है । इनकी प्रमुख पुस्तकें एवं लेख निम्न हैं-

1. Principles of Abnormal Psychology: The Dynamics of Psychic Illness. 1941.
2. The Social Personality Inventory: A Test of Self Esteem in Women (With Manual), 1942.
3. Contemporary Psychopathology: A Source Book, 1943.
4. The Security- Insecurity Test, 1952.
5. Motivation and Personality, 1954.
6. New Knowledge in Human Values. 1956.
7. Towards a Psychology of Being, 1962.
8. Summer Notes on Social Psychology of Industry and Management, 1962.
9. Eupsychian Management, 1965.
10. The Psychology of Science: A Reconnaissance, 1966.
11. Father Reaches of Human Nature, 1971 (मृत्योपरांत प्रकाशित)

लेख (Papers)

1. Delayed Reaction Test on Primates from Lemur to the Orangoutan.
2. A Theory of Human Motivation.
3. Are our publications and conventions suitable for the personal Sciences?
4. A Preface to Motivation Theory.

मैस्लो ने अपने लेखन कार्य में सर्वाधिक जोर बन्दरों कं व्यवहार, मानव स्वभाव की जटिलता, महिलाओं के विशिष्ट व्यवहार, व्यक्तित्व के विविध पक्षों, असामान्य व्यवहारों तथा मानववाद पर दिया है । उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक 'Motivation and Personality' में भी मानव व्यवहार एवं व्यक्तित्व के बारे में ही बताया गया है।

12.4 मैस्लों का योगदान

मैस्लों ने अभिप्रेरणा के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है । उन्होंने मानवीय आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के विश्लेषण के अतिरिक्त अभिप्रेरणा सिद्धान्त की कई अन्य मान्यताएँ भी विकसित की है । मैस्लो के अनुसार, मानव-व्यवहार मनुष्यों के चेतन-अचेतन, लक्ष्यों का दर्पण होता है । मानव-व्यवहार का विश्लेषण उसकी गतिविधियों तथा उनसे जुड़ी हु ई प्रेरणाओं के आधार पर ही किया जा सकता है । मैस्लो के अभिप्रेरणा सम्बन्धी योगदान को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

12.4.1 अभिप्रेरणा सिद्धान्त का प्रस्ताव (Proposition for Motivation Theory) : अभिप्रेरणा से तात्पर्य उस प्रक्रिया या प्रस्ताव से है जो 'कार्य करने की क्षमता' तथा 'कार्य करने की इच्छा' के मध्य पुल का कार्य करती है । मैस्लो की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति हर समय अभिप्रेरणा की अवस्था में रहता है, किन्तु अभिप्रेरणा की मात्रा भिन्न होती है । उन्होंने 1943 में प्रकाशित अपने लेख "A

Preface to Motivation Theory" में अभिप्रेरणा के प्रस्तावों को बताया है । इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

(i) अभिप्रेरणा में व्यक्ति का एक भाग ही नहीं वरन् सम्पूर्ण व्यक्ति प्रभावित होता है ।

चित्र 1 मैस्लो का योगदान

(Contribution of Maslow)

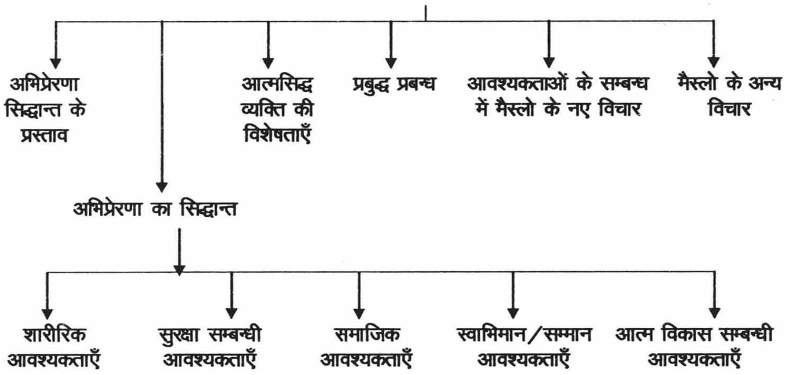

(ii) 'भूख-उत्प्रेरक' अभिप्रेरणा सिद्धान्त का केन्द्रीय बिन्दु नहीं है ।

(iii) अभिप्रेरणा सिद्धान्त को लक्ष्यों, उद्देश्यों एवं मौलिक अचेतन लक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए।

(iv) अभिप्रेरक व्यवहार द्वारा मूलक आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति एवं संतुष्टि एक साथ हो सकती है।

(v) मनुष्य की सभी आवश्यकताओं का वर्गीकरण उनकी प्रबलता के आधार पर किया जा सकता है।

(vi) अभिप्रेरणा का वर्गीकरण 'लक्ष्यों' के आधार पर होना चाहिये, चालक के आधार पर नहीं ।

(vii) अभिप्रेरणा सिद्धान्त मानव व्यवहार केन्द्रित है, न कि पशु केन्द्रित ।

(viii) अभिप्रेरणा के क्रम में क्षेत्र की परिस्थिति पर भी विचार किया जाना चाहिये ।

(ix) अभिप्रेरणा सिद्धान्त 'व्यवहार-सिद्धान्त' का समानार्थी नहीं है वरन् अभिप्रेरणा मानव-व्यवहार के निर्धारकों में से केवल एक निर्धारित वर्ग है! अभिप्रेरित व्यवहार जैविक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से तथा परिस्थितिगत निर्धारकों पर भी निर्भर करता है । मैस्लो ने इन सभी प्रस्तावों को उन प्रबन्ध दार्शनिकों को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया जो कि पिछले कई दशकों से अभिप्रेरणा पर कार्य कर रहे हैं ।

12.4.2 अभिप्रेरणा का 'आवश्यकता-सोपानिकता' सिद्धान्त (Need Hierarchy Theory of Motivation) : मैस्लो ने 'आवश्यकता को अभिप्रेरणा का आधार माना है । उन्होंने 1943 में प्रकाशित अपने लेख 'A Theory of Human Motivation' में बताया कि मानवीय आवश्यकताओं की एक सोपानिकता (क्रमबद्धता) होती है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे (मनुष्य) अभिप्रेरित किया जा सकता है । मैस्लो का मानना है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं और उन्हें एक साथ संतुष्ट नहीं किया जा सकता । अत: वह कोई भी कार्य इसलिए करता है क्योंकि उसके अन्दर कोई इच्छा या तनाव उस कार्य को करने की प्रेरक शक्ति उत्पन्न करती है । मैस्लो मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं को पाँच श्रेणियों में बाँटते हैं जिनमें निचले स्तर पर उन्होंने निम्न स्तरीय आवश्यकताओं

को रखा जिन्हें शारीरिक आवश्यकताएँ (भोजन, शरणस्थल, कपड़ा आदि) कहते हैं और उच्च शिखर पर उच्च स्तरीय आवश्यकताओं को रखा जिन्हें आत्म विकास सम्बन्धी (आगे बढ़ने की इच्छा, स्वयं की एक विशिष्ट पहचान आदि) आवश्यकता कहते हैं । इन दोनों के बीच की आवश्यकता को वे क्रमश: ऊपर की ओर बढ़ती हुई सुरक्षा आवश्यकता (भय, खतरे, प्राकृतिक आपदाएँ आदि), सामाजिक आवश्यकताएँ (प्रेम, सहयोग, मैत्री आदि) और स्वाभिमान /सम्मान आवश्यकताएँ (सफलता, सम्मान, प्रतिष्ठा तथा शक्ति की कामना) कहते हैं । मैस्लो का मानना है कि शारीरिक आवश्यकताएँ प्राथमिकता क्रम में पहले होती हैं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के पश्चात् सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ प्राथमिक स्थान ग्रहण कर लेती है । इसके साथ-साथ मैस्लो का यह भी मानना है कि आवश्यकताओं की इस सोपानबद्धता (क्रमबद्धता) में कोई जड़त्व नहीं है, अर्थात् किसी व्यक्ति के लिए सामाजिक आवश्यकताएँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, तो किसी के लिए स्वाभिमान सम्बन्धी । कोई व्यक्ति थोड़े से संतुष्ट हो जाता है, तो कोई मानसिक रूप से अपरिपक्व हो सकता है । एक आवश्यकता जब लम्बे समय में पूर्ण होती है तो उसकी प्रभावशीलता भी खत्म हो जाती है । मैस्लो के इन 'आवश्यकता' के सोपान को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

चित्र 2

मैस्लो की 'आवश्यकताओं की सोपानिकता' (क्रमबद्धता)

(Needs Hierarchy of Maslow)

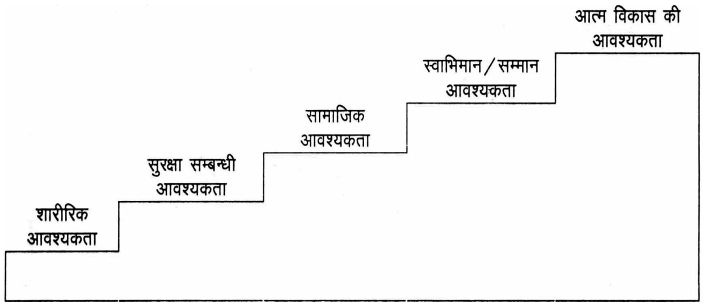

(1) शारीरिक आवश्यकताएँ (The Physiological Needs) - मैस्लो का मानना है कि मनुष्य की आधारभूत आवश्यकता के. रूप में सर्वप्रथम शारीरिक आवश्यकताएँ होती है । शारीरिक आवश्यकताओं में जल, भोजन, वायु एवं आवास प्रमुख हैं । जिस व्यक्ति की ये आवश्यकताएँ संतुष्ट नहीं होती हैं, उसे इन आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता है । मैस्लो के अनुसार, "जो व्यक्ति अत्यधिक भूखा है उसकी भोजन के अलावा किसी में भी रूचि नहीं होती । वह भोजन के स्वप्न देखता है, वह भोजन को याद करता रहता है, भोजन के ही बारे में सोचता है, भोजन की कल्पना करता है और केवल भोजन ही चाहता है ।" जब इन आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तभी व्यक्ति आगे की आवश्यकताओं के बारे में सोचना प्रारम्भ करता है ।

(2) सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ (Safety/ Security Needs) - जब व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, तब वह अपनी सुरक्षात्मक आवश्यकताओं के बारे में सोचता है । जब तक कोई भी व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित महसूस नहीं करता, तब तक वह अपना कार्य प्रभावी ढंग से नहीं कर पाता और सारा ध्यान अपनी सुरक्षा पर ही लगा रहता है । ये सुरक्षा

आवश्यकताएँ उसे प्राकृतिक आपदा, भय, संकट आदि से सुरक्षित रहने के लिए उत्पन्न होती है । जिस प्रकार एक बच्चा अपने माता-पिता के संरक्षण में अपने आपकों सुरक्षित महसूस करता है, उसी प्रकार एक व्यक्ति, अपने संगठन में सुरक्षा चाहता है । यदि व्यक्ति की सुरक्षा खतरे में है तो व्यक्ति आगे की आवश्यकता पर विचार नहीं करता ।

(3) सामाजिक आवश्यकताएँ (Social Needs) - जब मनुष्य की शारीरिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, तब सामाजिक आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अत: वह अपने परिवार, समुदाय एवं समाज में प्रेम, सहयोग, मैत्री एवं अपनत्व से रहना चाहता है । वह एक समूह में रहकर सामाजिक सम्बन्ध निर्मित करना चाहता है । हालांकि यह एक सामान्य आवश्यकता है लेकिन किसी-किसी के लिए और किन्हीं परिस्थितियों में यह अन्य आवश्यकताओं की तुलना में महत्त्वपूर्ण बन जाती है ।

(4) स्वामिभमान / सम्मान आवश्यकताएँ (Self&Esteem Needs) - सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो जाने पर चौथी आवश्यकता व्यक्ति के स्वाभिमान / सम्मान सम्बन्धी आती है । स्वाभिमानी प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक व्यक्ति संगठन में सम्मान, प्रतिष्ठा, उपलब्धि एवं स्वतन्त्रता आदि की इच्छा करता है । इन आवश्यकताओं की पूर्ति से व्यक्ति में आत्म-विश्वास एवं मनोबल भी बढ़ता है, लेकिन जब व्यक्ति की सम्मान सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती, तब वह अपने आपको असहाय, कमजोर तथा हीन भावना से ग्रसित समझने लगता है । अत: स्वाभिमान आवश्यकताएँ व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाली प्रमुख शक्ति है ।

(5) आत्म-विकास सम्बन्धी आवश्यकता (Self Actualisation Needs) - मैस्लो ने आवश्यकताओं के क्रम में आत्म-विकास सम्बन्धी आवश्यकता को सबसे अंतिम रूप में माना है । आत्म-विकास की आवश्यकता की उत्पत्ति तभी होती है जबकि स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाये । मैस्लो के अनुसार, "एक व्यक्ति जो है, वह अधिक से अधिक हो जाने तथा जो बन सकता है, वह सब कुछ बन जाने की इच्छा ही आत्म-विकास है ।" आत्म-विकास पद का सर्वप्रथम प्रयोग गोल्डस्टीन ने किया था । प्रत्येक व्यक्ति आत्म-विकास के सोपान तक नहीं पहुँच पाता है । ये आवश्यकताएँ 'दब' जाती हैं और इन आवश्यकताओं को जाग्रत करने के लिए सजगता आवश्यक है । मैस्लो के मतानुसार, एक संगीतकार को संगीत की रचना करनी चाहिए, एक कवि को कविता लिखनी चाहिए, एक प्रोफेसर को पढ़ना चाहिए, अर्थात् एक मनुष्य क्या हो सकता है, उसे वह होना चाहिए । "मैस्लो का मत है कि, "आत्म-विकास व्यक्ति की आत्म-पूर्ति की इच्छा से सम्बन्धित होता है, इस प्रवृत्ति को व्यक्ति जो वह है, को और अधिक बनने की इच्छा के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, अर्थात क्षमता से अधिक सब कुछ बनना । इस आवश्यकता को ही हम आत्म-विकास की आवश्यकता कहते हैं । मैस्लो ने पहली चार आवश्यकताओं को D-Needs (Deficit-Needs) या अभाव आवश्यकता कहा है जबकि आत्म-विकास सम्बन्धी आवश्यकता को D-Needs (Being Needs) या उच्च स्तरीय आवश्यकता कहा है ।

12.4.3 आत्म-सिद्व व्यक्ति की विशेषताएँ (Characteristics of Self Actualised Persons): मैस्लो ने अपने अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि -

(i) आत्म-सिद्ध व्यक्ति झूठ, आडम्बर तथा बेईमानी का पता लगाने की असाधारण क्षमता रखते हैं ।

(ii) सामान्यत: लोगों के बारे में सही-सही मूल्यांकन कर सकते हैं ।

(iii) वे आत्म-केन्द्रित होने के बजाय समस्या केन्द्रित होते हैं ।

(iv) अमर्यादित स्थिति में भी मर्यादा बनाये रखते हैं ।

(v) आत्म-सिद्ध व्यक्ति परिवर्तन एवं कार्यवाही (Action) में विश्वास रखते हैं ।

(vi) उनकी प्रवृत्ति सदैव सीखने की होती है ।

(vii) परिस्थितियों को परखने में कुशल होते हैं ।

12.4.4 प्रबुद्ध प्रबन्ध (Eupsychian Management): मैस्लो का सुझाव था कि संगठन में कार्यकुशलता बढ़ाने तथा लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए प्रबुद्ध प्रबन्धकों का होना आवश्यक है । उन्होंने प्रबुद्ध प्रबन्ध के निम्न लक्षण बताये हैं -

12.4.5 मैस्लों के आवश्यकताओं की क्रमबद्धता के सम्बन्ध में नए विचार (New Thought of Maslow regarding Hierarchy of Needs) - मैस्लो ने आवश्यकताओं के सोपान क्रम में तीन नई आवश्यकताओं का समावेश किया । उनमें शारीरिक आवश्यकताओं के बाद उत्तेजना आवश्यकताएँ, स्वाभिमान आवश्यकताओं के बाद समग्रता आवश्यकताएँ तथा अन्तिम आवश्यकता में आध्यात्मिक आवश्यकता को माना ।

(i) उत्तेजना आवश्यकता (Stimulation Needs)

(ii) एकीकरण / समग्रता आवश्यकता (Intergration / Wholeness Needs)

(iii) आध्यात्मिक आवश्यकता (Meta Needs)

(i) उत्तेजना आवश्यकता (Stimulation Needs) - मैस्लो के अनुसार, व्यक्ति अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद उत्तेजना की तलाश करता है । वह उत्तेजना के माध्यम से आनन्द प्राप्त करना चाहता है । जाँच-पड़ताल, अन्वेषण, खोज आदि उत्तेजना के विविध रूप हैं । अत: उत्तेजना की प्राप्ति भी व्यक्ति की आवश्यकता है ।

(ii) एकीकरण / समग्रता आवश्यकता (Intergration / Wholeness Needs) - इन आवश्यकताओं की उत्पत्ति स्वाभिमान आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद होती है । ये आवश्यकताएँ संघर्ष का दूर न करने, निष्पक्ष एवं अच्छे व्यवहार की स्थिति तथा असंगठित व अस्त-व्यस्त दशाओं के मध्य य एक 'व्यवस्था' का निर्माण करने से सम्बन्ध रखती हैं । मैस्लो के अनुसार, यह समग्रता की आवश्यकता है ।

(iii) आध्यात्मिक आवश्यकता (Meta Needs) - मैस्लो का मानना है कि आत्म-विकास की आवश्यकताओं के बाद आध्यात्मिक आवश्यकताएँ आती हैं । ये आवश्यकताएँ व्यक्ति को 'विकास लक्ष्यों' की ओर ले जाती है । आध्यात्मिक प्रेरक स्वयं ही ध्येय होते हैं । वे व्यक्ति को उसके अस्तित्व की ओर ले जाते हैं । मैस्लो इन्हें सप्रा मूल्य (Being Values) भी कहते हैं । ये सत्य, न्याय तथा परमार्थ से जुड़ी होती हैं । मैस्लो का मानना है कि

आध्यात्मिक आवश्यकताएँ अन्त: निर्भर होती हैं और ये प्रत्येक उच्च आवश्यकता के साथ परस्पर व्याप्त होती हैं ।

12.5 मैस्लो के अन्य विचार

मैस्लों ने अपने आवलोकन के माध्यम से प्रबंध चिन्तन के क्षेत्र में (स्व-ज्ञान, स्व-उन्नयन तथा मूल्य विचारधारा) गहन अध्ययन करके अपने विचार प्रतिपादित किए हैं । इन विचारों के माध्यम से मनुष्य की मानसिक प्रवृत्ति को समझा जा सकता है ।

इनका मानना है कि -

– स्व-विकास 'स्व-ज्ञान' द्वारा संभव है ।
– स्व-ज्ञान तथा स्व-विकास के लिए अत्यधिक साहस एवं दीर्घ संघर्ष आवश्यक है ।
– 'झूठा-आश्वासन' भ्रम को तोड़कर क्रोध एवं निराशा को जन्म देता है ।
– - मैस्लो का कहना है कि, "हालांकि हम व्यक्तियों को मानवीय बनाना चाहते हैं किन्तु हम यह जानते हैं कि वे अपने को समझने का प्रयास ही नहीं करते । इसके साथ-साथ वे ऐसा करने में असमर्थ भी होते हैं । यहाँ तक कि कुछ व्यक्तियों में तो इस सम्बन्ध में भय भी व्याप्त रहता है ।"

12.6 मैस्लो के योगदान की आलोचना (Criticism of Maslow's Contribution)

मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धान्त आशावादी दृष्टिकोण पर आधारित है । मैस्लो ने स्वयं एक मनोवैज्ञानिक होते हुए भी अपने शोध को अन्य शोधकर्त्ताओं की तरह नियोजित नहीं किया बल्कि उनका शोध कार्य स्वयं की जिज्ञासा का परिणाम था जो कि विभिन्न व्यक्तिगत शिष्टाचार नैतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान करते हैं । उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विभिन्न प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं को प्राथमिकता के आधार पर संतुष्ट किया जाना चाहिए । डॉ. रविन्द्र प्रसाद के अनुसार, "मैस्लो के लेखों ने अन्य नैदानिक और व्यक्तिगत मनावैज्ञानिकों के बीच रूचि पैदा की, लेकिन संगठनात्मक सिद्धान्तों पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ । प्रबन्धकों एवं प्रशासकों ने मैस्लो के विचारों को पढ़ना केवल तब शुरू किया, जब मैकग्रेगर ने उन्हें लोकप्रिय बनाया ।"

मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धान्त आधुनिक प्रबन्ध प्रणाली में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । लेकिन फिर भी उनके सिद्धान्त की आलोचना भी बहुत हुई है । आलोचकों का कहना है कि मैस्लो ने आवश्यकताओं का जो क्रम निश्चित किया है, जरूरी नहीं है कि वह निम्न क्रम से उच्च क्रम की ओर हर समय समान रूप से संचालित हो । मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त की आलोचना का प्रमुख कारण उनके शोध आकड़ों में वैधता एवं जटिलता का अभाव पाया जाता है । मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त की विभिन्न विचारकों द्वारा आलोचना की गई है, उनकी प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं

आलोचनाएँ (Criticisms)

मैस्लो ने 'आत्मसिद्धि आवश्यकता सिद्धान्त' को आलोचना करते हुए वारेन बैनिस कहते हैं कि आत्मसिद्धि का विचार ठीक से परिभाषित नहीं है तथा यथार्थ के बजाय यह एक कल्पना मात्र है।

* लारेन्स एस. मिलर ने मैस्लो के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह 'संक्षिप्तता के नियम' का उल्लंघन करता है । इसमें अनावश्यक शैक्षणिक परिकल्पना को समाहित किया गया है ।
* कोफर एवं एपले के मैस्लो के आत्मसिद्धि सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि, 'आत्मसिद्धि पर उनकी धारणा अस्पष्ट है तथा उसके लिए प्रमाण भी अपर्याप्त हैं ।'
* माइकल नैश का कहना है कि, "मैस्लो का सिद्धान्त रूचिकर है, पर वैध नहीं ।"
* बर्नार्ड बास और गैराल्ड बैरेल्ट का मानना है कि "मैस्लो का सिद्धान्त सत्य होने के बजाय रूचिकर और लोकप्रिय अधिक है ।"
* वामा और विरडवैल ने तो यहाँ तक कहा है कि, "ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि मानव आवश्यकताओं को पाँच भिन्न श्रेणियों में बाँटा जा सकता है और ये श्रेणियाँ एक विशिष्ट क्रमिकता में संरचित की जा सकती हैं ।"
* कुछ विद्वान मैस्लो के सिद्धान्त को छद्म सैद्धान्तिक विचार मानते हैं ।
* जबकि कुछ आलोचकों ने मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त के लिए कहा है कि 'आत्मसिद्धि' की अवधारणा भगवद्गीता के फलरहित क्रिया' के विचार से ली गई है ।

यद्यपि मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त की काफी आलोचना हुई है, लेकिन फिर भी ऐसा नहीं है कि इस सिद्धान्त को किसी भी विद्वान द्वारा पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया गया हो ।

12.7 सारांश

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त की उपयोगिता को कम नहीं किया जा सकता । वह एक अग्रणी, एक दृष्टि रखने वाले, एक दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और एक आशावादी व्यक्ति माने जाते हैं । सन् 1954 में प्रकाशित उनकी पुस्तक "Motivation and Personality" प्रबन्ध साहित्य की एक अमूल्य धरोहर हैं । उन्होंने अपने अध्ययन में अभिप्रेरणा के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त 'आवश्यकता की सोपानिकता' का प्रतिपादन किया । मैस्लो का यह मानना था कि यदि कोई प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को अभिप्रेरित करना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे उनकी आवश्यकताओं का पता लगाकर उनकी पूर्ति करके उसे संतुष्टि प्रदान करनी चाहिये । मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त ने मनोवैज्ञानिकों के लिए मानव व्यवहार की विश्लेषण करने की नींव डाली । राबर्ट एम. फुलमर इस बात को स्वीकार करते हैं कि श्रमिकों को उत्पादक एवं कुशल बनाने के लिए प्रबन्धकों को आवश्यकताओं के वर्गीकरण को स्वीकार करके उन्हीं के अनुरूप व्यवहार करना चाहिये । हर्जबर्ग का अभिप्रेरणा सिद्धान्त मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त पर ही आधारित है । इससे इस सिद्धान्त की सफलता एवं व्यावहारिकता का पता चलता है ।

12.8 अभ्यास प्रश्न

1. मैस्लो के प्रशासकीय योगदान की समीक्षा कीजिये ।
2. मैस्लो की अभिप्रेरणा की अवधारणा की समीक्षा कीजिये ।
3. मैस्लो की प्रबुद्ध प्रबन्ध की अवधारणा की व्याख्या कीजिये ।

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. Nikolas Henri, Public Administration and Public Affairs, Prentice, Hall, 2001, Page 59.
2. Maslow A. H., “A Theory of Human Motivation” in S.G. Huneryager and I.L. Heckmann, Human Relations in Management, Bombay, Taraporevala and Co., 1972, Page 334.
3. Motivation and Personality, Person Education, Asia, 2000.
4. Maslow A.H., “Motivation and Personality” S.R. Maheshwari, “Administrative Thinkers” MacMillan, 1998.

इकाई - 13

फ्रेडरिक हर्जबर्ग
(Frederick Herzberg 1923-2000)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 जीवन वृत एवं प्रमुख कृतियां
13.3 हर्जबर्ग का योगदान
13.3.1 द्वि-घटक (कारक) सिद्धान्त
13.3.2 मानव की द्वि-आवश्यकता सिद्धान्त
13.3.3 किटा अवधारणा
13.3.4 कार्य समृद्धता
13.3.5 औद्योगिक मिथक / भ्रान्तियाँ
13.4 हर्जबर्ग के योगदान की आलोचना
13.5 सारांश
13.6 अभ्यास प्रश्न
13.7 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त उपरान्त आप जान पायेंगे -

– हर्जबर्ग के प्रशासकीय योगदान के बारे में ।
– हर्जबर्ग के द्विघटक सिद्धान्त के बारे में ।
– हर्जबर्ग की किटा अवधारणा के बारे में ।

13.1 प्रस्तावना

संगठन में कार्यरत कर्मचारियों में अभिप्रेरणा के क्षेत्र में योगदान देने वाले विचारकों में फ्रेडरिक आई. हर्जबर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने अभिप्रेरणा की 'द्वि-घटकीय विचारधारा' जिसे 'आरोग्य सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है, का प्रतिपादन किया ।

इस अमेरिकी मनोवैज्ञानिक ने पिट्सर्ब के सहयोगियों के साथ मिलकर सन् 1950 में लगभग 200 अभियंताओं तथा लेखाकारों से साक्षात्कार कर निष्कर्ष प्राप्त किए । जिस प्रकार निर्णयन का नाम लेते ही साइमन तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का नाम लेते ही टेलर स्मृति में आते हैं, उसी प्रकार 'आरोग्य सिद्धान्त' अथवा 'द्वि-घटकीय सिद्धान्त' का नाम लेते ही हर्जबर्ग का नाम आता है । 'आरोग्य सिद्धान्त' से हर्जबर्ग को काफी ख्याति प्राप्त हुई है । पालहर्सी, ब्लेनकार्ड एवं जॉनसन ने बताया कि, "हमने नोट किया है कि जैसे-जैसे लोग विकसित होते जाते हैं, वैसे-वैसे सम्मान और आत्म-विश्लेषण

की आवश्यकताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती जाती है । इन क्षेत्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने वाले बहु त से अध्ययनों की श्रृंखला में फ्रेडरिक हर्जबर्ग द्वारा निर्देशित अध्ययन श्रृंखला एक महत्वपूर्ण अध्ययन श्रृंखला है । इन अध्ययनों से कार्य अभिप्रेरणा कई एक विचारधारा विकसित की गई है जिसका प्रबन्ध पर व्यापक प्रभाव पड़ा है और मानवीय संसाधनों के प्रभावी उपयोग के लिए उपयोगी है ।"

हर्जबर्ग ने अपने अध्ययन में आलोचनात्मक घटना, तकनीक, साक्षात्कार और अन्तर्वस्तु विश्लेषण की तकनीक पर जोर दिया है । उन्होंने अपने अध्ययन में कारकों को पहचानना (जो कि कार्य के प्रति व्यक्ति की सकारात्मक या नकारात्मक प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं) तथा इन प्रवृत्तियों का कार्य-निष्पादन् उत्पादन, मानसिक स्वास्थ्य और विशिष्ट प्रवृतियों पर 'प्रभावों' का अध्ययन करना बताया है । स्वयं हर्जबर्ग के अनुसार, "हम मनुष्य का बेतुका दृष्टिकोण लम्बे समय तक सहन नहीं कर सकते हैं । ऐसा इसलिए नहीं कि यह गलतियों को जन्म देता है, बल्कि इसलिए कि अब हमारे पास एक नए पुनर्जागरण का समय नहीं है जो हमें मानव प्रजाति के लिए लक्ष्य, आशा, आकांक्षा तथा भविष्य प्रदान कर सके ।" हर्जबर्ग को सम्मान के रूप में कार्ल मार्क्स की भाँति 'महान वैश्विक गुरू" या "रबी" के रूप में भी ख्याति प्राप्त हु ई है ।

13.2 जीवन वृत्त एवं प्रमुख कृतियां

फ्रेडरिक आई. हर्जबर्ग का जन्म अप्रैल, 1923 को संयुक्त राज्य अमेरिका में लिन मैसाच्यूसैट्स नामक स्थान पर हुआ । प्रारम्भिक शिक्षा लिन मैसाच्यूसैट्स से प्राप्त करने के पश्चात् हर्जबर्ग ने "City College of New York" में प्रवेश लिया । मनोविज्ञान विषय से स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् सन् 1948 में पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की । सन् 1950 में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त करने के एक वर्ष पश्चात् उन्होंने 'Graduate School of Public Health' से 'जनस्वास्थ्य' में उपाधि हासिल की । इसके बाद हर्जबर्ग ने 'Case Western Reserve University, Cleveland' में प्रबन्ध के प्रोफेसर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तथा 'औद्योगिक मानसिक स्वास्थ्य विभाग' की स्थापना की ।

हर्जबर्ग को सन् 1959 में प्रकाशित पुस्तक "The Motivation to Work’ से प्रबन्ध जगत में काफी लोकप्रियता हासिल हु ई । इसीलिए बर्नार्ड मोस्नर तथा बारबरा स्निडरमैन के साथ मिलकर लिखी पुस्तक होने के बावजूद अभिप्रेरणा के द्वि-घटक सिद्धान्त को हर्जबर्ग का सिद्धान्त ही माना जाता है । हर्जबर्ग की पुस्तक "Work and थे nature of Man’ dks International press ने 20 वीं सदी की उन 10 महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में शामिल किया जो प्रबन्ध के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष को सर्वाधिक प्रभावित करती है । फ्रेडरिक आई. हर्जबर्ग का सम्पूर्ण जीवन सक्रिय लेखन, शोध तथा परामर्श देने में व्यतीत हु आ । ऐसे महान् विचारक का 16 जनवरी, 2000 को साल्ट लेक सिटी में निधन हो गया ।

फ्रेडरिक आई. हर्जबर्ग की प्रमुख पुस्तकें एवं लेख निम्न हैं -

(1) Job Attitude: Research and Opinion, 1957 (Co-author)

(2) The Motivation to Works, 1959, (Co-author)

(3) Work and the Nature of Man, 1966

(4) The Managerial Choice: To be Efficient and To be Human, 1976

(5) Herzberg on Motivation, 1983

(6) One More Time: How do you motivate employees?

13.3 हर्जबर्ग का योगदान

फ्रेडरिक हर्जबर्ग ने संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को अच्छा बनाए रखने की दिशा में एक प्रयास किया है । हर्जबर्ग ने अपने अध्ययन में बताया है कि कोई न कोई एक विशिष्ट घटना ऐसी होती है जो अधिकांश विचारकों के सम्पूर्ण चिन्तन को एक दिशा प्रदान करती है । प्रबन्ध में हर्जबर्ग के योगदान को इसी संदर्भ में निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है :

चित्र 1

हर्जबर्ग का योगदान

(Contribution's of Herzberb)

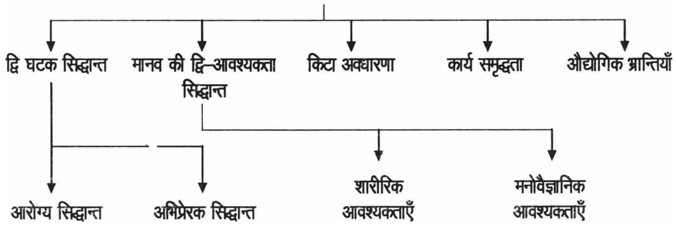

13.3.1 द्वि-घटक (कारक) सिद्धान्त (Two Factors Theory)

हर्जबर्ग के द्वि-घटक सिद्धान्त को 'मोटीवेशन-हाइजीन-थ्योरी' भी कहा जाता है । इस विचारधारा का प्रतिपादन हर्जबर्ग ने दो सौ से अधिक अभियन्ताओं तथा लेखाकारों से लिए गए साक्षात्कार के निष्कर्षो के आधार पर किया । उन्होंने संगठन में कर्मचारी के व्यवहार को प्रभावित करने वाले सम्पूर्ण तत्वों की पहचान दो समूहों 'आरोग्य घटक' एवं 'अभिप्रेरक घटक' के रूप में की । हर्जबर्ग के अनुसार प्रबन्धकों का अधिकांश समय संगठन में आरोग्य घटकों को सुधारने में ही लगता था और वे उसे सुधारने के लिए उनका वेतन बढ़ा दिया करते थे लेकिन इन सबसे कर्मचारी अभिप्रेरित नहीं हो पाते थे । इसीलिए हर्जबर्ग ने अपने सिद्धान्त के माध्यम से प्रबन्धकों को अभिप्रेरणा का महत्त्व बताया । उनके मतानुसार, "'एक व्यक्ति के लिए उन कारकों का अध्ययन अधिक खुशी और अधिक आत्म विश्वास की भावना लाता है जो उन्नत मनोबल की ओर ले जाते हैं ।" इन्होंने माना कि जब व्यक्ति असंतुष्ट होते हैं तो इस असंतुष्टि का कारण कार्य वातावरण होता है, जिसके अन्तर्गत वे कार्य करते हैं लेकिन जब व्यक्ति संतुष्टि का अनुभव करते हैं तो यह संतुष्टि केवल कार्य का परिणाम होती है, वातावरण का नहीं । अत: उनका कहना था कि असंतुष्टि को दूर करने के लिए आरोग्य कारकों (Hygine Factors) तथा अभिप्रेरित करने के लिए अभिप्रेरक कारकों (Motivator Factors) पर ध्यान दिया जाना चाहिए । गैलरमैन के अनुसार, "प्रभावी अभिप्रेरणा के लिए आरोग्य घटक पूर्व आवश्यकताएँ हैं, किन्तु वे अभिप्रेरणा प्रदान करने में निर्बल हैं । " हर्जबर्ग अपने द्वि-घटक (आरोग्य एवं अभिप्रेरक घटक) सिद्धान्त को निम्न प्रकार से समझाते है-

हर्जबर्ग के द्‌वि-घटक (आरोग्य एवं अभिप्रेरक तत्व)

	आरोग्य घटक)Hygine Factors(	अभिप्रेरक घटक)Motivator Factors(
(1)	कम्पनी की नीति एवं प्रशासन	उपलब्धि
(2)	पर्यवेक्षण	उपलब्धि की पहचान
(3)	कार्य स्थिति	चुनौतीपूर्ण स्थिति
(4)	अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध	उन्नति एवं विकास
(5)	पद एवं वेतन	उत्तरदायित्व
(6)	कार्य सुरक्षा	कार्य में रुचि

दूसरे घटक अभिप्रेरक कहलाते हैं जो आरोग्य घटकों के विपरीत अभिप्रेरक व्यक्ति को कार्य के उच्च निष्पादन के लिए अभिप्रेरित करते है । अभिप्रेरक घटकों में उपलब्धि, उपलब्धि की पहचान, चुनौतीपूर्ण स्थिति, उन्नति एवं विकास, उत्तरदायित्व तथा कार्य में रूचि सम्मिलित है । आरोग्य घटक को निम्न स्तरीय आवश्यकताएँ माना है जबकि अभिप्रेरक घटक को उच्च स्तरीय आवश्यकताएँ माना है । हर्जबर्ग ने यह स्पष्ट किया कि आरोग्य तत्त्व प्रेरणाएँ हैं जो कि बाह्‌य तत्त्व है तथा जिन्हें वातावरण से प्राप्त किया जाता है जबकि अभिप्रेरणा आन्तरिक तत्व है जो स्वयं व्यक्ति में निहित होती है । इस विचारधारा के अनुसार, प्रबन्धकों को केवल आरोग्य कारकों पर ही ध्यान न देकर कार्य को भी उन्नत करके चुनौतीपूर्ण एवं रूचिकर बनाया जाना चाहिए जिससे कि व्यक्तियों को अभिप्रेरित किया जा सके । स्टीफन पी. रॉबिन्स के अनुसार, "परम्परागत अभिप्रेरणा सिद्धान्त यह मानता है कि व्यक्ति असंतुष्टि से संतुष्टि की ओर जाता है, लेकिन हर्जबर्ग ने इस धारणा को नकार दिया है । " रॉबिन्स के अनुसार, हर्जबर्ग के द्‌वि-घटक सिद्धान्त को चित्र 2 में समझा जा सकता है

चित्र 2

द्‌वि-घटक अभिप्रेरक-आरोग्य सिद्धान्त

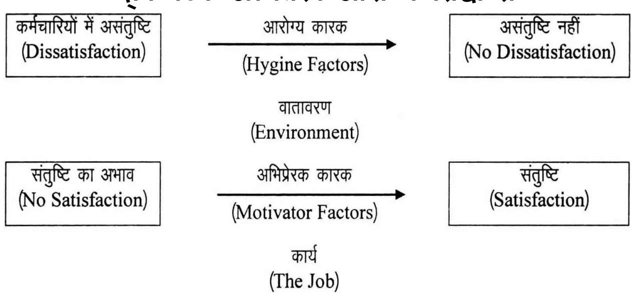

हर्जबर्ग के द्‌वि-घटक (कारक) सिद्धान्त में कुछ कमियाँ भी रहीं हैं जो निम्न हैं -

(1) हर्जबर्ग द्‌वारा किया गया द्‌वि-घटक सिद्धान्त का श्रेणी विभाजन ठीक नहीं है । वेतन एक व्यक्ति के लिए असंतुष्टि उत्पन्न करने वाला तत्व हो सकता है, किन्तु किसी अन्य के लिए यह एक अभिप्रेरक तत्व भी हो सकता है ।

(2) हर्जबर्ग ने माना है कि आरोग्य कारक व्यक्ति को अभिप्रेरित नहीं करता किन्तु वास्तविकता यह है कि विकासशील देशों तथा प्रबन्ध के निचले स्तरों पर आरोग्य कारक भी अभिप्रेरणा प्रदान करता है ।

(3) हर्जबर्ग ने माना है कि अभिप्रेरकों का योग ही कार्य-संतुष्टि का निर्धारण करता है, यह ठीक नहीं है जबकि कार्य संतुष्टि पर आरोग्य कारकों व अभिप्रेरक कारकों दोनों का ही प्रभाव पड़ता है ।

(4) कुछ विद्वानों ने हर्जबर्ग के द्वि-घटक सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह सिद्धान्त दोषपूर्ण अनुसंधान विधि पर आधारित है । केवल व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अभिप्रेरणा की सही जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है ।

(5) कुछ आलोचकों ने कहा है कि यह सिद्धान्त केवल प्रबंधकीय कार्मिकों पर ही लागू होता है, सामान्य कार्मिकों अथवा श्रमिकों पर नहीं ।

(6) कुछ विद्वानों ने हर्जबर्ग के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह सिद्धान्त व्यक्ति के निष्पादन

(7) स्तर की अपेक्षा 'संतुष्टि' अथवा 'असंतुष्टि' पर अधिक ध्यान देता है ।

इन आलोचनाओं के बावजूद हर्जबर्ग की द्वि-घटक विचारधारा का प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण स्थान है ।हर्जबर्ग ने आरोग्य एवं अभिप्रेरणा सम्बन्धी घटकों (कारकों) के महत्व के बाद संगठन में कार्य करने वाले कर्मचारियों को दो समूहों में बाँटकर उन्हें आरोग्य इच्छुक एवं अभिप्रेरणा इच्छुक का नाम दिया है । हर्जबर्ग का कहना है कि आरोग्य इच्छुक एवं अभिप्रेरणा इच्छुक व्यक्तियों में अलग-अलग तरह की विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो निम्न है।

13.3.2 मानव की द्वि-आवश्यकता सिद्धान्त (Two Human Needs Theory) -

हर्जबर्ग ने सन् 1966 में अपनी कृति 'Work and The Nature of Man' में द्वि-घटक सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । उन्होंने माना है कि व्यक्ति की दो आवश्यकताएँ होती है। वे उन्हें निम्न दो श्रेणियों में बाँटते हैं -

(i) शारीरिक आवश्यकताएँ (मनुष्य एवं जीव जन्तुओं में एक समान)

(ii) मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ (मनुष्य में उसकी तार्किक क्षमता एवं उन्नत मस्तिष्क के कारण)

	आरोग्य इच्छुक)Hygine Seekers(	अभिप्रेरिक इच्छुक)Motivator Seekers(
(1)	पर्यावरण प्रकृति से अभिप्रेरित ।	कार्य की प्रकृति के अभिप्रेरित ।
(2)	कार्य संदर्भ के विभिन्न पक्षों के साथ दीर्घकालीन और तीव्र असंतोष, जैसे वेतन,कार्य दशाएँ, कम्पनी नीति और प्रशासन, कर्मचारी ।	अपर्याप्त आरोग्य घटकों पर भी तीव्र सहनशीलता
(3)	आरोग्य घटकों में सुधार के बारे में अति प्रतिक्रियावादीता ।-	आरोग्य घटकों में सुधार के बारे में कम प्रतिक्रिया ।
(4)	कम अवधि का संतोष तब आरोग्य घटक सुधार का दिए जाते हैं ।	कम अवधि का असंतोष ।
(5)	आरोग्य घटकों सुधार नहीं होने	जब आरोग्य घटकों में सुधार आवश्यक हो तो

	पर अति प्रतिक्रिया ।-	थोडा असंतोष ।
(6)	उपलब्धि के कम संतोष प्राप्त करना।	अधिक संतोष पाना ।
(7)	प्रदत्त काम की प्रवृत्ति और किस्म के बारे में कम रूचि लेना ।	प्रदत्त कार्य में आनन्द लेने की क्षमता ।
(8)	कार्य के सकारात्मक गुणों और जीवन के प्रति कड़वाहट ।	कार्य और जीवन के प्रति सकारात्मक सोच ।
(9)	अनुभव से व्यावसायिक लाभ प्राप्त नहीं करना ।	अनुभव का लाभ प्राप्त करना ।
(10)	सांस्कृतिक शोर के लिए (i) अति उदारवादी, (ii) अति रूढिवादी और प्रबन्ध दर्शनों को रटने वाले, (iii) उच्च प्रबन्ध के समान कार्य करने वाले।	आस्थाएँ सच्ची और सुविचारित होना ।
(11)	योग्यता के कारण कार्य में सफल सिद्ध होना ।	आस्थाएँ सच्ची और सुविचारित होना ।

(iii) शारीरिक आवश्यकताएँ (Physiological Needs) - हर्जबर्ग शारीरिक आवश्यकताओं के संदर्भ में कहते हैं कि ये आवश्यकताएँ ऐसी हैं जो मनुष्य एवं जीव-जन्तुओं में एक समान रूप से पाई जाती है । ये आवश्यकताएँ मनुष्य को कष्ट से बचने के लिए अभिप्रेरित करती हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति ना होने पर व्यक्ति को असुविधा तथा बेचैनी रहती है तथा यदि ये ही आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं तो कष्ट से तो राहत मिलती है किन्तु कोई सकारात्मक आनन्द नहीं मिलता ।

(ii) मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ (Psychological Needs) - हर्जबर्ग मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को स्पष्ट करते हुए क्हते हैं कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति से मानव को आनन्द मिलता है । मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली क्रियाओं में प्रगति, एकीकरण, वैयक्तिक विकास तथा रचनात्मक क्रियाएँ आदि सम्मिलित हैं, अर्थात् ये सकारात्मक सिद्ध होती हैं ।

हर्जबर्ग दोनों आवश्यकताओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "शारीरिक आवश्यकताएँ तो पशु तथा मानव सभी में होती है, अन्तर तो मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का है । मनुष्य अपने भाग्य का बहुत बड़ा निर्माता है । वर्षा से मनुष्य अनजान बातों से पर्दा उठाता आया है तथा उसने विज्ञान को समृद्ध बनाया है लेकिन आज भी मानव-व्यवहार, आत्मसिद्धि, मानवीय आवश्यकताओं अभिप्रेरणा तथा इनसे सम्बन्धित अन्य बहुत से पक्षों को समझना बाकी है । हर्जबर्ग की द्विमानव आवश्यकताओं को यदि द्वि-घटक सिद्धान्त के संदर्भ में देखें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि, “आरोग्य घटक" व्यक्ति

की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने या न होने में कार्यशील होते हैं जबकि 'अभिप्रेरक घटक' व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने अथवा न करने के लिए कार्यशील होते हैं ।

13.3.3 किटा अवधारणा (Kita Concept) -

किटा अवधारणा का अर्थ किसी के साथ धन या अंश में भागीदारी होना है, लेकिन हर्जबर्ग ने 'किटा' अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इसका शाब्दिक अर्थ है 'Kick In the ASS' अर्थात 'मूर्ख को ठुकराइए' । उन्होंने किटा अवधारणा के अन्तर्गत मनुष्य की प्रकृति के रूप में आदम तथा अब्राहम नामक दो पात्रों का चयन बाइबिल के प्रथम भाग से किया । उनका मानना है कि 'आदम' मनुष्य के पशु होने के समान है जो कि सभी जानवरों की भाँति वातावरण के दर्द व कठिनाइयों से बचना चाहता है, जबकि इसके विपरीत अब्राहम मनुष्य 'मानव' है जो कि गुणात्मक रूप से पशु से भिन्न होता है । अब्राहम के कार्यो से उसकी क्षमताओं का विकास होता है । हर्जबर्ग कहते हैं कि यह प्रबन्धक पर निर्भर करता है कि यदि वह चाहे तो अपने कर्मचारियों से 'आदम' जैसा व्यवहार करे, इसमें उसे अपने कर्मचारियों को हाँकना या चलाना पड़ता है । इसे चेष्टा द्‌वारा प्रबंध' कहा जाता है । इसमें कार्मिक भी पीड़ा से छुटकारा चाहने के लिए प्रतिक्रिया स्वरूप कार्य करते हैं । जबकि कोई भी कार्मिक अपने कार्य, उत्तरदायित्व, मान्यता, सृजनशीलता विकास आदि से यदि स्वत: ही अभिप्रेरित होता है तो हर्जबर्ग इसे 'अभिप्रेरणा द्‌वारा प्रबन्ध' कहते हैं क्योंकि जब व्यक्ति कुछ करता है तो वह कार्य से ही अभिप्रेरित होता है । यह अभिप्रेरणा व्यक्ति के अन्दर के उत्साह तथा पहल क्षमता से आती है । इसीलिए हर्जबर्ग का कहना है कि "मुद्रा एक अभिप्रेरक नहीं बल्कि एक अच्छा संचालक है ।" हर्जबर्ग प्रबन्ध के क्षेत्र में किटा अवधारणा का प्रयोग नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों दृष्टिकोणों से करते है । नकारात्मक रूप में किटा अवधारणा से तात्पर्य कार्मिकों को डाँट-फटकार, दण्ड देने, पदावनति करने तथा जुर्माना आदि तरीकों द्‌वारा दण्डित करना है, अर्थात् 'नकारात्मक किटा' कर्मचारियों के साथ एक प्रकार का दुव्यर्वहार, बल प्रयोग एवं उत्पीड़न है जबकि सकारात्मक रूप में किटा अवधारणा से तात्पर्य कार्मिकों को प्रोत्साहन, प्रेरणा, वेतनवृद्धि, नई सुविधाएँ, अच्छी कार्य दशाएँ आदि प्रदान करके उन्हें कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना है, अर्थात् सकारात्मक किटा (Kita) कार्मिकों का एक तरह से लालच, प्रलोभन एवं बाहय आकर्षण है जो कि और भी खराब तरीका है । उनका मानना है कि इन दोनों ही प्रकारों से कार्मिकों को अभिप्रेरित नहीं किया जा सकता । वरन् 'कार्य की समृद्धता' तथा कार्य की पुनर्संरचना द्‌वारा ही व्यक्ति को अभिप्रेरित किया जा सकता है । उन्होंने माना कि आधुनिक प्रबन्ध पद्धति में 'किटा' की अवधारणा उपयुक्त नहीं है ।

13.3.4 कार्य समृद्धता

हर्जबर्ग के अनुसार, कार्य समृद्धता से तात्पर्य-कार्य की जिम्मेदारी, क्षेत्र और चुनौती को जान-बूझकर उच्च करना है । इन्हें कार्य समृद्धता का जनक कहा जाता है, क्योंकि हर्जबर्ग ही एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने कार्य तथा कार्मिक की अभिप्रेरणा के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया है । हर्जबर्ग के अनुसार, "कार्य समृद्धता वह तकनीक है जो कम्पनी अपने कार्मिकों को कार्य के लिए अभिप्रेरित करने में काम में लेती है जिससे कार्य संतुष्टि बढ़ सके । कार्य समृद्धता से उन अनेक कठिनाइयों का

समाधान सम्भव है जो कि आज प्रबन्धकों के सामने आ रही है ।" उनके मतानुसार 'अधिकांशत: प्रबन्धक कार्मिकों के व्यक्तिगत योगदान को कम करने में तो सफल होते हैं पर उसके वर्तमान कार्य को समृद्ध करने का अवसर मानने की भूल कर बैठते हैं ।" इस सम्बन्ध में हर्जबर्ग का यह भी कहना है कि, “यदि कोई कर्मचारी एक दिन में दस हजार बोल्ट किसी यंत्र में लगाता है और उसे बीस हजार बोल्ट कसने का कार्य देते हैं तो, यह शून्य को शून्य से गुणा करने के समान है क्योकि उस कर्मचारी को तो दस हजार बोल्ट कसने से ही कोई अभिप्रेरणा नहीं मिलती थी ।

हर्जबर्ग कार्य समृद्धता को कार्य भारण (Job Loading) से सम्बन्धित दो तरीकों में विभाजित करते हैं । उनका कहना है कि कार्मिकों को वैसे ही कार्य और कार्य करने के अवसर दिए जाएँ जैसे पूर्व में दिए गए थे । इसे क्षैतिजिक भारण कहा जाता है। इसके विपरीत जिसमें कार्य की ऐसी संरचना निर्मित की जाये अथवा कार्य को इस ढंग से किया जाये कि कार्मिकों को उत्तरदायित्व, सृजनात्मकता, पहल क्षमता, स्वायत्ता तथा संतुष्टि के नवीन अवसर प्राप्त हो जायें उसे लम्बवत् कार्य भारण कहते हैं । हर्जबर्ग ने माना है कि लम्बवत् कार्य भारण ही कार्य समृद्धता की श्रेष्ठ पद्धति है । कार्य समृद्धता की प्रक्रिया में, प्रभावी फीडबैक प्रक्रिया को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है । प्रभावी फीडबैक कार्मिक और संगठनात्मक लक्ष्यों के व्यवहार के मध्य होता है न कि कार्मिक और पर्यवेक्षक के बीच । प्रभावी फीडबैक की निम्न विशेषताएँ हैं

(1) यह कार्य-लक्ष्य निष्पादन से जुडा होता है ।

(2) यह व्यक्तिगत आधार पर होता है ।

(3) यह अल्प-अन्तराल में घटित होता है ।

(4) यह कार्मिक को कार्य-लक्ष्य से दिया जाता है ।

इस प्रकार हर्जबर्ग का समस्त चिन्तन कर्मचारी को 'अभिप्रेरकों' के माध्यम से संगठन में सन्तुष्टि प्रदान करने के क्रम में रहा है । हर्जबर्ग के मतानुसार, कहीं पर भी कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की दिशा में अभी तक ठोस व्यावहारिक प्रयास नहीं हुए हैं ।" उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि, "अभिप्रेरणा के लिए यह सब पर्याप्त नहीं है क्योंकि अध्ययनों द्वारा यह सभी विधियाँ अल्प-प्रभावी सिद्ध हो चुकी हैं । " इस बात की पुष्टि करते हुए राबर्ट एन. फोर्ड कहते हैं कि, "कार्य को पुन: आकार देने की कला ही कार्य समृद्धता है ।" हर्जबर्ग ने इसके अतिरिक्त लम्बवत् कार्यभारण की जाँच सूची भी बतायी है, जिसमें उनके प्रयास तथा संभावित परिणाम वर्णित है।

हर्जबर्ग मानते हैं कि कर्मचारी को जब एक बार जिम्मेदारी दे दी जाती है, तो पर्यवेक्षक को यह देखना चाहिए कि यदि इसमें विफल होता है तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी । कुछ विफलताओं के लिए तो उसे पहले से ही तैयार रहना चाहिए, उसे जाँच करनी चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ? इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षक को कर्मचारी की गलती सुधारने में मदद करनी चाहिए तथा ऐसी कार्य योजना बनाई जानी चाहिए जिससे की गलतियों का दोहराव ना हो ।

लम्बवत कार्य भारण की जाँच सूची

	लम्बवत कार्य भारण के प्रयास	अन्तर्निहित अभिप्रेरक
(1)	कार्य में उत्तरदायित्व कों रखते हुए नियंत्रण	उत्तरदायित्व एवं वैयक्तिक उपलब्धि।

	में कुछ कमी ।	
(2)	कार्मिकों के स्वयं के कार्य के लिए इनके उत्तरदायित्व में वृद्धि करना ।	उत्तरदायित्व एवं मान्यता ।
(3)	कार्मिकों को कार्य कि पूर्ण इकाई सौंपना।	उत्तरदायित्व, उपलब्धि तथा मान्यता।
(4)	कार्मिकों को उसके कार्य के अतिरिक्त कार्यभार एवं स्वतन्त्रता देना ।	उत्तरदायित्व, उपलब्धि तथा मान्यता।
(5)	कार्मिकों को कार्य निष्पादन की नियतकालिक रिपोर्ट कार्मिक एवं पर्यवेक्षक दोनों कों सौंपना ।	आन्तरिक मान्यता ।
(6)	कार्य में नवीन तथा जटिल पहलूओं को जोड़ना जो कि कार्मिक ने पहले नहीं किए हों।	वृद्धि या प्रगति एवं सीखना ।
(7)	कार्मिक कों विशिष्ट कार्य सौंपना जिससे कि उनमें दक्षता एवं विशेषज्ञता आ सके।	उत्तरदायित्व, उन्नति एवं प्रगति ।

13.3.5 औद्योगिक मिथक / भ्रान्तियाँ (Industrial Myths)

प्रबन्ध की परम्परागत मान्यताओं के क्रम में हर्जबर्ग कहते हैं कि, "समाज में उद्योगों का 'प्रबन्धकीय समूह' कुछ भ्रान्तियों से ग्रस्त रहता है ।" हर्जबर्ग इन भ्रान्तियों को विस्तारपूर्वक समझाते हुए कहते हैं कि -

(1) 'आर्थिक मानव' समाज का केन्द्र-बिन्दु है ।

(2) प्रबन्धकों के गुणों की विशिष्टता ही 'आर्थिक सफलता' है तथा 'आर्थिक सफलता' ही उनके गुणों की विशिष्टता है।

(3) कार्य ही धर्म है तथा धर्म ही कार्य है ।

(4) उद्योगों में प्रबन्धक ही विवेकशील होते हैं, श्रमिक नहीं ।

(5) महत्त्वाकांक्षा विहिनता असफलता को सुनिश्चित करती है ।

(6) श्रमिकों के लिए सही अभिप्रेरणा - विश्राम, प्रसन्नता, वेतन तथा सुख-सुविधा के साधन है ।

(7) श्रमिकों एवं मध्यवर्गीय कर्मचारियों में पैतृकवाद, पूँजीवादी लोक कल्याण तथा समाज कल्याण उनकी क्रान्ति के परिणाम हैं ।

हर्जबर्ग कहते हैं कि, "वैज्ञानिक प्रबन्ध में भी स्वयं को संतुष्ट करने के लिए कई भविष्यवाणिनुमा प्रवृत्तियाँ व्याप्त होती हैं । वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रमुख आधार कार्यकुशलता मानी जाती है जबकि कार्यकुशलता के लिए कार्य को यथासम्भव छोटी-छोटी इकाइयों से विभाजित करना पड़ता है । इससे मानवीय क्षमताओं का पूर्ण सदुपयोग भी नहीं हो पाता और यही तो वह इच्छा है जो सब

चाहते हैं कि जहाँ तक हो सके, उन्हें कम से कम जटिल कार्य करना पड़े तथा उसे दूसरों पर टाला जा सके ।"

13.4 हर्जबर्ग के योगदान की आलोचना (Criticism of Herzberg Contributions)

हर्जबर्ग के द्वि-घटक सिद्धान्त की लोकप्रियता के बावजूद उससे विचारों की काफी आलोचना की गई है । उनके आलोचकों में प्रमुखतः एडविन ए. लॉक, हाउस एवं विगडोर कीथ डेविस, गेलरमैन, पीटर एफ. ड्रकर आदि हैं । इनकी प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं

मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय के एडविन ए. लॉक के अनुसार, "हर्जबर्ग ने मनुष्य की प्रकृति का विश्लेषण 'शरीर एवं मस्तिष्क के विभाजन' के आधार पर किया है जो कि ठीक नहीं है, इसके साथ-साथ उनका अभिप्रेरणा में तनाव घटाने का विचार भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।"

हाउस एवं विगडोर का मानना है कि यह सिद्धान्त विधि के रूप में अविकसित है जब सब ठीक को तो वह स्वयं को सर्वोत्तम प्रस्तुत. करते हैं पर जब गलती हो जाती है तो वह वातावरण के घटकों, अर्थात् आरोग्य घटकों पर आरोप लगाते हैं । इसके साथ ही इनकी शोध-विधि (मैथ्डोलॉजी) गलत है तथा यह एक पक्षपातपूर्ण सिद्धान्त है । वैसे भी हर्जबर्ग ने 'क्या करना है' पर जोर दिया है, यह नहीं बताया कि 'कैसे करना है ।'

कीथ डेविस हर्जबर्ग के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इस मॉडल का परीक्षण संयत्र श्रमिकों पर नहीं किया गया । मॉडल में जिन घटकों को सामान्य रूप से आरोग्य घटक बतलाया गया है उन्हें श्रमिक प्रायः अभिप्रेरणात्मक घटक मानते हैं । एक अध्ययन के तथ्यों से पता चला है कि, 'संयत्र श्रमिक अभिप्रेरकों की तुलना में आरोग्य घटकों को अधिक महत्त्व देते हैं ।"

गैलरमैन के अनुसार, "व्यक्ति का व्यवहार गतिशील होता है जबकि हर्जबर्ग ने मनुष्य के व्यवहार को जड़ मानते हुए अभिप्रेरणा सिद्धान्त बनाया है । उन्होंने कहा कि आज के अभिप्रेरक कल के स्वास्थ्य घटक बन जाते हैं ।"

पीटर एफ. ड्रकर ने इनकी आलोचना करते हुए कहा है कि हर्जबर्ग के ये विचार कि "आर्थिक संतुष्टियाँ केवल ऋणात्मक रूप से ही प्रभावी होती हैं", एकदम नया नहीं है क्योंकि सन् 1950 में प्रकाशित उनकी पुस्तक, "The New Society" में पहले ही सामने आ चुका था जबकि हर्जबर्ग ने अभिप्रेरणा सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1959 में किया था ।

कुछ आलोचकों ने हर्जबर्ग के इस सिद्धान्त को औद्योगिक अभियांत्रिकी उपागम अपनाने वाला मानकर इसकी आलोचना की है । उनके मतानुसार "एक व्यक्ति के लिए जो आरोग्य घटक हो सकता है, वही दूसरे व्यक्ति के लिए अभिप्रेरक हो सकता है, यह स्पष्ट नहीं हैं ।" कुछ आलोचकों ने कहा कि हर्जबर्ग का यह मानना "उच्च वेतन से कार्य निष्पादन में सुधार नहीं आता या धन एक वास्तविक अभिप्रेरक नहीं है", गलत है क्योंकि आज के भौतिकवादी युग में उच्च वेतन को मान्यता, प्रतिष्ठा तथा स्वाभिमान के साथ जोड़कर देखा जाता है ।

13.5 सारांश

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद हर्जबर्ग का द्विघटक सिद्धान्त काफी महत्त्वपूर्ण है । इसे अनेक क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है । हर्जबर्ग के द्वि-घटकों में प्रथम वे घटक हैं जो व्यक्ति से कार्य के समय होने वाली संतुष्टि को कम करते हैं, इन्हें आरोग्य घटक या हाइजीन फैक्टर्स कहा जाता है तथा द्वितीय घटक वे हैं जो व्यक्ति को अभिप्रेरित करते हैं । इन्हें 'अभिप्रेरक घटक' कहा जाता है । आरोग्य घटको में हर्जबर्ग ने कम्पनी की नीतियों और प्रशासन, पर्यवेक्षण, कार्य की प्रवृत्ति, वेतन व सुरक्षा आदि कारकों को सम्मिलित किया है । ये व्यक्ति को असन्तुष्ट होने से रोकने में मदद करते हैं, जबकि अभिप्रेरक तत्वों में उन्होंने उपलब्धि, उपलब्धि प्राप्ति की पहचान, चुनौतीपूर्ण कार्य, उत्तरदायित्व में वृद्धि तथा विकास आदि कारकों को सम्मिलित किया है । उनका मानना है कि ये कारक ही व्यक्ति को अभिप्रेरित करने में सहायक होते हैं ।

यद्यपि कुछ अध्ययनों में हर्जबर्ग के सिद्धान्तों को खरा नहीं पाया गया है तो कुछ अध्ययन ऐसे भी हैं जिनमें हर्जबर्ग का सिद्धान्त सही पाया गया है । अल्डेरफर द्वारा विकसित ई. आर. जी. सिद्धान्त हर्जबर्ग के विचारों को ही आगे बढ़ाता है । इसी प्रकार 'कार्य-समृद्धता' के क्षेत्र में हर्जबर्ग का योगदान नितान्त मौलिक है ।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. हर्जबर्ग के प्रशासकीय योगदान की समीक्षा कीजिये ।
2. हर्जबर्ग के द्विघटक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।
3. हर्जबर्ग की किटा अवधारणा की समीक्षा कीजिये ।

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. Paul Harssi, Blanekard and Johnson, Management of Organization Behaviour, Prentice Hall, 2001.
2. Herzberg, Mausner and Snyderman, The Motivation to Work, New York, John Wiley and Sons, Inc., 1959.
3. Stiffen P.Robbins, Organization Behaviour, Prentice Hall of India, Private Ltd., New Delhi, 1999
4. Herzberg, V.Laxmipati, Administrative Thinkers, Sterling, 1998.

इकाई - 14

येहेज्केल ड्रोर (Yehezkel Dror)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 नीति विज्ञान की अवधारणाएं

14.3 नीति विज्ञान के मूल सिद्वान्त

14.4 नीति विज्ञान का महत्व

14.5 नीति विज्ञान के प्रभाव

14.6 ड्रोर का योगदान

14.7 सारांश

14.8 अभ्यास प्रश्न

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि -

- ड्रोर की नीति विज्ञान की अवधारणा के बारे में ।
- ड्रोर के नीति विज्ञान के महत्व के बारे में ।
- नीति विज्ञान के प्रभाव के बारे में ।
- ड्रोर के योगदान के बारे में ।

14.1 प्रस्तावना

नीति विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण विचारक येहेज्केल ड्रोर का नाम जाना जाता है जो कि एक इस्त्रायली नागरिक था । ड्रोर ने हेब्यू विश्वविधालय से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अमरीका के अनेक व्यावसायिक (रैण्ड कॉपोरेशन) एवं अकादमिक संस्थाओं से जुडे तथा इन संस्थाओं एवं अमरीकी सरकार में नीति निर्माण के अनेक पहलुओं को गहराई से देखा और पाया कि नीति निर्माण एक अत्यन्त जटिल एवं दूरगामी परिणाम देने वाली प्रक्रिया है जिसमें कि विशेष रूप से आर्थिक एवं राजनीतिक पक्ष महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । ड्रोर ने उन स्थितियों को नियंत्रण के साधन के रूप में समझने का प्रयास किया एवं यह दर्शाया कि नीति विज्ञान के माध्यम से राजनीति विज्ञान को एक 'मास्टर साइन्स' (Master Science) का रूप दिया जा सकता है । ड्रोर ने नीति को नियंत्रणों पर नियंत्रण एवं सर्वोच्च नियंत्रण के रूप में विश्लेषित करने का प्रयास किया । ड्रोर की पुस्तक "Ventues in Policy Sciences" में इस बात को विशेष रूप से अध्ययन में लिया गया है । वह नियंत्रणों के साधन के रूप में नीति को दर्शाकर यह बताना चाहता है कि लोक नीति की समीक्षा सफलताएं एवं असफलताएं एवं परिणाम इसी दृष्टि से ही जाँचे जाने चाहिये कि क्या लोक नीति नियंत्रणों पर नियंत्रण स्थापित करने में सफल रही है ड्रोर की पुस्तक "Public Policy Reexamind" में इस बात पर

जोर दिया गया है कि लोक प्रशासन नीति का कार्मिक उद्देश्य शासन का नियंत्रण होना है जिसमें कि विधि, अर्थ, प्रशासन, संरचनाएं इत्यादि महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि सर्वाधिक महत्चपूर्ण है कि शासन का नियंत्रण सभी प्रकार की व्यवस्थाओं पर हो तथा यह नियंत्रण लोक नीति के माध्यम से स्थापित किया जा सकता है जिसमें विवेक, सरचनाएं, कार्यक्रम, परिणाम एवं प्रभावशीलता प्रमुख रूप से महत्वपूर्ण समझी जा सकती है ।

ड्रोर के अनुसार लोकनीति का सन्तुलन इन्हीं सभी तत्वों पर निर्भर करता है । अत: लोक नीति की समीक्षा भी इन्ही आधारों पर की जानी चाहिये ।

इस प्रकार से ड्रोर के विचार नीति विज्ञान के जनक हेराल्ड लॉसवैल से मिलते है जोकि नीति विज्ञान को शासन के एक प्रमुख साधन के रूप में दर्शाने का प्रयास करता है । लासवैल एवं ड्रोर के पारस्परिक विचार न केवल एक दूसरे के पूरक है बल्कि राजनीति विज्ञान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण विज्ञान बनाने का प्रयास भी हैं । इस अध्ययन में हम ड्रोर के नीति विज्ञान सम्बन्धि विचारों का कथन करेगें तथा यह देखने का प्रयास करेंगे कि ड्रोर के नीति विज्ञान में किये गये कथक प्रयासों के कारण ही नीति विज्ञान वर्तमान में एक स्वंतत्र विषय, अनुशासन एवं ज्ञान के रूप में अध्ययन किया जाने लगा है । अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में निति विज्ञान या लोक नीति के रूप में अनेक नीति अध्ययन केन्द्रगत 30-40 वर्षा से कार्यरत हैं ।

ड्रोर का चिंतन नीति विज्ञान के संदर्भ में मुख्यत: निम्न तत्वों से प्रभावित देखा जा सकता है प्रथम, समाज विकास के जो निर्देशक तत्व हैं वे मूल्यों की असमंजसता या मूल्यों के संकट से ग्रस्त हैं और समाज विकास की दिशा को सही रूप से निर्देशित नहीं कर पाते हैं, द्वितीय, समाज विज्ञान में मूल्यों की प्राप्ति हेतु विरोधाभासी अथवा द्वन्दात्मक स्थिति भी नीति निर्माताओं के समक्ष निर्णय करने की संकट खड़ा करती है, तृतीय, ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है जो कि मूल्यों में बांधा नहीं जा सकता तथा मानवीयता का भविष्य केवल मात्र मूल्यों के आधार पर सुनिश्चित नहीं किया जा सकता । चतुर्थ, ड्रोर इस बात से भी चिन्तित नजर आता है कि मानवीय क्षमताएं बदलती परिस्थितियों के अनुरूप विकसित नहीं हो पा रही है और मानवीयता को बार-बार परिस्थितियों से हारना पड़ता है, विज्ञान के विकास ने नवीन मूल्यों की स्थापना करने में सफलता हासिल नहीं की है! नवीन मूल्यों की खोज ज्ञान के भण्डार से प्राप्त की जा सकती है जोकि अनन्त है । पंचम, ड्रोर यह भी चाहता है कि ज्ञान का विभाजन जो संकायो या विषयों के आधार पर किया जाता है उस विभाजन को समाप्त करके, विशेषकर व्यावहारिक विज्ञान का निर्णय विज्ञान से विभाजन की समाप्ति, ऐसा ज्ञान का क्षेत्र विकसित किया जाये जो कि ज्ञान को समग्र रूप से प्रस्तुत कर सके । शष्टम् ड्रोर यह मानता है कि ज्ञान एवं शक्ति में विरोधाभास या द्वन्दात्मक स्थिति नहीं है और यह एक दूसरे के पूरक बनाये जा सकते है यदि ज्ञान सरल बना दिया जाये और शक्ति को झूठे अंहकार से बाहर निकाल दिया जाये जोकि नीति विज्ञान के अन्तर्गत ही सम्भव है । ड्रोर का यह मानना कि शक्ति से अच्छे डिजायन बनाना व नये विकल्पों का निर्माण करना ज्ञान के द्वारा सम्भव है जैसा कि हैराल्ड लॉसवैल ने भी अपनी पुस्तक "The Policy Sciences...." (1951) में कहा था कि नीति विज्ञान का उद्देश्य न केवल ज्ञान एवं शक्ति का समन्वय करना है बल्कि भविष्य के लिए ऐसे विकल्प एवं डिजायन तैयार करना भी हैं जोकि सभी परिस्थितियों पर नियंत्रण स्थापित कर सके । ड्रोर के चिन्तन में यह बात स्पष्ट रूप से झलकती है कि वह लॉसवैल के चिन्तन से न केवल सहमत है बल्कि उसकी विकल्प एवं डिजायन की जिज्ञासा

को मूर्तरूप भी देना चाहता है जो कि उसकी अन्य पुस्तकें "Desigus for Policy Sciences" (1971) एवं “Public Policy Reexamined” (1968) दर्शाती हैं । ड्रोर के चिन्तन में सारा जोर इस बात पर देखा जा सकता है कि वह किसी भी डिजायन को अपना अन्तिम विकल्प नहीं मानता एवं विकल्पों के विकल्प (Atternatives of Choices) की तलाश में रहता है । ड्रोर की पुस्तकों को गहराई से समझा जाये जो यह महसूस होता है कि वह दर्शनशास्त्र को व्यावहारिकता में विकल्प के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है जिससे कि मानवीयता का सच्चा स्वरूप प्राप्त किया जा सके तथा मानवीयता को शुद्ध विज्ञान की दृष्टि से परखा जा सके । ड्रोर की दर्शनशास्त्रीय व्यावहारिकता मानवीय विवेक के साथ न केवल समन्वित है बल्कि वह मानवीय विवेक को विकल्पों एवं डिजायन की तलाश के लिए निरन्तर प्रेरित करती है । ड्रोर ऐसी स्थिति को नीति विज्ञान की संज्ञा देना चाहता है जबकि ग्रास (Gross) इन्हें “सामाजिक नियंत्रक क्लस्टर” एवं अमिताई इजिओनी (Amitai Etzioni) ने “सामाजिक नियंत्रक केन्द्र" की संज्ञा देते हैं । ग्रोस एवं इजिओनी सामाजिक दिशाओं पर नियंत्रण चाहते हैं जबकि ड्रोर नियंत्रण के साथ- साथ उनके प्रयोग में ज्ञान एवं विवेक का सदुप्रयोग करना चाहता है । जॉन मैक्हेल (John Mchale) ने अपनी पुस्तक "The Future of the Future”(1969) में दूरगामी एवं विचारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए यह माना है कि भविष्य को साधने के लिए ज्ञान एंव विवेक का बुद्धिमता पूर्व प्रयोग आवश्यक है । इसी प्रकार से वर्नहैमपुरनम बैंकविथ ने अपनी पुस्तक "The Next 500 Year” (1967) में कहा है कि मानवता का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि मानवता का भविष्य के लिए विकल्प एवं डिजायन खोजने में कहीं तक है क्योंकि ज्ञान अनन्त है । आवश्यकता इस बात की है कि मानवता ज्ञान के अनन्त भण्डार को समझने का प्रयास करे । ड्रोर के चिन्तन में यह सभी बाते स्पष्टत: नजर आती हैं । ड्रोर का वह प्रयास, कि ज्ञान का अनन्त भण्डार नियंत्रण पर नियंत्रण कर सके, नीति विज्ञान को सर्वोच्चतम स्तर पर ले जाने के सन्दर्भ में समझा जा सकता है । ड्रोर के लेखन में यह बात मुख्य रूप से उभरती है कि नीति एक विषय के रूप में ही नहीं बल्कि विज्ञानों के मध्य समन्वयक, सांमजस्यकर्ता, नियंत्रण के रूप में भी विद्यमान है जैसा कि भारत के पवित्र ग्रन्थ "गीता" में भी इसे समझा जा सकता है । मूलरूप से, ड्रोर एक चिन्तक के स्थान पर क्रिया, व्यवहारवादी एवं आनुभविक आधार पर विकल्पों का निर्माता, नीतियों का डिजायनर एवं विज्ञानों का विज्ञान निर्माता नजर आता है ।

14.2 नीति विज्ञान की मुख्य अवधारणाएं

नीति विज्ञान का मुख्य उद्देश्य ऐसे ज्ञान का विकास है जो कि नियंत्रण व्यवस्था के नियन्त्रण हेतु प्रणाली अन्वेषित कर सके । अत: नीति विज्ञान एक ऐसे विज्ञान के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है जा कि समाज की नियंत्रण व्यवस्था को नियन्त्रित करना चाहता है । तथा समाज का ऐसी दिशा में विकास चाहता है जो कि मानवता को सही अर्थो में पारिभाषित कर सके । परन्तु नीति विज्ञान वह मानता है कि :-

(अ) "समाज के निर्देशन, निर्माण एवं कार्यान्वयन उपलब्ध ज्ञान एवं पर्यावरणीय, सामाजिक एवं व्यक्ति की क्षमताओं के मध्य एक गहरी खाई है जो कि मानवता की जीवन्तता एवं विकास के लिए एक बड़ा खतरा है । व्यक्ति, जो कि पर्यावरण एवं समाज का नियंत्रण है, के लिऐ आवश्यक है कि

वह समाज की ऐसी निर्देशक व्यवस्थाएं विकसित करे जो कि मानवता के लिए एक शक्तिशाली साधन बन सके।

(ब) जहाँ एक ओर पर्यावरण, समाज एवं मानव को निर्मित करने वाली क्षमताएं बढ़ रही है वहीं दूसरी और नीति निर्माणक क्षमताएं स्थिर हैं, तथा

(स) नीति निर्माण हेतु वैज्ञानिक ज्ञान, जो कि परम्परागत विषयों में अवस्थित है यथा अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान इत्यादि अविकसित एवं कमियों से प्रभावित है, यह दर्शाता है कि वर्तमान में जो प्रयत्न हुए है वे वर्तमान विज्ञानों के मुख्य असन्तुलित विकास के लिए उत्तरदायी हैं ।

इसके अतिरिक्त नीति विज्ञान यह अवधारित करता है कि वर्तमान विश्व में जो चुनौतिया उभर रही है वे मानव की बौद्विक क्षमताओं के परे हैं तथा नीति विज्ञान की बुनियाद को निष्प्रभावी बनाती है तथा यदि यह मान लिया भी जाये कि नीति विज्ञान एक वैज्ञानिक साधन के रूप में उभर सकेता है तो भी यह संशय बना रहेगा कि इसकी भविष्य में क्या विशेषताएं तथा क्या प्रभाव होंगे । अत: नीति विज्ञान के जो संदर्शन एवं प्रतिमान है वे सैद्वान्तिक रूप से उचित होते हुए भी वे क्षमताएं नही रखते तो कि भविष्य को सुनिश्चित रूप से आंकलित एव निर्धारित कर सके ।

उपर्युक्त अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में नीति विज्ञान में जो संदर्शन विकसित हुए हैं वे अधिकांशत: नियन्त्रण व्यवस्था एवं प्रणाली से सम्बन्धित हैं और चूँकि नियन्त्रण व्यवस्थाएं, सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में, लोक प्रशासन के अधिकार में रहती है अत: वे नीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन के मध्य निकटस्थ के सम्बन्ध कायम करती है तथा एक -दूसरे को पारस्परिक रूप से निर्भर बनाती है । ये संदर्शन नीति विज्ञान में निम्न रूप से व्यक्त किये गये हैं-

1. नीति निर्माण पर नीति में सुधार लाना नीति विज्ञान का मुख्य उद्देश्य है अत: नीति विज्ञान का सम्बन्ध पद्वति, ज्ञान एवं व्यवस्था को उन्नत बनाने से हैं । इस हेतु नीति विज्ञान का जोर नीति विश्लेषण, वैकल्पिक अन्वेषणों मास्टर नीतियों मूल्यांकन, सामाजिक परीक्षण एवं संगठनात्मक सुधार पर है ।
2. विभिन्न विषयों की परम्परागत सीमाओं को तोड़ा जाना चाहिये तथा विशेष रूप से व्यवहारवादी विज्ञानों एवं निर्णय विज्ञानों के मध्य निकट के सम्बन्ध होना चाहिए । नीति विज्ञान को ज्ञान के विभिन्न संकायों में समन्वय स्थापित करना चाहिये तथा एक ऐसे सर्वोच्य अनुशासन के रूप में उभरना चाहिये जो कि सभी प्रकार के सिद्वान्तों का समावेश करने की क्षमता रखता हो ।
3. विशुद्ध एवं क्रियान्वित शोध के मध्य दूरियों को विभिन्न शोध पद्धतियों के माध्यम से कम किया जान चाहिये तथा शोध का उद्देश्य सामाजिक विदेशों का पहचानना होना चाहिये जिससे कि सम्पूर्ण विश्व नीति विज्ञान की एक प्रयोगशाला प्रतीत हो ।
4. व्यक्तिगत अनुभव तथा मूक ज्ञान को ज्ञान एवं शोध का एक महत्त्वपूर्ण साधन समझा जाना चाहिए जिससे कि नीति विज्ञान सामान्य विज्ञानों से भिन्न प्रतीत हो ।
5. नीति विज्ञान यद्यपि सामान्य विज्ञानों की दृष्टि से सैद्वान्तिक ज्ञान पर जोर देता है परन्तु शुद्ध एवं सार्वभौमिक मूल्यों पर नहीं । इसके बावजूद, नीति विज्ञान मूल्य-उन्मूख विज्ञान की ओर प्रेरित नहीं होता क्योंकि नीति विज्ञान समाज निर्माण में मूल्यों की भूमिका से भलीभांति परिचित है और नीति निर्माण में मूल्यों के विकल्प एवं उन्हें चुनने की क्षमता प्रदान करता है ।

6. नीति विज्ञान "वैकल्पिक भविष्य" पर गहन दृष्टि एवं सोच रखता है तथा संगठनात्मक रचनाओं पर विशेष जोर देता है और इस प्रकार, दर्शनाशास्त्र के नैतिक पक्ष एवं मूल्यों के कार्यान्वयन पक्ष के मध्य जो दीवार स्थित है उसे तोड़कर एक ऐसे विज्ञान की स्थापना करता है जो कि भविष्य के निर्माण में ऐतिहासिक उपागम की भूमिका को कम कर सके तथा भविष्य के प्रति एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रदान कर सके ।
7. नीति विज्ञान संरचित विवेक पर आधारित विज्ञान है जिससे कि समाज की दिशाएं एवं उनका कार्यान्वयन पर नियन्त्रण किया जा सके । इसके साथ-साथ नीति विज्ञान अतिविवेकीय प्रक्रियाओं (रचना, अर्न्तमन, करिश्मा, मूल्य न्याय संगतता) पर भी जोर देता है जिससे कि नीति निर्माण से परिवद्धित चेतना को सुधारा जा सके ।

कुल मिलाकर, नीति विज्ञान एक ऐसा ज्ञान है जो कि सभी प्रकार के ज्ञान को नियन्त्रित करने की शक्ति रखता है । दूसरे शब्दों में, यह एक शक्ति है जो कि सामाजिक संरचना एवं उसके सम्बन्धों को राजनीति का स्वरूप प्रदान करती है तथा निर्णय तंत्र का निर्माण करती है जो कि राजनीतिक प्रक्रियाओं को सामान्य विज्ञान से अधिक नीति-निर्माण का विज्ञान बनाने में तत्परता से कार्य करती है । नीति विज्ञान के प्रमुख तत्व शक्ति, निर्णय-प्रतिमान, प्रक्रियाएं, विवेक व्यवहारवादी दृष्टिकोण एवं उद्देश्य माने जा सकते हैं । नीति विज्ञान मूल्यों की न केवल न्यायसंगतता पर विचार करता है बल्कि मूल्यों के हितों, नैतिकता एवं तथ्यों से सम्बन्धों पर भी विचार करता है । यह सत्य है कि नीति विज्ञान में मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है परन्तु विकल्पों, प्रतिमानों, नियन्त्रण विधियों, पद्धतियों एवं अनुभवों के द्वारा मूल्यों की आवश्यकता स्वीकार की गई है । नीति विज्ञान का यह उद्धेश्य सदैव रहा है कि मानव बुद्धि के नियन्त्रण से परे परिस्थिति का निर्माण' नहीं होने देना है तथा खराब स्थितियों को तुरन्त सुधार देना है ।

नीति विज्ञान के प्रमुख केन्द्र बिन्दु संस्थाए तथा व्यक्ति रहे हैं अत: केन्द्रीकरण नीति विज्ञान में बुराई नहीं समझा गया, परन्तु यह माना गया कि प्रत्येक स्थिति के विकल्प तैयार रखने चाहिये । नीति विज्ञान संस्था एवं व्यक्ति को शक्ति एवं ज्ञान के रूप में देखने का प्रयास करता है । शक्ति एवं ज्ञान के मध्य सम्बन्ध पारस्परिक निर्भरता पर आधारित होने चाहिये तथा इन सम्बन्धों का प्रयोग नीति निर्माण में बड़ी सर्तकता एवं सम्भावनाओं को देखकर किया जाना चाहिये।

नीति विज्ञान का प्रमुख आधार संचार है जो कि नीति विषयक प्रश्नों को नीति विश्लेषण के रूप में प्रस्तुत करता है तथा साथ-साथ नीतिगत विकल्प एवं सम्भावनाएं भी व्यक्त करता है । संचार तकनीकी एवं माध्यम इसमें महत्वपूर्ण माने गये हैं वही दूसरी और नागरिकों का नीतिगत प्रश्नों की ओर सम्मान मनोविज्ञान को दर्शाता है जो कि नीति विज्ञान के लिए अनेक विकल्प तैयार कर सकता है ।

नीति विज्ञान सामाजिक परीक्षण डिजायनों एवं संस्थाओं की भूमिका को अहम मानता है क्योंकि परीक्षणों द्वारा विषयक विकल्प तैयार करने में सहायता मिलती है तथा उन विकल्पों के अनुरूप प्रशासनिक प्रबन्ध किये जा सकते है । इससे नवीन प्रबन्धकीय पद्धतियों का विकास होता है तथा संस्थाएं दूरगामी परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर नीति-निर्णय लेती है ।

नीति विज्ञान भविष्यर्ती विकल्पों की रचना प्रक्रिया के दौरान एक ऐसे ज्ञान को जन्म देता है जो कि व्यक्ति में पूर्वाभासी क्षमता का विकास करता हैं तथा निर्णयों में रहस्य बनाये रखता है ।

ऐसे समस्त नीति-निर्णय मानवीय चेतना के परिणाम माने जा सकते हैं चाहे उनका वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया जा सके अथवा नहीं । मानवीय चेतना व्यक्ति में ऐसी प्राथमिकताओं को जन्म देती है जो कि उसके नीतियों पर जाने-अनजाने प्रभाव डालती है और यही प्राथमिकताएं निर्णयकर्ता में वे क्षमताएं उत्पन्न करती है जो कि उसे नीति-निर्णायक बनाती है । अत: नीति विज्ञान, कुल मिलाकर एक साधना है जिसके कि साधन, प्रशासनिक संस्थाएं, व्यक्ति विवेक, अनुभव इत्यादि हैं ।

14.3 ड्रोर के मूल सिद्धान्त

ड्रोर ने नीति विज्ञान को विज्ञान का स्वरूप प्रदान करने से पूर्व कुछ सिद्वान्तों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया जोकि व्यवहारवादी विज्ञान के सन्दर्भ में समझे जा सकते हैं :-

ड्रोर यह मानता है कि-

"मानव, समाज, पर्यावरण को स्वरूप प्रदान करने हेतु मानव क्षमताएं जहाँ तेजी से बढ रही हैं वहीं नीति निर्माण की क्षमताएं उन मानव क्षमताओं का उपयोग करने में बढ नहीं सकी हैं तथा स्थिर हैं । " ड्रोर का यह सिद्धान्त मानव क्षमताओं एवं नीति निर्माण की क्षमताओं के मध्य बढती खाई को देखने, समझने एवं जानने के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिये । ड्रोर यह मानता है कि माननीय क्षमताओं में वृद्धि तेजी से बढ़ते वैज्ञानिक साधनों का परिणाम हैं परन्तु नीति निर्माण में उन क्षमताओं का उपयोग नहीं हो सका क्योंकि नीति निर्माण के विकल्प एवं डिजायन क्षमता की दृष्टि से परिपूर्ण नहीं है अत: नीति विज्ञान में उनके अधिकाधिक खोज की आवश्यकता है ।

ड्रोर का दूसरा सिद्वान्त इस बात से सम्बन्धित है कि ' 'ज्ञान की कमी से सामाजिक निर्देश व्यवस्था मानवता का सही निर्धारण नहीं कर सकी क्योंकि सामाजिक नियंत्रण के जो साधन एवं तत्व विकसित हुए वे सामाजिक निर्देश व्यवस्था की गहराई एवं समझ के अनुरूप नहीं हुए । "

ड्रोर इस सिद्वान्त के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि सामाजिक निर्देश व्यवस्था एवं सामाजिक नियंत्रण के साधन एवं तत्व अलग-अलग रूप से निर्मित हुए तथा मानवता का सही प्रकार से निर्माण करने में सफल नहीं हुए इसमें थोडी बहुत सफलता इसबात में देखी जा सकती है कि कुछ के मानव मूल्यों ने मानवता को बचाने में बड़ी महती भूमिका निभाई । ड्रोर का यह मानना है कि मानवीय मूल्यों में पीड़ा एवं घटनाए मानवीय ज्ञान में अंघता का परिणाम मानी जा सकती हैं, उचित जान पड़ता है क्योंकि सामाजिक निर्देश व्यवस्था की कमियाँ मानव के भविष्य को उस स्तर तक प्रभावित नहीं कर पाती जहाँ पर कि मानव का भविष्य नीतिगत प्रश्नों से उलझा रहता है अथवा नीति के साधनों के स्वरूप (Images of Policy Instruments) की उत्तमता से परे रहता है अथवा उनका उपयोग नहीं कर पाता है, इससे मानव की जो यथार्थता है वह दूरगामी रूप से प्रमाणित हो सकता है । फिर भी मानवीय जीवन की यर्थाथता का दूरगामी भविष्य काफी परिवर्तित नजर आता है । क्योंकि अब ज्ञान के विकास में नीतिगत साधनों का प्रयोग संभव है ।

ड्रोर का तीसरा और अन्तिम सिद्धान्त यह निर्धारित करता है कि "वैज्ञानिक क्रान्ति के इस दौर में हम अभी प्रारम्भिक अवस्था है और एक नये प्रकार के विज्ञान के लिए बौद्विक क्षमताओं को जाग्रत एवं सक्रिय करने की है जिसे कि राजनीतिक संस्कृति अथवा परम्परागत सामान्य वैज्ञानिज्ञता रोक सकती है जिससे कि भविष्य की सम्भावनाओं को जांचा-परखा नहीं जा सके । नीति विज्ञान ही वह अन्तिम अस्त्र है जो कि भविष्य की सम्भावनाओं के स्वरूप को निर्धारित कर सकता है ।"

ड्रोर यह मानता है कि नीति विज्ञान में असीम सम्भावनाएं है जोकि भविष्य को अच्छी प्रकार से समझ व जांच सकता है परन्तु परम्परागत विज्ञान के विषय एवं उनके मध्य बौद्‌विक क्षमताओं की खाई नीति विज्ञान के विकास को रोक सकती है । अत: आवश्यकता इस बात की है कि नीति विज्ञान में नये-नये आयाम, प्रतिमान एवं स्वरूप विकसित किये जायें । ड्रोर के इस सिद्धान्त का प्रभाव अमेरिका में व्यापक रूप से पड़ा और अमेरिकी विश्वविद्‌यालयों में नीति विज्ञान नीति अध्ययन लोक मामले (Public Affairs) लोक नीति अध्ययन, लोक नीति एवं विधि, लोक प्रशासन एवं नीति इत्यादि अनेक नामों से अध्ययन केन्द्र स्थापित किये गये जिससे कि लोक नीति के अनेक स्वरूप समझे जा सकें एवं विकसित किये जा सकें । ड्रोर के अनुसार नीति निर्माण में वैज्ञानिक ज्ञान की कमी निम्न कारणों से है :-

(1) सुक्ष्म दृष्टि उपागम जिसमें कि कुछेक प्रकार के ही निर्णयों को क्रियान्वित करने की क्षमता है तथा नीति निर्माण की दृष्टि से अपर्याप्त हैं।

(2) नीति निर्माण में ऐसे अपर्याप्त विचार जिसमें कि सभी कुछ बिखरा-बिखरा है तथा सम्पूर्ण व्यवस्था विश्लेषण पर विचार नहीं किया जाता तथा संगठन -सिद्‌वान्तों, आप्रेशन-शोध, जाँचने का मनोविज्ञान, निर्णयन सिद्धान्तों इत्यादि की उपेक्षा की जाती है।

(3) नीति निर्माण में विवेक से पूर्वाग्रस्त तथा विवेक के अतिविवेक से विलोपन पर कम ध्यान दिया जाता है ।

(4) नीति निर्माण में नवीन डिजायन की अवहेलना तथा धीमी गति से पुराने डिजायन में सुधार।

(5) नीति निर्माण में राजनीतिज्ञों जैसे आलोचनात्मक तत्वों पर कम ध्यान दिया जाना।

(6) व्यवहारवादी एवं मानदण्डात्मक उपागमों के मध्य गहरी खाई व्यक्त है जिससे कि निर्णयन के विभिन्न डिजायनों में विवेक का अभाव या सूक्ष्म आधारों पर निर्णयन जिससे कि व्यापक दृष्टिकोण की अवहेलना होने की सम्भावना रहती है।

(7) संस्थात्मक जोर होने से निर्णयों में गुणात्मक दृष्टि का अभाव होने की सम्भावना बनी रहती है।

(8) व्यवहारवादी उपागम के कारण पद्‌वति सम्बन्धी गलतियाँ होने की सम्भावना बनी रहती है, एवं

(9) परम्परागत शोध प्रविधियों में ज्ञान के नये स्रोत नहीं खोजे जा सकते हैं ।

विकसित समाज में ज्ञान अनिवार्य रूप से ज्ञान का स्थान ग्रहण नही करता है और न ही ज्ञान विशेषज्ञता के पीछे दौड़ता है बल्कि ज्ञान सदैव शब्द निर्माण, अवधारणा-निर्माण, प्रतिमान, सुदर्शन, व्यवस्था निर्माण इत्यादि से सम्बन्ध रखता है । ज्ञान को महसूस करने के लिए भाषा, चाहे वह मूक हो या बोली गई हो, एवं वातावरण, जो कि सामाजिक, प्राकृतिक अथवा संचार सम्बन्धी हो, आवश्यक होता है । ज्ञान वास्तव में, तीन रूपों में विद्‌यमान रहता है । प्रथम, मानव एवं समाज नियंत्रण से सम्बन्धित ज्ञान, द्‌वितीय, वातावरण नियंत्रण से सम्बन्धित ज्ञान और तृतीय, नियंत्रण प्रक्रिया के नियंत्रण से सम्बन्धित ज्ञान । ज्ञान के तृतीय स्वरूप से नीति विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है । ड्रोर नीति विज्ञान की परिभाषा मानव, समाज एवं वातावरण के नियंत्रण की प्रक्रिया की नियंत्रण व्यवस्था के सन्दर्भ में करता है तथा एक ऐसे विज्ञान की रचना पर जोर देता है जो सभी प्रकार के विज्ञानों को नियन्त्रित कर सके । नियन्त्रण प्रक्रिया का नियन्त्रण से ड्रोर का अभिप्राय विज्ञानों की विकास गति को नियन्त्रित करने एवं उसे मानव कल्याण के लिए सार्थक बनाने से है । विभिन्न विज्ञानों की अंधाधुंध प्रगति ने

यह हमारे लिए अनिवार्य कर दिया है कि विज्ञान की सीमाओं को रेखांकित किया जाये तथा मानव ज्ञान को उन सीमाओं के भीतर रखा जाये जहाँ कि वे मानव कल्याण के विपरीत हों । ड्रोर का नीति विज्ञान को एक सार्वभौम स्वरूप प्रदान करने का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाज की रचना करने से है जो कि केवल अपनी सीमाएं जाने एवं समझे बल्कि ज्ञान के मानदण्डों को आत्मसात् करने की क्षमता भी रखे । ज्ञान का अधिग्रहण, विकास एवं प्रगति केवल मात्र मानव समाज के निर्माण के लिए हो, विनाश के लिये नही । इसी बात पर जोर देने के कारण नीति विज्ञान वास्तविकता एवं सिद्वान्त में एक ऐसे ठोस धरातल पर समझौता कराता है जहाँ कि वास्तविकता एवं सिद्वान्त के मध्य सर्वोच्चता का विवाद समाप्त होता है और समझोतावादी परिदृय उत्पन्न होता है । अत: वह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि नीति विज्ञान जहां एक और आनुभविक है वहां दूसरी और मानदण्डात्मक भी है । नीति विज्ञान वह पूर्ण विज्ञान है जिसमें कि आरम्भ से अन्त स्पष्ट नजर आता है तथा भविष्य पर पूर्ण नियन्त्रण रहत है जबकि अन्य सभी विज्ञान कहीं न कहीं अधूरापन लिए हु ए है तथाअधिकांशत भविष्य पर नियंत्रण रखने मे सक्षम नहीं है ।

14.4 नीति विज्ञान का महत्व

ड्रोर के अनुसार नीति विज्ञान के क्षेत्र में विकसित हो रहे प्रतिमानों एवं विकल्पों ने ज्ञान एवं शक्ति के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है तथा जों दुविधाएं ज्ञान एवं शक्ति, विज्ञान एंव सभावनाएं को लेकर थी, उन्हें समाप्त करके, राजनीति के लिए क्रिया एवं सरंचना को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है । ड्रोर के अनुसार नीति विज्ञान ने निर्णय की प्रक्रिया को अधिक सुगम एवं सुलभ बना दिया है । नीति निर्माण के लिए सामान्य विज्ञानों से जो तत्व प्राप्त होते हैं । उन तत्वों से न केवल नीति निर्माण में लाभ प्राप्त होते हैं बल्कि नीति निर्माण के लिए जो समस्याएं उभरती हैं उनके निवारण हेतु वृहद् सुझाव भी उपलब्ध करा दिये हैं । इससे नीति निर्माण के अन्दरूनी तत्वों को अधिक गहराई से समझा जा सकता है । नीति विज्ञान के माध्यम से नीति निर्माण को न केवल पुनरीक्षित एवं गहराई तक समझा जा सकेगा बल्कि राजनीति को भी पुन: इस प्रकार निर्मित किया जा सकेगा कि ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग राजनीति में किया जा सके । नीति विज्ञान के माध्यम से, ड्रोर के अनुसार मूल्य पुनरीक्षण, हित प्रतिनिधित्व मतैक्य बनाये रखना, अर्न्तवैज्ञानिक पुनरीक्षण इत्यादि को और अधिक शक्तिशाली रूप में प्रस्तुत किया जा सकेगा बल्कि उनके अनेक विकल्प, क्रियान्वयन में उत्तम नियंत्रण, मूलज्ञान का अधिकतम विश्लेषण, विश्वसनीय पुर्नभरण, नीति विश्लेषण के नवीन तरीकों इत्यादि का भी विकास किया जा सकेगा। ड्रोर के विचार में नीति विज्ञान ने अनेक रूप में राजनीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये है जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से नीति निर्माण के क्षेत्र को प्रभावित किया है । ड्रोर के अनुसार इसका प्रभाव निम्न रूप से समझा जा सकता है:-

(1) नीति विश्लेषण का अधिकतम -उपयोग उनके विकल्पों उद्देश्यों एवं विषयों की खोज में किया जा सकेगा ।

(2) वृहद् नीति निर्णयों को खुले रूप से अधिकाधिक बढाना जिससे कि नीति में स्वीकृत अन्वेषणों को खोजा जा सके तथा ऐसे उपागम विकसित किये जा सके जो कि उपागमों की दुविधाओं को कम कर सके: इसी के साथ साथ नीतिगत दुविधाएं जैसे कि समग्र अथवा

सूक्ष्म नीति, वृहद् अथवा संकुचित नीति, धक्का देने वाली नीति या चलायेमान नीति इत्यादि ।

(3) पूर्ववर्ती नीतियों का सम्पूर्ण विश्लेषण जिससे कि भविष्य में बनने, बाली नितियों को अधिकाधिक उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सके जैसे कि नीतिगत पद्धतियाँ, संस्थाएं, प्रक्रियाएं इत्यादि।

(4) भविष्य के लिए नीतिगत संरचनाएं प्रक्रियाएं इत्यादि इस प्रकार विकसित की जाये कि नीति निर्माण में ऐसे संगठन, व्यक्ति, स्टॉफ इत्यादि को भी सम्मिलित किया जा सके जो कि भविष्य की नितियों के लिए उपयोग सिद्ध हों ।

(5) नीति विषयक मामलों में सृजनता एवं अन्वेषण को इस प्रकार समुन्नत किया जा सकेगा जोकि व्यक्ति एवं संगठनों में रोमांचक, वैचारिक दृष्टि, संगठित स्वपनिलता तथा ऐसे चैनल्स को खोजा जाये जोकि नीति निर्माता को परम्परागत विचारों के स्थान पर नवीन विचारों से ओत-पोत कर सकें । नीति विज्ञान ने नीति निर्माणकर्ताओं को संगठन में वैचारिक सुरक्षा सृजनशीलता को अधिकतम स्तर तक पहुँचाने जैसी सुविधाओं से और अधिक ओत-पोत किया है।

14.5 नीति विज्ञान के प्रभाव

नीति विज्ञान के विकास का सर्वाधिक प्रभाव नीति निर्माण के क्षेत्र में देखा जा सकता है जहां कि नीति निर्माता, संस्थाएं एवं प्रक्रियाएं गहन रूप से प्रभावित हुई। ड्रोर के अनुसार नीति विज्ञान के निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं:-

(1) नीति विश्लेषण के नवीन तरीके विकसित होने की सम्भावनाएं बढ़ी तथा नीति के नये विकल्प एवं नीति के उद्देश्यों के प्रति स्पष्टता दिखाई पडने लगी।

(2) वृहद् नीति निर्णयों के लिए अधिक विश्वसनीयता बढ़ी तथा बड़े नीति सम्बन्धी निर्णयों में अधिक सफलता के आसार बढ़े, ऐसे निर्णयों में अधिकतम उद्देश्यपूर्णता अधिक सफलताएं एवं अपेक्षित दूरगामी परिणाम प्राप्त किया जाना सम्भव हुआ।

(3) नीति अनुंसधान संस्थाओं की स्थापना हुई जोकि नीति विश्लेषण एवं उसके विवादस्पद मामलों पर गहन अनुसंधान से जुडे जैसे कि वुडरो विल्सन फाउण्डेशन, इनस्टीटयुट फॉर दा फ्यूचर, द रैण्ड कारपोरिशन न्यूर्याक रैण्ड सिटी फाउण्डेशन इत्यादि, भारत में यदि देखा जाये तो सेन्टर फॉर पॉलिसी रिसर्च, सेन्टर फॉर डवलपिंग सोसायटिज इनस्टीट्यूट फॉर इकोनोमिक ग्रोथ, इन्सटीटयूट फॉर डवलपेंट स्ट्डीज इत्यादि।

(4) नीति विज्ञान ने जाग्रत नागरिक की प्रजातंत्र में भूमिका को अधिक सुद्दढ़ किया जिससे कि शासन व्यवस्था में नागरिको की भूमिका न केवल बढी बल्कि नीति सम्बन्धी प्रश्नों को सुलझाने में अत्यधिक सहायता भी प्राप्त हुई ।

(5) नीति विज्ञान ने प्रशिक्षण के क्षेत्र मे भी गहन योगदान मिला है तथा प्रशिक्षण विधियों में मामलों का विश्लेषण, परियोजना विकल्प, नीति गेम्स, वैकल्पिक प्रशिक्षण कार्यक्रम इत्यादि को भी प्रोत्साहित किया है । इसके अतिरिक्त, शैक्षणिक गतिविधियों में भी अनेक

अवसर प्रदान किये है । शैक्षणिक क्षेत्र में ऐसे प्रोत्साहन एवं विकल्प उपस्थित कराये है जो कि अधिकतम स्तर तक आकर्षित करते हैं । विद्यालय स्तर पर बच्चों में विकल्पों की तलाश सम्बन्धी जिज्ञासा जाग्रत कराई जा रही है तथा बच्चों में ऐसी क्षमताएं एवं ज्ञान विकसित कराये जा सकते हैं जो कि उन्हें अधिक से अधिक विकल्पों की ओर अग्रसर करते हों।

(6) अन्त में, नीति विज्ञान ने ऐसे माध्यम एवं साधन विकसित किये है जो कि ज्ञान एवं समझ को उच्चतम स्तर तक ले जाने में सहायक सिद्ध हो सकते है तथा नीति विषयक मामलों को अधिकतम गहराई एवं गतिकी की सिद्वान्तों के आधार पर समझा, विश्लेषित एवं विकसित किया जा सकेगा । ड्रोर यह मानता है कि नीति विज्ञान ने वैकल्पिक सामाजिक भविष्य का संरचना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान किया है तथा सामाजिक व्यवस्था की वैकल्पिक संरचनाएं प्रस्तुत की है तथा उनसे सम्बन्धित नीति विषयक सम्भावनाएं दर्शाने मे मदद की है । कुल मिलाकर, एक ऐसा व्यावहारिक दर्शन विकसित किया है जो कि एक नवीन अर्न्तविषयक अनुशासन स्थापित किया है जोकि आने वाले संकटकालिन समयों में न केवल उनके सम्भावित समाधान बतायेगा बल्कि युद्धों, विनाश एवं आर्थिक संकटों को निपटाने में गहरी मदद करेगा ।

14.6 ड्रोर का योगदान - एक समीक्षा

नीति विज्ञान का प्रादुर्माण हेराल्ड लॉसवैल द्वारा सर्वप्रथम 1951 में सम्पादित पुस्तक "द पॉलिसी साइन्सेस -रीसेन्ट डवलपमेन्ट इन स्कोप एण्ड मेथडस" स्टेनफोर्ड यूनीवर्सिटी द्वारा प्रकाशित से हुआ परन्तु उसको मान्यता, महत्व एवं विकास ड्रोर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों (1968-70) से प्राप्त हुआ । ड्रोर ने नीति विज्ञान को एक विषय, अनुसंधान ज्ञान समझ विकल्प इत्यादि रूपों में प्रस्तुत किया तथा दर्शाने का प्रयास किया कि विश्व का भविष्य नीति विज्ञान के विषय के विकास पर आधारित होगा । ड्रोर ने भविष्य के भविष्य पर जो सम्भावनाएं व्यक्त की वे शासन प्रशासन के लिए न केवल समाधान बनी बल्कि तृतीय विश्व युद्ध की सम्भावनाओं को भी नकारती है एवं विश्व के समक्ष विकास की अपार सम्भावनाएं खोलती हैं विशेषकर तृतीय विश्व के देशों के समक्ष राष्ट्र राज्य की समस्या, संस्कृति सभ्यताओं के टकराव की समस्या, रंगभेद, समानता की समस्या साधनों पर अधिकार की समस्या, पूंजी-साधन की समस्या जैसी अनेक समस्याओं को निपटाने में नीति विज्ञान ने महत्वपूर्ण सहयोग किया है । विकासशील देशों में वैकल्पिक नीति विषयक समाधान प्रस्तुत करके नीति विज्ञान ने एक नवीन विश्व अर्थव्यवस्था की संरचना प्रस्तुत की है जिसे कि हम वैश्विक 'अर्थ व्यवस्था, उदारवादी एवं नीतिकृत अर्थव्यवस्था (Liberalisation, Provatization and Globalisation- LPG) के रूप में देख एवं समझ सकते हैं । यह एल.जी.जी (LPG) नीति विज्ञान द्वारा वैकल्पिक कल्पना की संरचना है, ड्रोर का भविष्य का दर्शन है, ड्रोर का भविष्य का भविष्य है, ड्रोर का ज्ञान एवं समझ है, एवं ड्रोर की (Master Science of Science) है यह सर्वोपरि विज्ञान है, सभी विज्ञान इस नीति विज्ञान में निहित है, एवं विज्ञानों की आदि एवं अन्त है जैसा कि भगवान ने गीता में उपदेश देते हुए कहा था कि नीति के समक्ष सभी कुछ छोटा है । नीति सभी विकारों का समाधान है । यदि आध्यात्मिक ग्रन्थ गीता के सम्माषणों के सार का विश्लेषण किया जाये तो वह ड्रोर के नीति विज्ञान में आधुनिक

आँग्ल भाषा में देखा जा सकता है । ड्रोर नीति विज्ञान की सम्भावनाओं में भविष्य को लेकर अधिक चिन्तित नजर आता है और भविष्य के लिए विकल्पों की तलाश में है जो कि उसकी पुस्तकों में देखे जा सकते हैं।

14.7 सारांश

ड्रोर ने नीति विज्ञान के माध्यम से राजनीति एवं लोक प्रशासन के विषयों की दिशा-दशा को बदल दिया तथा इन विषयों को नये आयाम यथा लोक नीति, लोक मामले, प्रशासन विज्ञान लोक विकल्प (Public Choice) दिये जिनसे कि इन विषयों में अध्ययन-अध्यापन एक नये परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भ हुआ । इन विषयों में ऐसी संकल्पनाओं मानदण्डों, सम्भावनाओं एवं प्रतिदर्शों की खोज प्रारम्भ हुई जोकि न केवल शासन-प्रशासन को सरल, सुलभ टिकाऊ पारदर्शी, वृहद् एवं वैज्ञानिक बनाये बल्कि अन्य विज्ञानों, अर्न्तविज्ञानों एवं अर्न्तअनुशासनिक खोजों के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व में एक नई वैश्विक व्यवस्था का निर्माण कर सकें तथा सम्पूर्ण विश्व के समाजों को विभिन्कृत होते हुए भी मानव मूल्यों के लिए एकीकृत कर सकें । ड्रोर ने नीति विज्ञान में मूल्यों पर अनेक प्रश्न एवं सम्भावनाएं उठाते हुए उनके उपयोग को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है । ड्रोर नीति विज्ञान के विश्लेषण में तार्किक रूप से सापेक्षवादी (Lovical Positivist) है अत: वह मूल्यों को समाज के नये उभरते समग्रवादी स्वरूप में महत्वपूर्ण मानता है और मूल्यों को समाज के परिवर्तन एवं राजनीति के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण समझते है । वह राजनीति को नीति विज्ञान से सम्बन्धित प्रशिक्षण देने के पक्ष में है।

नीति विज्ञान का सर्वश्रेष्ठ विज्ञान बनाने के लिए उसमें महत्त्वपूर्ण चाहता परिवर्तन चाहता है जो कि पद्धति, उपागम एवं प्रविधियों की दृष्टि से क्रान्तिकारी होगें। व्यवस्था उपागम के माध्यम से वह नीति विज्ञान को स्वीकार्य, स्पष्ट, औचित्यपूर्ण एवं क्रियाशील बनाना चाहता है । नीति विज्ञान की सफलता ड्रोर की दृष्टि में क्रियाशीलता है जोकि जनहित, राष्ट्रहित एवं अन्य फलदायी होगी । नीति विज्ञान का सबसे बड़ा योगदान सम्पूर्ण व्यवस्था पर उच्चतम नियंत्रण (Control over controls) स्थापित करना है जो कि राजनीति के द्वारा ही सम्भव है । ड्रोर के विचारों को यदि सम्पूर्णत: विश्लेषित किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि नीति विज्ञान वास्तव में शासनिक व्यवस्था (Governance system) का विज्ञान है । अन्त में ड्रोर के नीति विज्ञान का अन्तिम उद्देश्य उच्चतम नियंत्रण स्थापित कराना है जिसमें कि सभी विज्ञान सम्मिलित हैं । कुल मिलाकर, देखा जाये तो ड्रोर ने नीति विज्ञान के माध्यम से राजनीतियों को वह सबसे बडा हथियार दिया है जिसमें कि माध्यम से सम्पूर्ण विश्व पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

14.8 अभ्यास प्रश्न

1. नीति विज्ञान का अर्थ समझाइये एवं इसकी मुख्य अवधारणाओं का विश्लेषण करिये ।
2. नीति विज्ञान के विकास में ड्रोर के योगदान की समीक्षा करिये?
3. नीति विज्ञान के महत्व की समीक्षा कीजिये ।

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Yehezkel, Dror, “Public making Reexamined” San Fransisco: Chandler, 1968
2. Yehezkel Dror, “Design for Policy Sciences” New York: American Elsevier, 1971
3. Thomas S. Kuhm, “The structure of Scientific Revolutiones” Chicago: University of Chicago Press, 1962
4. David Lerner & Harold D. Lasswell (eds.), “The Policy Science: Recent Developments in Scope and Methods.” Stanford University Press, 1951
5. John Mchale, “The Future of the Future” New York: Georg Braziller, 1969.
6. Amitai Etzioni, “The Active society”, New York Basic Books, 1968.
7. प्रदीप सक्सैना, "नीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन," जयपुर आर.वी.एस.ए. पब्लिशर्स, 1997।

ISBN - 13/978-81-8496-032-7